

ज्वालामुखी

सन् बयालीस की भारतीय क्रांति की पृष्ठभूमि
पर लिखा गया हृदयस्पर्शी उपन्यास



अनन्त गोपाल शेवड़े

नीलाभ प्रकाशन गृह
प्रयाग

प्रथम संस्करण

मई १९५६

मूल्य ४।।)

प्रकाशक

नीलाभ प्रकाशन गृह, ५. खुसरो बाग रोड, इलाहाबाद ।

मुद्रक

जॉब प्रिंटेर्स, ६६ हीवट रोड, इलाहाबाद ।

भारत के उन सब ज्ञात एवं अज्ञात
शहीदों के लिए, जो स्वयं नींव के पत्थर बने
और जिन के त्याग एवं बलिदान से भारतीय
स्वतंत्रता के स्वर्ण-मन्दिर का निर्माण हुआ—

इस उपन्यास के अनुवाद और
चित्रपट बनाने के सारे अधिकार लेखक
के अधीन हैं।

कृतज्ञता

सन् बयालीस की अगस्त क्रांति के सिलसिले में मुझे तीन वर्ष जेल में रहना पड़ा। शायद मेरे जीवन का सबसे उज्ज्वल एवं मंगलमय काल-खण्ड वही हो।

वहाँ मुझे संत विनोबा के सम्पर्क में आने का अवसर मिला।

जिस दिन मैं गिरफ्तार होकर नागपुर सेंट्रल जेल में आया, उस दिन विनोबा की सायं-प्रार्थना का दृश्य मुझे भुलाये नहीं भूलता।

आठ नम्बर की बैरक, जिसमें ७०-८० राजबन्दी थे, घन-घोर अँधेरी रात और रिमक्तिम पानी। अन्दर बैरक में कैरोसीन की टिमटिमाती हरीकेन जिसके धुँधले प्रकाश में एक दूसरे को पहचानना भी मुश्किल ! और विनोबा की वह सामूहिक सायं-प्रार्थना !

बाहर दनादन गोली चल रही थी। सरकार की क्रूर प्रति-
हिंसा मड़क उठी थी। भारतीय नागरिकों के प्राणों का मोल
मिट्टी के बराबर हो गया था। क्रान्तिकारियों को गोली से उड़ा
दिया जायगा या फाँसी लगेगी, इसका भरोसा नहीं था। ऐसे
आतंकमय वातावरण में वह आत्म-विस्मृत और आत्म-विभोर
कर देने वाली प्रार्थना !

प्रार्थना के बाद की वह मीठी रामधुन ! और उसके बाद
विनोबा का छोटा-सा प्रवचन, जिसका विषय था—मृत्यु !

मृत्यु शत्रु नहीं है, मित्र है, अमंगल नहीं है, मंगल है,
ईश्वर से सान्नात्कार कराने वाली प्रतिक्रिया है, उससे भय खाने
की ज़रूरत नहीं, वह स्वागत करने योग्य है !—ऐसा ही कुछ
उन्होंने उस दिन कहा था।

उस प्रवचन के बाद, मुझे याद है कि हम राजबन्दियों का
मन बहुत कुछ शांत हो गया।

फिर जनवरी १९४३ का महीना आया, जिसमें नागपुर के
किशोर शहीद शंकर और सिन्ध में कच्ची उम्र के विद्यार्थी हेमू
कलानी को फाँसी लगी ! शंकर की आयु थी १८ वर्ष और
हेमू की १६ वर्ष। ये घटनाएँ भारतीय नागरिकों के दिलों में
गहरा धाव कर गयीं।

इसके बाद १९४४-४५ में सिवनी जेल में फिर विनोबा के
साथ मेरा सम्पर्क हुआ। अब के मैं उनके निकट आया। मैं तो
संकोच-वश उनसे दूर-दूर भागता था, पर यह उनकी सहृदयता
और स्नेह की महिमा थी कि उन्होंने जैसे हाथ पकड़ कर ही मुझे
पास बैठा लिया।

वे दिन भी मेरे लिए चिर-स्मरणीय हैं, जब प्रातःकाल छः बजे से आठ बजे तक हम दोनों सिवनी जेल के तंग अहाते में, इधर से उधर और उधर से इधर चक्कर लगाया करते थे। कसरत भी हो जाती थी और विचार-विनिमय भी।

विनोबा की यह विशेषता है कि जिस व्यक्ति का जो स्वभाव हो, गुण हो, उसी के विकास में मदद करते हैं। व्यक्तिगत स्वातंत्र्य के वे कट्टर उपासक हैं और किसी को ठोक-पीट कर एक साँचे में ढालने का वे कभी प्रयत्न नहीं करते। स्व-प्रेरणा तथा स्वानुभूति से जो लोग चलते हैं, वे ही उन्हें प्रिय हैं।

हमारी चर्चा का विषय अधिकतर होता—साहित्य ! साहित्य की प्रेरणा और हेतु। उसका ध्येय क्या हो आदि आदि। उन चर्चाओं में विश्व के महान् साहित्यकारों की चर्चा होती। गोर्की, तालस्तोय, रोम्या रोलां, विक्टर ह्यूगो और ड्यूमा, व्यास महर्षि, ज्ञानेश्वर और टैगोर, गीता, रामायण, महाभारत, बाइबिल आदि आदि ! विनोबा के विशाल अध्ययन को देखकर मैं दंग रह गया। उनकी साहित्य-दृष्टि इतनी सरस, गहरी और पैनी है, इसकी मुझे कल्पना न थी। उनकी अष्टमुखी प्रतिभा देख कर तो यही लगता कि सममुच्च यह एक महर्षि है।

उन लगातार और लम्बी चर्चाओं के दौरान में ही 'ज्वाला-मुखी' की कल्पना साकार हुई। इसकी रचना करते समय जहाँ जेल-जीवन की अनेक मीठी-कड़वी स्मृतियाँ दिमाग में आती-जाती रहीं, वहाँ एक स्मृति बड़ी स्पष्ट रही—वह थी विनोबा की स्नेह-सिक्त, ममता-भरी मूर्ति—आर्शोर्वाद की तरह शुभ और आरती की तरह मंगल !

उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए ही ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ ।

सम्भवतः उन्हें मेरी भावनाओं का पता भी न हो । गंगा बहती है, उसे क्या मालूम कि उसका जल छूकर या पीकर कौन क्या पा लेता है ।

लेखक—

प्रकाशकीय

‘ज्वालामुखी’ शेवड़े जी का पाँचवा उपन्यास है। इसमें उनकी अनुभूति अधिक गहरी और व्यापक तथा कला अभिक प्रौढ़ रूप में व्यक्त हुई है। इसकी पृष्ठभूमि है सन् बयालीस की अगस्त क्रांति, जिसके फलस्वरूप देश में एक अभूतपूर्व भयंकर विस्फोट हुआ और जिसके बाद देश स्वतन्त्र हुआ। उस संघर्ष का सजीव वातावरण इस उपन्यास में अंकित है।

मध्यप्रदेश के सुपरिचित एवं लोकप्रिय कथाकार श्री अनन्त गोपाल शेवड़े साहित्यक हैं, पत्रकार हैं, राष्ट्रसेवक भी हैं। सन् ३० के राष्ट्रीय आन्दोलन में तथा सन् ४२ की क्रांतियों में उन्होंने सक्रिय भाग लिया था जिसके कारण उन्हें तीन वर्ष जेल में रहना पड़ा। ‘ज्वालामुखी’ की कथावस्तु और उसका तत्सम्बन्धी ज्ञान उनका स्वयं-अनुभूत है, यही कारण है कि ज्वालामुखी की विषय वस्तु इतनी सजीव और शक्तिशाली बन पड़ी है।

श्री शेवडे की मातृभाषा मराठी है, फिर भी वे लगातार बीस-बाइस वर्षों से राष्ट्रभाषा हिन्दी की बड़ी निष्ठा और लगन से सेवा कर रहे हैं । पाँच उपन्यासों के अलावा उनके हास्य-व्यंग्य मरे निबन्धों का संग्रह 'तीसरी भूख' प्रकाशित हो चुका है तथा कहानियों का संग्रह 'सतरों की ढाली' प्रेस में है । उनका उपन्यास 'मृगजल' इसी वर्ष मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद की ओर से स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रकाशित प्रादेशिक उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ घोषित किया गया तथा उस पर १०००) का पुरस्कार प्रदान किया गया । इसका अनुवाद गुजराती और कन्नड में प्रकाशित हो चुका है ।

शेवडे जी का दूसरा उपन्यास 'निशागीत' अत्यन्त लोकप्रिय हुआ है । अपने साहित्यिक कला-गुण के कारण वह हिन्दी साहित्य सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा की कोविद परीक्षा में एवं त्रावणकोर विश्व-विद्यालय की विद्वान परीक्षा में लग चुका है । उसका चतुर्थ संस्करण इसी वर्ष प्रकाशित हुआ है ।

शेवडे-साहित्य की विशेषता है उसका स्वस्थ, सुसज्जित और आदर्शवादी दृष्टि कोण । शेवडे जी की कथा शैली अत्यन्त रोचक है, भाषा सरल और प्रवाहमयी है, चरित्र-चित्रण इतना सजीव और यथार्थ है कि लगता है उनके पात्र हमारे परिचित हैं, हमारे अपने हैं । सफल उपन्यास के कथा-सत्वों को लेकर वे एक ऐसा सुन्दर ताना-बाना बुनते हैं कि पाठक उपन्यास पढ़ते समय एक क्षण के लिए भी ऊबता-उकताता नहीं । शेवडे के उपन्यासों की लोकप्रियता की वास्तव में यही कुंजी है । आचार्य

डा० हजारी प्रसाद जी द्विवेदी के शब्दों में, 'श्री शेवड़े जी बड़े कुशल कलाकार हैं ।'

'ते गायोत्' में यदि संगीत की माधुरी का अनुभव होता है तो 'ज्वालामुखी' में डमरू की डमडम की प्रतिध्वनि सुनायी देती है । मुरली का कोमल नाद नगाड़े के शंखनाद में परिवर्तित हो जाता है और हमारे सामने भारतीय आत्मा की मुक्ति पाने की छुटपटाहट और तड़प शब्दों में साकार हो उठती है । उत्पीड़ित और मोहनिन्द्रा में लिप्त भारतीय जनता का यह नव-जागरण और विराटरूप-दर्शन ऐसा लगता है, जैसे नव-निर्माण के पहले शंकर जी ने अपनी ध्वंस-लीला प्रारम्भ कर दी हो, अपना तीसरा नेत्र खोल दिया हो । सूर्योदय के पूर्व की काली घटा का यह चित्रण, जो हमें मंगल प्रभात में ले चलता है, अत्यन्त भव्य और प्रभावोत्पादक हो उठा है, जिसमें लेखक की कला बहुत ऊँची उठ गयी है । हमें विश्वास है कि हिन्दी संसार शेवड़े जी के इस नये उपन्यास का हार्दिक स्वागत करेगा ।

प्रकाशक—

ज्वालामुखी

आज अभयकुमार का विवाह दिवस है। आश्चर्य नहीं जो उसका हृदय उत्साह और उमंगों से भरा हुआ है।

और ऐसा क्यों न हो ? आज उसके हृदय की रानी विजया लौकिक रूप से 'उसकी' होनेवाली है। हृदय से तो वह कब की उसी की हो चुकी थी और वह स्वयं विजया का। लेकिन आज ब्राह्मणों की उपस्थिति में, वेद-मन्त्रों की पुण्यध्वनि की साक्षी में, समाज और जगत् के सामने वे एक-दूसरे को अपनाने वाले हैं—जीवन में, और हो सके तो मरण में भी साथ देने के लिए ! उनकी उत्कट प्रीति की परिपूर्ति आज होने वाली है।

एक समय था, जब यह असम्भव दिखता था। मार्ग की कठिनाइयाँ उन दोनों के मिलन के बीच दीवार बनकर उनके हृदय की आकांक्षाओं और भावनाओं को छिन्न-भिन्न कर डालने को तत्पर थीं। क्योंकि विजया के चाचा, जो उसके पालक थे,

ज्वालामुखी

इस बात के लिए हरगिज तैयार नहीं थे कि उनकी पढ़ी-लिखी, सुन्दर और स्वस्थ भतीजी अभय जैसे एक गरीब युवक से शादी करे, जिसकी विधवा माँ लोगों के घर का काम-काज करके अपना पेट पालती थी और उसी पेट को काट कर अभय को पढ़ाती थी। उसी की तपस्या का यह फल हुआ कि अभय पढ़-लिख कर एम० ए० पास हो गया और आज नागपुर विश्व-विद्यालय का एक रिसर्च स्कालर बनकर पी० एच० डी० की 'थीसिस' लिखने की तैयारी कर रहा है।

पर इतना यह सब, विजया के चाचा की दृष्टि में, जो मध्यप्रान्त की सिविल-सर्विस में अतिरिक्त मैजिस्ट्रेट थे, काफ़ी नहीं था। वे तो उसका विवाह एक ऐसे युवक से करना चाहते थे जो स्वयं ई० ए० सी० हो और आगे चल कर पूरा-पूरा मैजिस्ट्रेट बन जाय। उससे बढ़ कर आदर्श वर की कल्पना करना उनके लिए कठिन था।

पर विजया भी विचित्र लड़की है जो अपने चाचा के इस उपकार के प्रति एकदम बेलाग है और जिसे 'मैजिस्ट्रेट की पत्नी' बनने की महत्वाकांक्षा छू भी नहीं गयी। उसे तो न जाने क्यों अभय ही पसन्द आ गया और अब उसे छोड़ कर वह और किसी पुरुष की, अपने प्रियतम या पति के रूप में, कल्पना भी नहीं कर पाती थी। मैजिस्ट्रेट सोचते, नादान लड़की है, अपना भला बुरा भी नहीं समझती। उसके सामने 'मैजिस्ट्रेसी' की तारीफ़ करना, भैंस के आगे बीन बजाना है।

विजया सीनियर बी० ए० की छात्रा है। मॉरिस कालेज में पढ़ती है, पर ज़रा 'स्कालर' टाइप की है। यानी नाच-

रंग, पाउडर-लिपस्टिक से बिलकुल अलग। पढ़ने का शौक है और कभी-कभी कुछ लिख भी लेती है। उसकी कहानियाँ और कविताएँ हिन्दी की कुछ मासिक पत्रिकाओं में आदर का स्थान पा चुकी हैं। अपने कोर्स की किताबें पढ़ने के अलावा उसका सारा समय लेखन-कला की पुस्तकों का अध्ययन करने में तथा अन्य साहित्यिकों की कला-कृतियाँ पढ़ने में और स्वतः लिखने में खर्च होता है। इसी कारण क्लास खत्म होने के बाद वह सीधी यूनिवर्सिटी लायब्रेरी चली जाती है और वहाँ घंटे दो घंटे बिताये बग़ैर घर नहीं जाती।

यह लायब्रेरी ही उसके जीवन की सबसे महत्वपूर्ण वस्तु हो गयी क्योंकि वहीं उसका अभय कुमार से प्रथम-परिचय हुआ। वह तो रिसर्च-स्कालर था ही, उसे यदि लायब्रेरी की शरण न लेनी पड़े तो और किसे ?

सो वह अक्सर वहीं बैठा रहता। किताबों में अपना दिमाग़ खपाया करता और नोट बुक में नोट्स लिया करता।

वहीं अकस्मात् उसकी नज़र विजया पर पड़ी जो अपने इस अध्ययन शील स्वभाव के कारण औरों से भिन्न लगी—एकदम अलग !

परिचय हुआ और धीरे-धीरे उसमें से प्रीति के अंकुर फूट निकले ! एक वर्ष के भीतर ही उन्होंने एक दूसरे को वचन दे दिये कि वे विवाह करेंगे तो आपस में ही, वरना आजन्म अविवाहित रहेंगे।

अविवाहित रहने की बात उन्हें इसलिए कहनी पड़ी कि विजया जानती थी, उसके चाचा, जिन्होंने उसे तीन वर्ष की

आयु से पाल-पोस कर बड़ा किया है, जब कि उसके पिता का देहान्त हो चुका था, उसे यह आज़ादी देने में अवश्य ही आना-कानी करेंगे। वे शायद ज़बरदस्ती भी करें—मैजिस्ट्रेट जो ठहरे ! उस ज़बरदस्ती का मुकाबला करते-करते अगर शादी कर सकना सम्भव न हुआ तो वह आजीवन अविवाहित ही रहेगी। किन्तु वह अपने आराध्य के प्रति विश्वासघात हरगिज़ नहीं करेगी।

लेकिन मैजिस्ट्रेट साहब ने इतनी दूरी तक ज़िद नहीं की। चार-छः बार कहा, दो-एक बार होनहार नौकरी-प्राप्त युवकों को अपने घर चाय पर बुला कर उसके सामने पेश किया, लेकिन विजया ने उनकी तरफ़ आँख उठा कर भी नहीं देखा। मैजिस्ट्रेट साहब ने कहा, जाने दो, मरने दो, उसकी किस्मत में जो लिखा है, वही होगा। शादी हो जाने के बाद अपनी ज़िम्मेदारी तो कम होगी।

अभयकुमार उन्हें एकदम नापसन्द हो, ऐसी बात न थी। वह बड़ा स्वस्थ, सुन्दर, गौरवर्ण युवक था, जिसकी सात्विक स्मित किसी के भी मन को मोह लेने की शक्ति रखती थी। माना कि उसकी माँ ग़रीब है लेकिन इतना पढ़-लिख लेने के बाद वह अपना और अपनी पत्नी तथा माँ का पेट तो चला ही लेगा। लेकिन उनकी नज़रों में अभय का सबसे बड़ा दोष यही था कि वह एन्जिक्व्यूटिब्ह डिपार्टमेंट में किसी ओहदे पर नहीं था। और दूसरा यह कि वह खद्दर पहनता था।

फिर भी अन्त में उन्होंने मन के खिलाफ़ ही सही, विजया और अभय के विवाह की अनुमति दे दी।

और आज वह विवाह सम्पन्न हो रहा है। विजया के सुख

अनन्त गोपाल शेषदे

और उतराह की कोई सीमा नहीं । अभय को जब से उसने देखा है तब से उसे अपने हृदय के सिंहासन पर बिठाल कर उसकी निरंतर अभ्यर्थना की है । उसकी प्रीति ने जैसे उसका कायाकल्प ही कर दिया हो । मानो उसके पाद-पद्मों के स्पर्श से वह शिला सजीव हो उठी हो ।

इधर अभय का भी यही हाल है । विजया के सुग्ध-प्रेम को पाकर उसकी स्फूर्ति और कल्पना मानो अतुल बल प्राप्त कर चुकी हो और उसे कीर्ति, पराक्रम और पुरुषार्थ पूर्ण कार्य करने के लिए प्रेरणा दे रही हो । उसका जीवन भी एक अपूर्व चैतन्य-शक्ति से भर गया ।

दोनों कई बार एकान्त में मिले किन्तु एक बार भी किसी ने मर्यादा नहीं छोड़ी और अपनी दिव्य प्रीति में कलुषता नहीं आने दी । मन्दिर में पूजा को जाते समय भी कोई सच्चा भक्त विकार की भावना रख सकता है ?

और जब विवाह के मंत्रों के उच्चारण के साथ ही होम-हवन हो रहा था, उसी समय किसी ने आकर खबर दी कि जापान ने सिंगापुर के पास अंग्रेजों के दो जहाज डुबो कर युद्ध की घोषणा कर दी है ।

जब विवाह के सारे संस्कार समाप्त हो चुके और अतिथि-गण अपने-अपने घर चले गये तो अभय ने कहा, “आश्रो विजया, चल कर हम लोग माँ का आशीर्वाद प्राप्त कर लें —”

“नहीं बेटा, पहले चल कर ठाकुरजी के पास दीप जला कर आरती कर आश्रो, फिर मेरे पास आना । *वे हैं इसीलिए तो यह दिन देखने को मिला ।” — माँ ने गदगद हो कर कहा ।

दोनों देव-गृह में गये और नीरांजन में कपूर जला कर ठाकुरजी की पूजा करने लगे । दोनों के हृदय भाव-विभोर थे । उनकी आँखों में आनन्द के अश्रु छलछला रहे थे । वे मूक थे, किन्तु उनके अन्तःकरण एक ही आवाज़ से बोल रहे थे कि हे अंतर्दामी, हमारा यह कौन-सा जन्म-जन्मांतर का पुण्य था जो आज की यह शुभ घड़ी उदित हुई ! तुम इस मिलन को

अनन्त गोपाल शैवडे

चिरमिलन कर दो भगवन्, ताकि हम दोनों एक दूसरे में सम्पूर्णतः विलीन होकर तुम्हारी सेवा कर सकें और तुम्हारे आदेशों का पालन कर सकें ।”

—इसी प्रकार वे तन्मय होकर पूजा कर ही रहे थे कि नीरांजन एकाएक धक्का लग जाने से गिर पड़ा और उसकी ज्योति बुझ गयी ।

विजया का दिल धक से रह गया । उसे लगा कि यह अप-शकुन है । भावी की आशंका से उसका हृदय काँप उठा ।



माँ का आशीर्वाद लेकर दोनों अपने शयन-गृह में चले गये ।
एकान्त पाते ही विजया बोली, “अभय ! मुझे तो बड़ा
डर लग रहा है । नीरांजन बुझने का अपशकुन तो अनिष्ट
का सूचक है ।”

“पगली लड़की !” अभय ने उसे अपने पास खींचते हुए
कहा, “इस अपशकुन में नयी बात ही कौन सी है ? आज तो
सारे विश्व में ही अपशकुन की विभीषिका धधक उठी है । सारा
ससार युद्ध की विकराल ज्वालाओं से ग्रस्त है । मनुष्य मनुष्य का
संहार कर रहा है । सिंहासन उलट रहे हैं । नक्शे बदल रहे हैं ।
मानवता नष्ट हो रही है । ऐसे सर्वव्यापी भयंकर और महान्
अपशकुन के सामने और क्या अनिष्ट हो सकता है ?”

“नहीं अभय, वे युद्ध की ज्वालाएँ तो अब भी हमसे दूर हैं ।
पर आज का यह अपशकुन तो अपने ही घर में हुआ है । पता

नहीं कहीं हमारा घर बसने के पूर्व ही उजड़ तो नहीं जायगा ?”

“ज्वालाएँ दूर कहाँ हैं, विजया ! आज ही तुमने नहीं सुना कि जापान ने सिंगापुर पर हमला कर दिया है ! अब तो यह विश्वव्यापी महायुद्ध हमारे देश के दरवाजे पर ही आ गया है । अब तक तो वह योरुप में सीमित था, लेकिन अब पूरब में भी उसके काले बादल छा गये हैं और उनकी गहरी छाया हमारे देश पर भी मँडरा रही है । इस भयंकर लंका-कांड से हम और कितने दिन बच सकते हैं ?”

“फिर भी लड़ाई तो अभी हमारी भारतभूमि पर नहीं उतर आयी है । हमारे नेताओं ने तो लड़ाई के बारे में यही नीति घोषित की है कि जब तक भारत को स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त हो जाती तब तक वह इस युद्ध में कोई हिस्सा नहीं ले सकेगा ।”— विजया ने कहा ।

“हाँ, यह सच है लेकिन अपने देश का दुर्भाग्य तो देखो कि हमारे प्राणप्रिय और लोकप्रिय नेताओं की राय की कोई कीमत नहीं और अंग्रेजी साम्राज्य के प्रतिनिधि वाइसराय ने भारतीयों के नाम पर घोषणा कर डाली है कि वे भी इंग्लैंड की ओर से इस युद्ध में शामिल हैं । हमसे पूछा तक नहीं गया और देश की प्रतिनिधि संस्था कांग्रेस को राय की कोई परवाह ही नहीं की गयी । इतना भयंकर अपमान कौन-सा स्वाभिमानि भारतीय सहन कर सकता है ? हमारी गुलामी का यह भद्दा और स्पष्ट सबूत आज प्रत्येक देशवासी के हृदय में शल्य जैसा चुभे तो क्या आश्चर्य ?”

“प्रत्येक भारतवासी के हृदय में यह कहाँ चुभता है, अभय ?

नहीं तो लड़ाई के सामान जुटाने में हमारे देश के इतने सरकारी आफसर तथा राजनैतिक दल कैसे टूट पड़ते ? यदि इन सब भारतीयों का असहयोग होता तो मुझीमर अंग्रेज इतने बड़े देश का राज्य कैसे चला पाते, लड़ाई लड़ना तो दूर रहा ?”— विजया बोली ।

“तुम ठीक कहती हो विजया । यह हमारे देश की सब से बड़ी कमजोरी है । सब से बड़ा लांछन है कि हमारे नागरिक ही अपनी गलामी की जंजीरों मजबूत करने में मदद कर रहे हैं । यही कारण है जो गांधी का त्याग और तेजस्वी नेतृत्व भी आज वह सफलता नहीं ला रहा है जो कि उसे लानी चाहिए । हमारे देश का वातावरण इतना पतित हो गया है कि हमारी माँ-बहनों की इज्जत पर ही गोरे सिपाही हमला करें तब भी उसे उदारता-पूर्वक सहन करने की दीक्षा हमारे ही देशवासियों द्वारा दी जाती है । ज़बान पर ताले पड़े हैं, कलम पर जंजीर जकड़ी हुई है । हम इज्जत के साथ मर भी नहीं सकते । यही इतनी बड़ी लड़ाई जो चल रही है उसे देखो । इंगलैंड और फ्रांस के युवक स्वतन्त्रता के नाम पर लड़ते हैं, लड़ते-लड़ते मर मिटते हैं, पर हमारी मातृभूमि पर इतने भयंकर संकटों के बादल छा जाने के बाद भी हम इतने निकम्मे कर दिये गये हैं कि इस विश्वव्यापी क्रांति में पुरानी दुनिया को खत्म करके नयी दुनिया बसाने में ज़रा-सा भी हाथ नहीं बँटा सकते । जिन्दा हैं इसलिए कि मरने भी नहीं दिया जाता । ऐसा लांछनारूपद जीवन यह देश कब तक बरदाश्त कर सकेगा ? ऋषि-मुनियों के इस पुण्य-प्रतापी देश में तो ऐसी घोर असहायता कभी नहीं आयी ।”

“पर आज तो आयी-सी दिखती है अभय ! मुझे तो चारों ओर अन्धकार के सिवा और कुछ नहीं दिखता । सारा भारत जैसे एक श्मशान बन गया हो ।”—विजया बोली ।

“नहीं यह श्मशान की शांति नहीं है विजया । यह है तूफान के पहले की शांति । जब परिस्थिति इस परमावधि पर पहुँच जाती है तब उसकी प्रतिक्रिया भी भयंकर होती है । यह प्रकृति का चरम सत्य है और इतिहास इसका साक्षी है । इस भारत में भी यही होकर रहेगा ।”

“क्या होगा अभय ?”

“क्या होगा ? यहाँ होगा एक प्रचण्ड विद्रोह, जिसकी लपटें इस विशाल साम्राज्य को भी भस्म कर देंगी । हो सकता है कि इस में भारत की मानवता भी भस्म हो जाय, क्योंकि पाशविक बल के सामने आत्मिक शक्ति की क्षणिक पराजय भी हो सकती है । किन्तु वह सर्वनाश इस अपमानित और पौष्ट्य-हीन जीवन से कहीं गौरवमय है, कहीं उज्ज्वल है, क्योंकि उसी आत्मत्याग की राख पर हमारे नये भवन की इमारत बनेगी । सच्चा निष्ठापूर्वक किया गया त्याग कभी असफल नहीं होता विजया, मेरा यह अटल विश्वास है ।”

“इतने बड़े त्याग के लिए क्या हमारा देश तैयार है ? यदि ऐसा होता तो इतनी स्वार्थ-लिप्सा, इतनी कायरता, इतना पतन सब जगह कैसे फैल पाता ?”—विजया ने पूछा ।

“कौन कहता है, देश तैयार नहीं है ?” अभय हड़बड़ा कर बिस्तर पर से उठ बैठा और कमरे में इधर-से-उधर तेजी से टहलने लगा, जैसे पिंजरे का शेर हो । “देश के मन को गांधी

को छोड़ कर और कोई तो जानता नहीं। और उसने तो अभी तक कहा नहीं कि देश में त्याग नहीं है। त्याग के लिए मुझ जैसे लाखों युवक तैयार हैं। मैं तो देश के लिए सर्वस्व अर्पण कर देने को तैयार हूँ। मनुष्य का जीवन तो एक बार ही मिलता है, और उसे कभी-न-कभी तो खोना ही पड़ता है। फिर क्यों न उसे देश के लिए बलिदान कर दिया जाय। इस से सुन्दर, इस से गौरवमयी मृत्यु भला और क्या हो सकती है !”

मृत्यु का नाम सुनते ही विजया का दिल काँप उठा। आज उसकी सोहागरात है और आज यह मृत्यु की बात कैसी ?

उसे फिर वही नीरांजन का अपशकुन याद हो आया और उसका हृदय थर्रा उठा। वह मन-ही-मन बोली—“हे भगवान ! तुम्हारे मन में क्या है सो तुम ही जानो। किन्तु सब कुछ करना, मेरी इस मिलन-बेला को अक्षुण्ण बनाये रखना और मेरे प्राणों की ज्योति—इस अभय को सुरक्षित रखना !”

किन्तु मन-ही-मन उसे लगा कि यह ज्योति क्या अखण्ड चिनगारी नहीं है जो खुद को भस्म कर देगी और आस-पास की दुनिया को भी ! जो घर फूँकने की बात कहता है उसके सुरक्षित बने रहने की बात ही क्या है ?

सामने अभय, अस्वस्थ और विचारमग्न होकर कमरे में उसी पिंजरे के शेर की तरह चक्कर लगा रहा था।

विजया का हृदय उसके घोर मंथन को देख कर व्यथित हो गया। बोली—“रात बहुत हो गयी है अभय, अब ज़रा सो जाओ।”

उसे चिंता हुई कि बातें इसी तरह चलती रहें तो सबेरा

अनन्त गोपाल शेवडे

ही हो जायगा । और अभय के मन की उद्दिग्धता, उसकी अन्तर्व्यथा देखी नहीं जाती थी । उसने जबरदस्ती ही अभय को अपने बिस्तर पर लेटने के लिए मजबूर किया और उसका सिर अपनी गोद में ले लिया । वह अत्यन्त स्नेहपूर्वक उसके मस्तक को थपकाने लगी तो पाया कि विचारों के घोर संघर्ष के कारण वह तप गया है । विजया का हृदय व्यथा से भर गया । उसका सारा वात्सल्य और स्नेह उमड़ पड़ा । उसने अभय का कपाल अपने पास खींच कर उसका एक चुम्बन ले लिया ।

अभय के अन्तर से कृतज्ञता की एक निःश्वास निकली और अपूर्व राहत पाकर उसने आँखें मँद ली ।

विजया ने उसका हाथ खींच कर अपने वक्ष से लगा लिया ।



सन् १९४१ के दिसम्बर महीने में जब जापान ने सिंगापुर के नन्दरगाह में अंग्रेजों के दो जहाज डुबा दिये तब भारत में यह वातावरण फैल गया कि विश्व-महायुद्ध अब हमारा दरवाजा खटखटा रहा है। बंगाल और भारत के पूर्वी किनारे पर भगदड़ मची। कलकत्ता खाली होने लगा। सारे देश में एक विचित्र प्रकार की उथल-पुथल, एक अजीब सरगमी फैल गयी। आखिर हमें कुछ करना चाहिए। हम यों ही निकम्मे हाथ पर हाथ धरे कब तक बैठे रहें ? दुनिया में इतनी भयंकर घटनाएँ हो रही हैं, इतनी बड़ी क्रांति कि पुरानी दुनिया लड़खड़ा रही है और नयी दुनिया जीवन पाने के लिए प्रसव-वेदना में छूटपटा रही है। ऐसी स्थिति में क्या हम कुछ नहीं करेंगे ? इतिहास के पन्नों पर क्या हमारा नाम ही गायब रहेगा।

पर हम करें तो क्या करें ?

अनन्त गोपाल शेवडे

करना तो बहुत कुछ चाहते हैं, पर कोई करने भी दे ? हम अपने आप में क्या हैं ? कुछ भी नहीं । इतना बड़ा हमारा देश है । हजारों वर्षों की परम्परा और सम्यता उसकी पीठ पर लिखी है । एक ज़माना था जब उसने सारे विश्व को प्रकाश दिया था । पर आज वह क्या है ? मुट्ठी भर अंग्रेजों ने उसे गुलाम बना रखा है । हम लोगों में बड़े-बड़े नेता हैं । साहित्यिक हैं, कलाकार हैं, चिन्तक हैं, पर उनकी कोई कद्र नहीं, क्योंकि वे गुलाम देश के निवासी हैं । हमसे पूछा तक न गया कि हमारा क्या राय है, और दुनिया के सामने ऐलान कर दिया गया कि हम भी अंग्रेजों के साथ युद्ध में शामिल हैं । नन्ही हैं । एक पतित, लाञ्छित, पराधीन देश का स्वतन्त्र अस्तित्व ही कहाँ होता है ? गोरे रंग का एक अदना सिपाही हमारे बड़े-से-बड़े नेता गांधी से भी ज्यादा सम्मान रखता है । और हम कुछ नहीं कर सकते । इतने बड़े देश में जैसे मुर्दनी छा गयी । नपुंसकत्व आ गया ।

पर लड़ाई की क्रांति में देश अपना हिस्सा लेने को उत्सुक था । उसका कहना यही था कि आप प्रजातन्त्र और स्वतन्त्रता के लिए ही लड़ रहे हैं न ? पोलैंड पर जर्मनी ने हमला किया, उसी के कारण तो आपने हथियार उठाये हैं ? उसी के लिए यह सब खून-खराबी है ? तो फिर जिस देश को आप बिना एक बूँद खून गिराये ही कलम की एक लकीर से मुक्त कर सकते हैं, तो आप क्यों नहीं कर देते ? आप ऐसा नहीं करते हैं, लेकिन भविष्य में करने का वादा करते हैं, तो उसका भरोसा कैसे किया जाय ? आपको शायद यह भरोसा नहीं है कि हम यदि स्वतन्त्र

हो जायेंगे तो आपकी लड़ाई का क्या होगा ? हम मदद न करें तो आप दोनों दीन से गये । उसके लिए हम, आपके साथ एक सन्धि-पत्र से बँध जाने के लिए तैयार हैं कि आप हमें मुक्त कर दीजिए, हम आपकी लड़ाई को अपनी लड़ाई मान कर अपना खून बहाने के लिए तैयार हैं । पर इसका भी कोई नतीजा नहीं निकला । अंग्रेजों पर इसका कोई असर नहीं हुआ । यद्यपि देश कुछ कर दिखाने के लिए उत्सुक था पर अंग्रेजी शासकों ने उसे कुछ न करने दिया । उन्होंने तो सारा शासन-सूत्र मजबूती के साथ अपने हाथ में ले लिया और हजार वायदे किये कि लड़ाई के बाद हम यों करेंगे और त्यों करेंगे, पर एक नहीं जमी । नतीजा यही हुआ कि उनके तथा जनता के बीच की खाई और भी चौड़ी हो गयी । देश का सोया हुआ पुरुषार्थ कुछ करना चाहता था, पर उसके लिए विदेशी शासकों ने कोई वातावरण नहीं बनाया । गांधी जी ने सोचा, यदि देश का इसी तरह दम घुटने लगा तो वह मुर्दा हो जायगा । फिर उसे कोई उठा नहीं सकेगा । चारों तरफ़ डर समाया हुआ है । अंग्रेजों से कोई लोहा नहीं लेना चाहता । बल्कि उन्हें लड़ाई में मदद करने के लिए तैयार हैं । युवकों को फ़ौज में भरती होने की उत्सुकता है । व्यापारियों को धन-लिप्सा असे हुए है । सरकारी कर्मचारियों को युद्ध-कार्य में अपना सब कुछ खपा कर खिताब और वाहवाही लूटने की हविस है । कीमते बढ़ रही हैं, आवश्यक चीज़ों का अभाव है, ग़रीब जनता दाने-दाने को मुहताज है, पैसों की इफ़रात है, और सभी चाँदी की रेलगाड़ी पर चढ़ने के लिए बेतहाशा भागे जा रहे हैं । रुपया-पैसा बनाने में अनाज में मिट्टी मिला कर भी

अनन्त गोपाल शेवडे

देना पड़े तो कोई बात नहीं। पर्वणी आज ही है, फिर यह मौका नहीं आने का। इसलिए बना लो, जितना ढेर बने, आज ही लगा लो। पैसा कमाने के लिए परमिट, खुशामद, रिश्तखोरी और युद्ध का चंदा जरूरी था, सो यह सब सरे आम होने लगा। सिपाहियों को चाय पिलाने के लिए सम्भ्रान्त परिवार की महिलाएँ पर्दा छोड़ कर कैन्टीन में बैठने लगीं। उनके लिए कपड़े बुने जाने लगे, जखम के लिए पट्टियाँ, पढ़ने के लिए किताबें, मौज-शौक के लिए सिनेमा और नाच-तमाशे। जो लड़ाई के मैदान में जा रहा है, आज वही देवता है। उसी की पूजा करो। विदेशी सिपाही यदि भारतीय स्त्रियों से छेड़खानी करते हैं, तो बरदाश्त करो। कुछ भी अपमान हो तो हैं-हैं कर के उसे बरदाश्त कर लो, कुछ भी हो जाय, पर एक बात नहीं होगी। भारतीय नागरिक का खून नहीं खोलेगा। वह बर्फ़ जैसा ठंडा जम कर बैठा है।

गांधी जी ने कहा, देश श्मशान हो गया। आदमी आदमी नहीं रह गये। पशु हो गये। यदि इसे अब नहीं बचाया तो फिर वह कभी नहीं बचेगा। इतने विशाल, इतने बूढ़े और पुरातन देश को नपुंसक, निःसत्व बनाने का पाप जिन विदेशी शासकों के सिर पर था, उनसे गांधी जी ने कहा—

“भारत छोड़ो।”

पहले तो उन्होंने कहा, गांधी पागल हो गया है। नादान है। जापानी फौजें हिन्दुस्तान की सरहद पर खड़ी हैं, और पट्टा अपने बचानेवालों से ही कहता है कि चले जाओ। क्या सरासर आग में कूद कर खुदकशी करना चाहता है ?

नहीं, हम ऐसा नहीं हौने देंगे। हमें भारत को बचाना है और हम भारत को बचा कर ही रहेंगे।

गांधी जी ने कहा, किसके लिए बचाना चाहते हो ? अपने खुद के लिए ?

अंग्रेजों ने कहा, हम तुम्हें जापानियों के चंगुल से बचाना चाहते हैं। उनके राज्य में तो तुम गोली से दाग दिये जाओगे। वे बर्बर हैं। वे तुम्हारे कट्टर दुश्मन हैं।

गांधी जी ने कहा, आप हैं इसलिए वे दुश्मन हैं। यों हमारा कोई दुश्मन नहीं है क्योंकि हमने किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा। आप ही के दुश्मन हमसे भी दुश्मनी कर रहे हैं। आपके जाने के बाद हमारा कोई दुश्मन नहीं रहेगा। और कोई होगा तो हम उससे निपट लेंगे। आप को इससे क्या ?

विदेशी शासकों ने कहा, ये दुश्मनों से मिलने की साजिश कर रहे हैं। पीठ में खंजर भोंकना चाहते हैं। हम पर इतनी भयंकर मुसीबत है, और इसी समय ये कहते हैं कि तुम चले जाओ, भारत छोड़ दो। भारत छोड़ देंगे तो जर्मनी से लड़ेंगे किसके बल पर ? इसका मतलब यह है कि हमारे शहर जर्मन बममार विध्वंस करते रहें, हमारी ज़ियाँ विधवा होती जायँ, हमारे देश का यौवन तोपों और मशीनगनों का भोजन बन जाय, इन्हें कोई परवाह नहीं। यह धोखा है, दगा है, इसके लिए इन्हें सबक सिखाना होगा। इन्हें लोहे का पंजा दिखाना ही होगा।

चर्चिल साहब ने आदेश दिया, विद्रोहियों के साथ कोई मुरब्बत मत करो। जरूरत पड़े तो गोलियों से भून डालो। इसके बिना उन्हें नसीहत नहीं मिलेगी।

अनन्त गोपाल शेवड़े

इधर गांधी जी के लेख और भाषण आग उगल रहे थे। उनके अंदर जो ज्वालामुखी धधक रहा था, वह फूट पड़ना चाहता था।

अभय उन लेखों को पढ़ कर और गांधी जी के अनुयायियों के भाषण सुन कर उत्तेजित हो जाता। कहता—“विजया, देखो, देश में क्रांति होने जा रही है। इतिहास बनने जा रहा है। तैयार रहना। कहीं हम ऐसे हतभागी न बन जायँ कि हम महा-मानव की प्राण-पूजा में अपना अर्घ्य भी न चढ़ा सकें। हो जाय, एक बार प्रलय ही हो जाय। जीना-मरना क्या बात है? एक क्षण के लिए ही क्यों न हो, एक स्फुलिंग की तरह, चमक उठे और फिर बाद में हमेशा के लिए अन्धकार हो जाय तो क्या हर्ज है?

विजया ने पूछा—“क्या करोगे?”

“बस वही जो गांधी कहेगा। वही देश की नब्ज जानता है, और कोई नहीं। वह जो बतायगा, वही हमारे उद्धार का मार्ग है। उसमें यदि आग में भी कूदना पड़े तो कोई परवाह नहीं।”

उसी दिन उसने गांधी जी को एक पत्र लिखा—

“भारत के भाग्य विधाता !

आज तुम्हारी साँसों में इस देश के चालीस करोड़ लोगों की साँसें कम्पन कर रही हैं। तुम्हारे हृदय की धड़कन इस देश की जनता के हृदय की धड़कन है। भगवान राम और कृष्ण की इस भूमि में कई शताब्दियों के बाद तुम इस देश में आ पाये हो। तुम और कुछ जानो या न जानो, इस देश की आत्मा को तो अच्छी तरह जानते हो। तुम आशा दो—मुझ सरीखे सहस्रों-लाखों युवक तैयार हैं। मैं तैयार हूँ।”

ज्वालामुखी

गांधी जी का फौरन उत्तर आया—“ठीक है, सब करो । जल्दी ही वक्त आनेवाला है । अब ज्यादा नहीं ठहरना है ।”

और जब यह पत्र उसके हाथ में पड़ा तो वह पागल की भाँति चिल्ला उठा—“अरी विजया, देख तो स्वयं गांधी जी ने अपने हाथ से ही मुझे पत्र लिखा है । अरी पगली, समझ तो ले, तेरा अभय कितना भाग्यवान है ! यह पत्र एकदम सुरक्षित रखना, प्राणों से भी ज्यादा जतन करके रखना । यह हमारी सबसे बड़ी पूंजी है ।”

जब उसने वह पत्र माँ को दिखाया तो वह बोली—“लाओ बेटा, इसे मैं अपनी पूजा की पोथी में रख लूँ ।

वर्धा में १४ जुलाई को कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक हुई जहाँ 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास किया गया। अभय वर्धा चला गया। बजाजवाड़ी में कार्यसमिति की सभाएँ हुआ करती थीं, वहीं मँडराता रहा। दूर से सभा में आते-जाते नेताओं के दर्शन करता। जिन्होंने इस देश की स्वतंत्रता के लिए इतना बलिदान किया, और जो देह में प्राण रहते उस दिव्य पथ से मुँह नहीं मोड़ना चाहते थे, जिनके श्वेत वस्त्र और तपः पूत क्रांति की आभा से उसकी आँखें दिप जातीं। उन्हें उसने मन-ही-मन नमस्कार किया। जब सभा की आखिरी बैठक हुई तो अभय ने देखा—

सरदार वल्लभ भाई पटेल शंकरराव देव के साथ बड़े त्वेष से बाहर निकले। बाहर उनके निकट के अन्तेवासी खड़े थे। उन्होंने पूछा—

ज्वालामुखी

“क्या हुआ ?”

“बस, अब हो गया ।”

“क्या करना है ?”

“सब कुछ !” उनके वज्र जैसे कठोर शब्द सुन कर अभय को लगा—क्या इसी व्यक्ति की लौह-पौरुषता मेरे देश में फैलेगी ?

वर्धा के बाद बम्बई और ७ अगस्त १९४२ का दिन । गोवालिया टैंक में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन हुआ जिस में वर्धा के प्रस्ताव पर मुहर लगानी थी । लोगों में एक अजीब हलचल थी । वातावरण में गंभीरता थी, पर विशिष्ट प्रकार का उल्लास भी था । दिलों में आशंका थी, उमंगें थीं । ऐसा लगता था कि हिम जैसे शीतल रक्त में भी अब कुछ गर्मी आ रही है । अब इस देश का सुप्त राष्ट्र-पुरुष गहरी नींद से उठता-सा, अँगड़ाई लेता सा, जाग रहा है । कुछ करना चाहता है, किये बगैर रहेगा नहीं । कल क्या होगा, कोई नहीं कह सकता था । पर कुछ होगा जरूर, यह सभी मानते थे । कोई बात नहीं । कुछ तो हो । यह श्मशान की शांति, यह घोर जड़ता, यह कब्र के पत्थर की-सी शीतलता, यह नपुंसक निष्क्रियता तो नष्ट हो । भले ही यह सर्वनाश की छटपटाहट हो या पतंगे की

ज्वालामुखी

दीपशिखा में झड़प । पर वह गति है, जीवन है, चैतन्य है ! मृत्यु है, तब भी जीवन को अमरत्व में बदल देने वाली महा-चैतन्यशाली क्रिया है । कैसा सुन्दर पर्व है । क्या सचमुच हमारी आँखों के सामने इतिहास बनने जा रहा है ?

अभय कुमार भी बम्बई चला गया । वह कांग्रेस का प्रतिनिधि नहीं था, फिर भी एक दर्शक की हैसियत से तो उपस्थित हो ही सकता था । सो चला गया ।

घर से निकला तो विजया ने पूछा—

“कहाँ जा रहे हो ?”

“वहीं, जहाँ क्रांति की चिंगारी लगने वाली है ।”

“वहाँ क्या होगा, अभय ?”

“कह नहीं सकता । पर आज की जो असहायता है, निष्क्रियता है, उसका तो अन्त होगा ही ।”

“पर तुम्हारी ‘थीसिस’ का क्या होगा, अभय ?”

“अब उस थीसिस में मन नहीं लगता, विजया । मुझे तो अब अपनी धमनियों में नया स्फुरण, नया स्पंदन अनुभव हो रहा है । अब मैं जीवन की नयी थीसिस ही लिखना चाहता हूँ ।

“कब लौटोगे ?”

“यह कौन जानता है रानी, लौटूँगा तो मिलूँगा ही । और यदि नहीं लौटा तो—”

“तो ?”—एकदम आशंकित होकर विजया ने पूछा । उसकी आवाज़ काँप रही थी । ऐसे लगा जैसे दम घुट रहा हो ।

“ज्वालामुखी जब फट पड़ता है तब कौन कह सकता है, कौन आयगा और कौन जायगा, विजया ? आज नहीं तो कल,

ज्वाला में जल कर ही तो पंच-तत्व में मिलना है !”

“ऐसी अशुभ बात क्यों कहते हो, अभय ! मेरा तो दिल धबरा उठता है ।”

“अरी पगली, इसमें दिल धबराने की क्या बात है ? यह तो पर्व है, महापर्व ! शिव का तांडव नृत्य होने जा रहा है । डमरू की डमडम सुनायी दे रही है । धरा, भूमि सब डोलने की तैयारी में हैं । यह तो आनन्द, महान् आनन्द का क्षण है । आओ, नाचो, इस रौद्र-भैरव की नृत्य लीला के साथ समरस हो जाओ—”

अभय जाने कब तक खड़ा-खड़ा क्या-क्या कहता गया । विजया जानती थी कि अभय अब वह पुराना शांत अभय नहीं रहा है, उसमें कायाकल्प हो गया है । शरीर का नहीं, विचारों का, भावनाओं का । वह अब व्यक्ति नहीं है, किसी अज्ञात, अगम्य, अप्राप्य शक्ति का प्रतीक है । वह स्वयं अपनी इच्छा से काम नहीं करता । उसके पीछे एक प्रेरणा है, एक ताकत है जो उससे काम करवाती है । उसको रोकना क्या सम्भव है ? गंगा के प्रवाह को कभी बाँध से बाँधा जा सकता है ? हिमालय की हिमानियों को भी कभी रोका जा सकता है ?

भाग्यवान् मानवों के जीवन में ऐसे क्षण आते हैं जब वे किसी दैवी प्रकाश से उद्भासित हो उठते हैं । कोई अलौकिक शक्ति उन्हें स्पर्श कर उनके जीवन को एक दिव्यत्व से, चिर-आनन्द से ओत-प्रोत कर देती है । भगवान् बुद्ध ने जब बोधि-वृक्ष के नीचे प्रकाश पाया, रामकृष्ण ने परमहंस के दर्शन किये तब शायद यही हुआ था । विधाता की कृपा से जब ऐसे क्षण आ जाते हैं

तो मनुष्य आनन्द विभोर हो कर, गदगद हो कर पुकार उठता है—“मैं पा गया ! मुझे मिल गया !! अब कुछ पाने को नहीं रहा है !” इस आनन्द की तूर्य-समाधि में, जो मनुष्य को जड़ और चेतन जगत् के बन्धनों से मुक्त कर देती है, यदि साक्षात् सच्चिदानन्द के ही दर्शन हो जायँ तो क्या आश्चर्य !

विजया को लगा कि अभय की कुछ ऐसी ही अवस्था होती जा रही है । आज वह गांधी को इस पुराने ऐतिहासिक देश का, जिसके पीछे सहस्राब्दियों की संस्कृति, परम्परा और सभ्यता खड़ी है, एकमात्र जीवन्त प्रतीक मानता है । और कैसा है यह देश ! हिमालय की शुभ्र सौन्दर्य-पताका को जाने किस अतीत, अगेह काल से लहरा रहा है ! पृथ्वी के प्रथम प्रभात की किरणों से उद्भासित, वेदों और उपनिषदों के मंत्र-संगीत से जिसके तपोवन गूँज उठे, ऐसा यह देश, जहाँ गंगा और यमुना की धाराएँ मानव की विगलित कस्या की प्रतीक हैं, जिसने हमेशा ही मानवता के मूल्यों को छोड़ कर और किसी शक्ति की उपासना नहीं की, जिसने कभी अकारण खून-खंजर और साम्राज्यवादी लिप्सा का पाठ नहीं पढ़ाया या द्वेष और हिंसा को प्रश्रय नहीं दिया, जिसने हमेशा जड़ भौतिक मूल्यों की अपेक्षा दैवी एवं आध्यात्मिक मूल्यों की प्रस्थापना की, जिसने हमेशा ही देव और मानव के बीच के अंतर को पाटने की कोशिश की । उसी देश का आज गांधी प्रतीक है । क्या आज उसकी धमनियों में व्यास और वाल्मिकि, कबीर और तुलसी, नानक और तुकाराम, मीराबाई और लक्ष्मी-बाई का रक्त प्रवाहित नहीं हो रहा है ? बस, भारत के लिए आज वही एक सत्य है, वही एक प्रकाश है, उसी में हमारी सब

आकांक्षाएँ और स्वप्न समाहित है। उसे छोड़ कर और कुछ नहीं है। वह जो करेगा, वही होगा। वह जो नहीं करेगा, वह कदापि नहीं होगा, चाहे धरती फट जाय या आसमान टूट पड़े। उसके सम्बन्ध में अभय के लिए कोई द्विधा नहीं है, असमंजस नहीं है। उसके लिए एक ही मार्ग है, एक ही ध्येय है, गांधी के पीछे चलना। वह जो कहे करना। हाँ हाँ, वह कहे कि आग में कूद पड़ो तो आग में भी कूद पड़ना। ज़रा भी झाना-कानी किये बिना। क्योंकि यह कूद पड़ना ही जीवन है, उससे बाहर रहना मरण।

विजया अभय को रोक नहीं सकती थी। पर रोकना भी नहीं चाहती थी। उसकी यह तेजस्विता, यह जीवन से खेलने की वृत्ति ही तो उसके मन पर मोहिनी डाले हुए है। उसे अभय पर गर्व है, अभिमान है। उसे पाकर उसकी छाती फूल उठी है। ऐसा पुरुष-रत्न उसका अपना है, इस भाग्य को पाकर वह अपने आप में कोई न्यूनता नहीं पाती। नारी को वह बन्धन का नहीं, मुक्ति का प्रतीक मानती थी, कमजोरी का नहीं, शक्ति का। अभय के मार्ग में वह रोड़ा कैसे बन सकती है ?

हाँ, एक चिन्ता उसके मन को भारी किये हुए थी। पर साथ-ही-साथ एक अपूर्व माधुरी से उसका जीवन भर गया था। आज तीन महीने हो गये, वह प्रतिदिन, प्रति क्षण इस बात से अधिकाधिक अवगत हो रही थी कि उसकी कोख में एक नवीन जीव बैठा है। इस ज्ञान के कारण वह अपने हृदय में एक अपूर्व स्पंदन अनुभव करती, एक सतत पुलक, जिसके कारण उसे लगता कि जीवन दिव्य संगीत की ध्वनियों से या इन्द्र-धनुष के सुन्दर रंगों से उद्भासित हो उठा है।

मातृत्व के उल्लास में वह अनुभव करती, जैसे स्वर्ग उसके हाथ लग गया हो। पर नवीन जीव के संरक्षण के उत्तर-दायित्व से उसके मन को चिन्ता के काले बादल ग्रस लेते। यदि साधारण जमाना होता तो उसे कोई चिन्ता नहीं थी। अभय को रिसर्च की छात्रवृत्ति मिलती थी, साथ ही दो-एक खासी अच्छी ट्यूशनें थीं। माँ भी हजार मना करने पर भी अड़ोस-पड़ोस में काम करके कुछ कमा लाती। गरीबी-गुजरान का रहना था, कोई खास कष्ट नहीं था। जीवन की आवश्यक चीजें तो मिल ही जाती थीं। पर जो एक वस्तु उनके यहाँ थी, वह अक्सर कम पायी जाती है, और जिसके कारण उस छोटे से परिवार के लोग अपने आपको दुनिया में सबसे सुखी पा रहे थे, वह था उन तीनों का आपस का निर्मल, उत्कट प्रेम। ऐसा लगता था जैसे उनके यहाँ स्नेह की सतत वर्षा हो रही है। तीनों में से प्रत्येक अपने सुख को काट कर अन्य को आनन्द और आराम पहुँचाने की कोशिश करता। माँ गद्गद् हो कहती—“स्वर्ग ऊपर आकाश में नहीं है, और न वह मृत्यु के बाद ही मिलता है। जो कुछ स्वर्ग है सो यहीं है, इसी दुनिया में, इस मेरी छोटी सी कुटिया में। मेरी विजया लक्ष्मी है। वह आयी तभी से मेरा घर भर गया। बस अब मुझे किसी चीज की आवश्यकता नहीं है। भगवान्, तुझसे अब और कुछ नहीं माँगना है। मेरे अभय और विजया को सुखी और सुरक्षित रख, और मैं अभय के कंधे पर चढ़ कर ही अपनी आखिरी यात्रा करूँ। बस, यही मेरी कामना है।”

अभय सोचता, वह भी कैसा भाग्यवान् है जो ऐसी माँ का

पुत्र हुआ। कितना धीरज, कितनी सहनशक्ति, कितनी समझदारी उसमें थी ! वह जब दो वर्ष का था तभी उसके पिता का प्लेग से देहान्त हो गया। तबसे आज तक उसकी माँ ने ही उसका कितने कष्टों से पालन-पोषण किया ! पिता एक मिडिल स्कूल में अध्यापक थे। विरासत में धन के नाम पर तीन सौ रुपये ही छोड़ गये थे, जो डाकघर में जमा थे। पर हाँ, वे अभय और उसकी माँ के लिए आत्मबल और चारित्र्य की इतनी बड़ी विरासत छोड़ गये थे जिसके कारण ही वे दोनों जीवन के प्रखर संघर्ष में टिक सके। दरिद्रता, घोर परिश्रम, अपमान सब कुछ माँ ने सहे। पर अपने दिल में ज़रा-सी भी कटुता नहीं आने दी। जिन्होंने उसका अपमान किया, उनके लिए भी उसके दिल में स्नेह ही था। तीखे-से-तीखे और कड़वे घूँट पी कर वह केवल यह कह कर ही हजम कर जाती—“उँ, ऐसा तो चलता ही है।” उपवास करना तो उनके लिए मामूली बात थी। चौ-मासे में तो एक बार ही भोजन करती। किन्तु अभय को दूध जुटाने में या उसे ठंड से बचाने के लिए कपड़ा खरीदने में तो उनका चतुर्मास अक्सर बारह मास तक लम्बा हो जाता। इसके अलावा सोमवार, एकादशी, शिवरात्री के उपवास तो रहा ही करते। और यह क्रम सतत चलता। एक दिन, एक महीना, एक वर्ष नहीं, वर्षानुवर्षों तक। यही उनका स्थायी जीवन क्रम बन गया था।

उसका परिणाम यह हुआ कि उसके चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गयी थीं, पैंतालीस वर्ष की उम्र में ही सारे बाल सफ़ेद हो गये थे, पर उन्होंने कभी किसी से कोई शिकायत नहीं की। मन में

ज्वालामुखी

असंतोष नहीं था, कोई अन्तर्व्यथा नहीं। एक विचित्र प्रकार की आत्म-शांति उनके चेहरे पर सतत विद्यमान थी। आँखों में भी एक सात्विक चमक थी। वे कभी मुस्करा देतीं तो लगता जैसे स्वयं पावनता या निर्मलता साकार होकर उस स्मित के द्वारा अभिव्यक्त हो रही हो।

कोई भी आपत्ति हो, संकट हो, उन्हें विचलित होते किसी ने नहीं देखा। उनके पति की मृत्यु हुई तो वे शव के साथ श्मशान जाने की जिद कर बैठी। लोगों ने समझाया—

“स्त्रियाँ कहीं श्मशान जाती हैं ?”

“मैं आप लोगों के पीछे-पीछे चली आऊँगी, भैया। पर मुझे आँख से तो देख लेने दो कि उनका क्रिया-कर्म सब यथा-विधि हो गया। तभी मुझे शांति मिलेगी।”

और वे दो वर्ष के अभय को लेकर, जो उनकी गोद में सोया था, उनके साथ निकल पड़ीं, लोगों को आशंका थी कि कहीं वे जलती चिता में न कूद पड़े। इसलिए गाँववालों ने उनकी हिफाजत के लिए चार आदमियों को नैनात कर दिया जो उन्हें चिता से बीस गज के अन्दर आने ही नहीं देते थे।

“पागल हो गये हो भैया ? क्या मैं अभय को इस दुनिया में अकेला ही छोड़ कर इस तरह चली जाऊँगी ? यह तो कायरता होगी।”

जब चिता जलने लगी तो वे दूर पीपल के झाड़ के नीचे आसन लगा कर बैठ गयीं। न हिली न डुली। सब कुछ फठी आँखों देखती रहीं। पास जमीन पर एक फटे कपड़े में लिपटा अभय सो रहा था, बेखबर। उसे पता भी नहीं था कि उसकी

अनन्त गोपाल शेवड़े

दुनिया कैसे उलट-पुलट हो गयी है ।

और तब से अब तक उन्होंने अभय का बड़ी हिफाजत के साथ पालन-पोषण किया । उसे शिक्षा दी । वे स्वयं केवल तीन-चार कक्षा पढ़ी थीं । पर चूँकि उनके पति अध्यापक थे, उन्होंने इतना तो पढ़ा ही दिया था कि वे रामायण और गीता जैसे धर्मग्रन्थ पढ़ सकें । भगवद्-भजन में ही उनका बहुत-सा समय बीतता । माँ की भक्ति मातृभूमि की भक्ति, संस्कृति, धर्म और इतिहास की भक्ति, चरित्र-बल के पाठ, सब कुछ उसे माँ के वचनमृत में ही मिले । माँ थीं अभय के लिए, साक्षात् दिव्य-शक्ति का स्वरूप ! ईश्वर की कृपा और वरदान, दया और शांति, आनन्द और मांगल्य, इन सब का संचित एवं सजीव प्रतीक थी उसकी माँ ।

माँ ने गांधी जी को शायद एक बार ही कभी देखा था । पर उनकी स्पष्ट धारणा बन गयी थी कि वे राम और कृष्ण के अवतार हैं और भगवान् ने 'संभवामि युगे युगे' का जो आश्वासन दिया था उसी के अनुसार उन्होंने भारत में जन्म लिया है । उन्होंने अभय से कहा था—

“देखो बेटा ! गांधी तो अवतार-पुरुष हैं । हम लोग कैसे भाग्यवान हैं जो उनके युग में जोवित हैं । वे ही इस देश का उद्धार करेंगे, इस बात को गाँठ में बाँध लेना । उनकी सेवा कर सको तो समझना कि साक्षात् भगवान की ही तुमने सेवा की ।”

माँ ने गांधी जी का चरखा स्वीकार कर लिया और रोज़ नियम से कातती । अपने कपड़े तो वे स्वयं बना लेती । और कुछ कपड़ा बचता तो अभय का कुरता-धोती भी बन जाती ।

गीता वे नियमित पढ़ा करतीं और 'रघुपति राघव राजा राम' की धुन गुनगुनाया करतीं ।

अभय पर इन सब बातों का असर पड़ा और वह गांधी जी का कट्टर भक्त बन गया । सेवाग्राम नज़दीक था, इसलिए वहाँ भी साल में एकाध बार हो आता जैसे तीर्थ-यात्रा करने जा रहा हो । कालेज के भाषणों में, वाद-विवादों में, लेखों में वह गांधी जी का अहिंसक दृष्टिकोण ही पेश करता । 'हरिजन' का वह नियमित पाठक था और गांधी जी के लेखों का एक-एक शब्द पढ़ता था । विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में अंग्रेज़, अमेरिकन, फ्रेंच आदि लेखकों ने गांधी जी के बारे में जितनी भी पुस्तकें लिखी थीं, वे सब उसने पढ़ डालीं । गांधी जी की विचार धारा में वह ऐसा डूब गया जैसे वह उसकी नस-नस में समा गयी हो । पर उसे कभी यह इच्छा नहीं हुई कि वह गांधी जी के पास मिलने के लिए या कुछ पूछने जाय । वह कहता, गांधी जी का समय बर्बाद करने से फ़ायदा ? मुझे किसी बात का असमंजस नहीं, कोई शंका नहीं । जो गांधी जी कहते हैं या लिखते हैं उसमें ऐसा एक शब्द भी तो नहीं होता जो मेरे दिमाग़ और हृदय को अगील नहाँ करता । फिर भला मैं क्यों उनके पास मीन मेख निकालने जाऊँ ? जिन्हें कोई शंका-कुशंका हो या जो अखबारों में अपना नाम छुपाना चाहते हैं कि वे गांधी जी से मिलने गये थे, वे ही वहाँ जायँ ।

आश्चर्य नहीं जो उसका निश्चय हो चुका था कि वह विदेशी सरकार की नौकरी नहीं करेगा । विश्वविद्यालय में रिसर्च

अनन्त गोपाल शेवडे

करेगा और हो सके तो किसी गैर-सरकारी कालेज में अध्यापक बनेगा । और बाकी का समय जन-सेवा में लगाने का प्रयत्न करेगा ।

सन् बयालीस में अभय अपनी रिसर्च का आखिरी वर्ष पूरा कर रहा था, एक तो उसे पोस्ट-ग्रेजुएट छात्र-वृत्ति मिल गयी थी। और फिर चौधरी मैजिस्ट्रेट साहब के यहाँ के बच्चों की ट्यूशन थी जिससे उसे काफ़ी अच्छी आमदनी हो जाती। उसके परिवार में कोई ऐसा नहीं था जिसे रुपये-पैसे की हाय-हाय हो। उसका तथा उसकी माँ का यह स्वभाव हो तो आश्चर्य नहीं, पर यह विजया भी एक अद्भुत लड़की है जो अपने धनी चाचा का परिवार छोड़ कर इस गरीबी में भी सुख और मागल्य को छोड़ कर और कुछ अनुभव नहीं करती। बड़े-बड़े पलंगों पर गद्दे-मसहरियों में सोना, मेज़ पर बैठ कर स्वादिष्ट भोजन खाना, क्लब-सिनेमा जाना जैसे उसके जीवन पर कोई असर ही न डाल पाये हों। जैसे कमल पानी में रह कर भी बिलकुल सूखा-का सूखा ही रहता है। वह तो अभय को ही

अपना सब-कुछ मानती थी, और उसे पाने के बाद उसे और किसी वस्तु की कामना ही नहीं रह गयी थी। तीन केमरों के छोटे से मकान में ही उसने स्वर्ग बसा लिया। ज़मीन पर सौना पड़ता तो मजे में सो जाती। खाने में कभी दाल नदारद तो कभी सब्जी। दूध मुश्किल से मिल पाता और घी के तो कभी भूले-भटके ही दर्शन होते। अमय कई बार दुखी हो कर कहता—

“विजया रानी, तुम्हें इस कठोर जीवन की आदत नहीं है। बड़ा कष्ट होता होगा।”

“कौन कहता है ? मुझे यहाँ किस बात की कमी है ? वहाँ चाचा के यहाँ तो ऐसे लगता जैसे कृत्रिम जीवन है, खाना-पीना, खेलना-कूदना, सोना और गप्पे लगाना, इसे छोड़ कर कोई काम नहीं। जंगली भाड़ जैसे बढ़ते हैं न, उसी तरह जीवन था। कोई ध्येय नहीं, कोई आदर्श नहीं, कोई प्रश्न नहीं। ऐसा लगता कि बैठे-बैठे अन्दर से सड़ती जा रही हूँ। और यहाँ ? ऐसे लगता है कि जीवन के चैतन्य-स्रोत में आकर तैरने लगी हूँ। कितनी शांति, कितना आनन्द, कितना प्यार और कितना सुख मैंने यहाँ पाया है ? माँ जैसी साध्वी मुझे मिल गयी; ऐसा लगा अपनी माँ को बचपन में ही खोया था सो उसे फिर पा गयी। और तुम ? तुम्हें पाकर कौन सी नारी होगी जो अपने को धन्य अनुभव न करेगी ?”

अमय गद्गद् होकर कहता—“विजया रानी ! तुम प्रिय-दर्शिनी हो। हमेशा शुभ ही देखती हो, शुभत्व ही चारों ओर बिखेरती हो। तुमने तो आकर हमारी कुटिया में आनन्द का

मंगल-दीप ही प्रज्वलित कर दिया ।”

उन तीनों में कौन किससे अधिक भाग्यवान है, इसी की होड़ लगती । और सब मन-ही-मन इस होड़ी में अपने आपको सर्वप्रथम घोषित कर संतुष्ट हो जाते । यथार्थ में कितना सुखी परिवार था !

६ अगस्त सन् बयालीस के विस्फोट के पहले अंग्रेजों ने एक बार जोर की कोशिश की कि भारत के साथ समझौता हो जाय । समझौता भारत के नेतागण भी चाहते थे । इसलिए क्रिप्स-मिशन आया । खूब भेंट-मुलाकातें हुईं, लम्बी-लम्बी चर्चाएँ हुईं, रोज अखबारों के कालम भरे जाने लगे । उन दिनों तो भारत में इसे छोड़ कर और कोई विषय ही नहीं था ।

एक दिन शाम को अभय रेडियो सुनकर आया तो बोल—

“माँ, समझौता हो गया । हमारे दिन फिर गये ।”

“कैसे ? यह कैसे हो गया ?”—माँ ने पूछा ।

“दिल्ली से खबर आ गयी कि सब कुछ तय हो गया । अब सिर्फ कुछ दस्तखत होना ही बाकी है ।”—अभय ने बड़े उत्साह से कहा, “हम अब अपनी मंजिल से ज्यादा दूर नहीं हैं—”

“तुम कहते हो इसीलिए मान लेती हूँ बेटा ! पर बिना रक्त दिये कोई कीमती वस्तु हाथ नहीं लगती । अभी देश ने भोगा ही क्या है जो ऐसे बैठे-ठाले ही स्वराज्य मिल जायगा ? सात समुद्र पार से गोरे साहब आये और स्वराज्य दे गये, ऐसा भी कभी हुआ था ? मेरा तो विश्वास नहीं बैठता ।”

और बात वही निकली जो माँ को ठीक लगती थी । दूसरे

अनन्त गोपाल शेवडे

दिन समाचार मिला कि क्रिप्स-चर्चा भंग हो गयी और मिशन के लोग अपने देश जाने की तैयारी करने लगे । गांधी जी मौन होकर गंभीर हो गये ।

देश में भी एक प्रकार की हलचल होने लगी। लोगों ने सोचा कि एकदम दमन शुरू हो जायगा। पर नेताओं ने कहा, सब्र करो, परिस्थिति देखो और फिर कदम उठाओ। देश भर में सभाएँ होने लगी, यह बताने के लिए कि क्रिप्स-वार्ता क्यों भंग हो गयी। देश ने ६ अप्रैल से राष्ट्रीय-सप्ताह मनाया, १३ अप्रैल को जलियाँवाला बाग की याद में शहीदों की स्मृति में श्रद्धांजलि अर्पित की और १८ जून को भाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की पुण्यतिथि पर आँसू बहाये। कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं में जोश फैलने लगा। कांग्रेस कमेटियों में जान आ गयी। सभाएँ होने लगीं, जुलूस निकलने लगे, हमें कुछ-न-कुछ करना होगा, यह बात दिलों में उठने लगी।

इधर गांधी जी ने ललकार कर आवाज दी—“भारत छोड़ो।”

उधर सारे देश ने आवाज उठायी — “भारत छोड़ो ।”

नौकरशाही ने अपने हथियार पैसे करने शुरू किये । खुफिया पुलिस का जाल फैल गया । पुलिस, फ़ौजें और जेल की भरती होने लगी । सरकारी नौकरों के नाम गुप्त हिदायते जारी होने लगीं कि इस बार किसी ने कुछ कमजोरी दिखायी तो उसे पंचम-स्तम्भी करार देकर सख्त कार्रवाई की जायगी । और यदि मुस्लैदी दिखायी तो तरक्की दी जायगी । नतीजा यह हुआ कि कमजोरी कम लोगो ने दिखायी और मुस्लैदी बहुतेरों ने । बन्दूक की नलियाँ साफ़ होने लगीं, जूतों के सोल पर कीलें ठुकने लगी, जेल की काली कोठरियों की सफ़ाई होने लगी ।

और इसी वातावरण में आयी बम्बई ।

सरदार पटेल ने अपने भाषण से आग लगा दी । आज़ाद साहब ने जोश-ख़रोश की स्पीच दी और पंडित नेहरू तो चलते हुए अंगारे थे ही । पर अभय कुमार पर सबसे ज्यादा असर पड़ा गांधी जी का । वे जो कुसुम से भी कोमल थे अब तो वज्र से भी कठोर बने बैठे थे । बोले—

“मैं तो देश में शांति चाहता हूँ, पर श्मशान की शांति नहीं । पर आप लोग, अंग्रेज़, वह नहीं होने देना चाहते । आप चाहते हैं कि हिन्दुस्तान लड़ाई में खप जाय और आप की मदद करता जाय और आप उसे कुछ न दें । तो मैं कहता हूँ कि गुलाम हिन्दुस्तान की लाश को पीठ पर लादे आप कभी लड़ाई नहीं लड़ सकते । उसे छोड़ दीजिए, और आप देखेंगे कि आपका भार बहुत हल्का हो गया है । उस लाश में भी जान आ जायगी और वह भी आपकी तरफ़ से लड़ने लगेगी ।

“पर आप यह नहीं चाहते हैं। आप तो यही कहते हैं कि हमारी सब तरह से मदद करो क्योंकि हम पर मुसीबत है, पर अपनी बात अभी कुछ मत कहो—बाद में देख लेंगे। तो अब यह चलने वाला नहीं है। मैंने तो तय कर लिया है कि हम या तो करेंगे या मरेंगे। मेरे साथ कोई न भी आये तब भी मैं तो अकेला ही इस मार्ग पर जाऊँगा, क्योंकि अब मेरा विश्वास हो गया है कि इसके सिवा और कोई चारा नहीं है। इसके बाद फिर देश में जो कुछ होगा उसकी ज़िम्मेदारी मेरी नहीं होगी, आपकी होगी। और सारे देश में कुछ भी हो जाय, मैं अब अपना हाथ खींचने वाला नहीं हूँ।”

अभय कुमार दत्तचित्त होकर गांधी जी का भाषण सुनता रहा। एक-एक शब्द, स्पष्ट और जानदार होकर निकल रहा था। उसमें युग की वाणी बोल रही थी। कहीं कोई असमंजस नहीं, भ्रम नहीं, कमजोरी नहीं। भारत की सारी संचित शक्ति और पुण्य ही मानो उस एक महात्मा में साकार होकर अभिव्यक्त हो रहा था। अभय कुमार का मन अभिमूत हो गया।

गांधी जी ने एक बात और कही, जो उसके दिमाग को बहुत दूर तक ले गयी—

“मैं जो सोचता हूँ और करना चाहता हूँ वह सिर्फ हिन्दुस्तान की दृष्टि से ही नहीं है, सारी दुनिया की दृष्टि से है। मैं तो सब देशों का दोस्त बनना चाहता हूँ, अंग्रेजों का भी हूँ, और दुनिया में जो लड़ाई लड़ रहे हैं, उनका भी हूँ। आज जो दुनिया की बरबादी हो रही है, उससे मेरा दिल रोता है। आदमी तो बिलकुल गिर गया है, जानवर हो गया है। यह सब

जो हो रहा है, वह चुनौती है उसे, जो मैं ज़िन्दगी भर मानता आया हूँ। जब चारों तरफ हिंसा की आग फैली है तब मैं, जो अहिंसा में ही सम्पूर्ण विश्वास रखता हूँ, कैसे चुप बैठ सकता हूँ ? मैं निकम्मा बैठूँ तो मेरा ईश्वर मुझ से पूछेगा कि पागल, मैंने तुम्हें एक हीरा दिया था, तो जब काम पड़ा तब तुने उसका क्या किया ? तो मैं क्या जवाब दूँगा ? इसलिए 'मेरी फरज' है कि जो चीज़ मैं मानता हूँ वह या तो कलूँ या फिर मर जाऊँ। मैं तो सिर्फ हिन्दुस्तान को ही उठाना नहीं चाहता, तमाम दुनिया को उठाना चाहता हूँ और बताना चाहता हूँ कि तुम्हारा रास्ता ग़लत है, उसे छोड़ दो। पर मैं दुनिया को किस मुँह से कह सकता हूँ जब मेरे अपने देश ही में मैं कुछ नहीं कर पाया। तो हमें तो आज़ादी लेनी ही है। वह मिल जाय तो फिर मैं दुनिया को कह सकूँ कि आप हिंसा छोड़ दें, और दुनिया फिर मेरी बात सुन भी सकती है। पर आज मैं क्या कह सकता हूँ ? मैं तो लाचार हूँ।

पर मैं अब लाचार नहीं बनना चाहता हूँ। मैं तो अंग्रेज़ों का भी पुराना दोस्त हूँ और आज भी वे यदि खोजेंगे तो मैं उनकी जेब में हूँ। मैं जो रास्ता सुझाता हूँ, वह उनकी भी भलाई का है। वे उसे मान लें और हिन्दुस्तान को आज़ादी दें तो दुनिया पर एक जादू का-सा असर पड़ जायगा और लड़ाई की शकल ही बदल जायगी। मेरी लड़ाई सिर्फ हिन्दुस्तान की भलाई के लिए ही नहीं है, दुनिया की भलाई के लिए है। पर यदि अंग्रेज़ न मानें तो फिर अब मेरे पास ठहरने के लिए वक्त नहीं है। दुनिया की इस बढ़ती हुई हिंसा में मैं चुप नहीं रह

सकता । मैं या तो कल्लंगा या तो मल्लंगा । वह मेरा धर्म है । तीसरी बात मेरे लिए नहीं है—”

अभय कुमार गांधी जी के भाषण देते समय की उस मुद्रा को कभी नहीं भूल सका । कुसुम जैसा कोमल व्यक्ति आज वज्र जैसा कठोर हो गया था । रात्रि की नीरवता में सभा-मंडप में बैठा हुआ वह अपार जन-समूह, जिसमें स्त्री-पुरुष सब शामिल थे, मंत्र-मुग्ध होकर भारतीय आत्मा की वाणी को, एक-एक शब्द को हृदयंगम कर रहा था । सारे वातावरण में एक अपूर्व पावनता छा रही थी । हम उठ रहे हैं, ऊपर उठ रहे हैं, ऐसा अनुभव हो रहा था । ऐसा लगा सचमुच शायद ये क्षण समय के पदों पर अमिट छाप छोड़ जाने वाले हैं । विश्व के इतिहास में ऐसे प्रसंग आये हैं कि एक ही भाषण ने क्रांति मचायी है । आज का भाषण उसी कोटि का था ।

अभय कुमार भाव-विभोर हो गया । उसने अनुभव किया जैसे उसमें किसी दिव्य शक्ति का संचार हो गया हो । सोचने लगा—‘कैसा यह पुरुष है ? ईश्वर है या अवतार’ यह तो साक्षात् भगवान ही जानें । अपने लिए सिवा एक लाठी और लँगोटी के और कुछ नहीं रखा है, जो अपना घर फूँक कर सब का घर आबाद करना चाहता है । मर कर जीने का सबक सिखाता है । उसके हृदय में सारी मानव-जाति के लिए कृपा और प्रेम समाया हुआ है । भारत की सारी आध्यात्मिक लुधा उसे देख कर तृप्ति अनुभव करती है । उसकी साँसों में भारतीय जनता अपनी साँसें अनुभव करती है, उनके हृदय की धड़कन में भारत की आत्मा का हृदय धड़कता है । सारा-का-सारा राष्ट्र ही जैसे

अनन्त गोपाल शेवडे

एक व्यक्ति में साकार, मूर्त हो उठा हो । सचमुच गांधी व्यक्ति नहीं, एक उत्क्रांति है । हमारा यह कैसा अहो भाग्य जो हम उसके युग में पैदा हुए, उसके दर्शन से पुनीत हुए । आनेवाली पीढ़ियाँ क्यों न हमारे सौभाग्य से ईर्षा करें ?

अभय कुमार ने मन-ही-मन उसे नमस्कार किया । और न जाने क्यों, उसने देखा कि उसकी आँखों में आँसू आ गये ।



यहाँ गांधी जी के शब्द लोगों के कानों में गूँज ही रहे थे कि आठ अगस्त की उस अँधेरी रात्रि को पुलिस की मोटरों की घर-घर और फ़ौजी जूतों की टापों से बम्बई की गलियाँ प्रति-ध्वनित हो उठीं। रात-बेरात महात्मा गांधी जी, सरदार पटेल, जवाहरलाल नेहरू, मौलाना आज़ाद और वर्किंग कमेटी के सभी सदस्य गिरफ़्तार कर लिये गये और स्पेशल गाड़ी से पूना और अहमदनगर किले की ओर रवाना कर दिये गये, जहाँ उनकी नज़र बन्दी का इन्तज़ाम पहले से हो चुका था।

नेताओं की गिरफ़्तारी से जनता, जो पहले ही प्रचुम्ब थी उमड़ पड़ी। गोवालिया टैंक पर झंडा-वन्दन के लिए जो अपार जन-समूह था, उस पर घोड़े दौड़ाये गये, अश्रु-गैस के बम फेंके गये। शहर में बाइस-तेइस बार गोली चली। बसें जर्ली, ट्राम और रेल की पटरियाँ उखड़ी, बिजली के तार काटे

अनन्त गोपाल शेवडे

गये । यानी जनता के मन में जो आया, उसने किया । उनका नेतृत्व करने वाला उसकी नब्ज पहचानने वाला, उन्हें काबू में रखने वाला जो व्यक्ति था, वह जेल में पहले ही बन्द कर दिया गया था ।

ऐसा जान पड़ता था कि सरकार देश में हिंसा और अराजकता चाहती थी, क्योंकि उसे सरकार की जबरदस्त प्रतिहिंसा से दबाया जा सकता था, इस बेरहमी और सखती के साथ कि फिर भारतीय जनता बरसों तक सिर न उठा सके । और तब तक अपना डण्डे का राज्य कायम और सुरक्षित रखा जा सके ।

भारतीय जनता भी तुल गयी थी कि इस बार शक्ति से ही शक्ति का मुकाबला हो जाय । पुलिस बात-बात में गोली दाग देती, दो-चार का पटापट मर जाना साधारण घटना थी । कोई दिन नहीं जाता जब खून न बहता ।

यहाँ जनता ने भी कहीं-कहीं भनमानी शुरू कर दी । पुलिस के थानों पर छापे पड़े, सरकारी खजाने लूटे गये, सरकारी हथियार जब्त किये गये । अदालतों या सरकारी दफ्तरों में आग लगा दी गयी, और दो-एक जगह ऐसा भी हुआ कि सरकारी नौकरों की हत्या तक हो गयी । रेल गाड़ी को उलटने के, पुल तोड़ने के भी प्रयत्न यदा-कदा हुए ।

ईंट का जबाब पत्थर से मिला । सरकारी दमन-चक्र की सखती भंयकर हो गयी । कई-कई गाँवों पर एक साथ फ़ौजों ने घेरा डाल दिया । लोगों के मकानों में घुस कर वहाँ का माल सामान जब्त कर लिया । पुरुषों को गिरफ़्तार कर डाला, औरतों ने संगीनों के साथे में जुलूस निकाले । पशुता के प्रमाद में स्त्रियों

ज्वालामुखी

की इज्जत लूटने की शिकायतें भी सुनी गयीं ।

गांधी जी के जो अनुयायी थे, वे शांति के लिए जी-जान से कोशिश करते थे कि जनता सब कुछ करे, हिंसा का कार्य न करे । मरना है तो अहिंसा के लिए ही । दुश्मन की ओर उँगली भी न उठे, आँख जरा भी टेढ़ी न हो । हृदय में भी द्वेष न हो ।

पर देश में एक बड़ा दल था जो कहता था कि गांधी जी तो कह ही गये हैं कि करेंगे या मरेंगे । करेंगे का मतलब है, सब कुछ करेंगे, करने में कोई कसर नहीं रखेंगे । और मरेंगे ज़रूर, पर मार कर मरेंगे, वैसे बेमतलब नहीं मरेंगे ।

दोनों के दल अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार कार्य कर रहे थे । गांधीवादी लोग जी-जान से हिंसा को रोकने की कोशिश कर रहे थे । पर दूसरे दल के लोग, गांधी जी की गैर-हाजिरी का फ़ायदा उठा कर हिंसात्मक मार्ग पर बढ़ते चले जा रहे थे । वे कहते थे, यह क्रांति है । सारा देश बलवा कर चुका है । आग भड़क उठी है । ये गांधीवादी लोग किताबी सत्त्वों को जानते हैं, दुनिया के यथार्थ को नहीं जानते । संयम और शांति से भी कभी क्रांति होती है !

भारत की जेलें ठसाठस भर गयीं, इतनी कि राजबन्दियों के लिए नयी बैरकें बनानी पड़ीं । कोई घर ऐसा नहीं था जहाँ कोई न कोई बालिग जेल या फिर लड़ाई के मोर्चे पर न गया हो । विद्योग और विरह, अपमान और लांछन, ठोकरें और खुशामद का वातावरण चारों ओर था । दमन-चक्र की विकरालता से आन्दोलन की कमर टूटती-सी दिखायी दी । नेताओं के अभाव में

अनन्त गोपाल शैवडे

जनता निरुत्साह हो गयी । देश में चारों तरफ़ मुर्दनी छा गयी । देश की जो तेजस्वी आवाज़ थी, उन्हें तो पहले ही जेलों में बन्द करके उनका गला दबोच दिया गया था । बाहर श्मशान की शांति छा गयी । कोई भी सार्वजनिक नेता जेल के बाहर नहीं रहा । फिर जनता किसके बल पर चले ?



बम्बई में नेताओं की गिरफ्तारी के बाद जो लोग बच रहे थे, खोज-खाज कर उनकी एक गुप्त सभा का आयोजन किया गया। अभय कुमार को भी उसमें बुलाया गया। उसमें किसी ने एक टाइप किया हुआ कार्यक्रम निकाला। कहा गांधी जी यदि बाहर रहते तो यही कार्यक्रम बताते। गांधीवादी लोगों ने कहा कि इसमें सत्याग्रह और अहिंसात्मक कार्यक्रम को छोड़ कर और किसी पर अमल नहीं होना चाहिए। समाजवादी क्रांतिकारियों ने कहा कि इसमें रेल की पटरियाँ उखाड़ी जा सकती हैं, तार के खम्बे काटे जा सकते हैं यानी जिस किसी भी तरीके से युद्ध कार्य में बाधा पैदा हो, वह किया जा सकता है। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की ओर से भी एक विज्ञप्ति बाँटी गयी और कार्यकर्ताओं से कहा गया कि वे इसे अपने-अपने प्रान्तीय केन्द्रों को पहुँचा दें और उसके पहले हरगिज़ गिरफ्तार न हों।

अनन्त गोपाल शेवडे

इन संदेश-वाहकों के लिए तब तक जेल जानेनही मी थी, जब तक वे इस जिम्मेदारी को पूरा नहीं कर लेते । अभय कुमार को भी यही काम सौंपा गया ।

अभय कुमार अक्सर खादी का कुरता और धोती ही पहना करता था । आम तौर पर राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं की यही पोशाक थी । इसी पोशाक में वह निकले तो गिरफ्तारी निश्चित थी और कांग्रेस के पक्षों के बंडलों को नागपुर पहुँचाये बिना वह कतई गिरफ्तार नहीं होना चाहता था । वह अब उसका राष्ट्रीय कर्तव्य हो गया था । यदि कहीं पुलिस ने छापा मारा तो पहले प्राण जायेंगे और बात में पचें उनके हाथ लगेंगे ।

बम्बई की आँखो-देखी घटनाओं के कारण उसके दिल में एक नशा-सा छा गया । गांधी जी की गिरफ्तारी के बाद जो आग भड़क उठी, उसकी ज्वालाएँ घर-घर में पहुँच गयीं । देश पागल हो उठा । कोने-कोने में, गाँव-गाँव में, घर-घर में एक ही आवाज़ गूँज उठी—करेंगे या मरेंगे । बस यही पर्व-काल है, यही स्वतंत्रता का प्रसव काल है, भारत के उत्थान की यही बेला है । आँखों के सामने ही इतिहास बन रहा है । इस समय आँखों के सामने एक ही दृश्य दिखता है—देश ! एक ही पुकार कानों में पड़ रही है—देश की पुकार ! हृदय में एक ही स्पंदन है—देश-भक्ति का ! आत्मा को चिर-मिलन के लिए एक ही शक्ति बुला रही है—भारतीय आत्मा । इस समय व्यक्तिगत सुख-दुख, स्वार्थ और दुनियादारी कैसी ? जीवन की एक-एक साँस, शरीर के रक्त की एक-एक बूँद अर्पित है देश को—जिसकी भूमि के अन्न और जल से यह शरीर पला । बस, सब कुछ दे देना है, पास में कुछ

भी नहीं रख छोड़ना है। और जो देता है, वही तो पाता है न ! इसी दे देने की मस्ती में ही अभय कुमार भूम उठा।

पुराने फ़ौजी कपड़ों की दूकान से अभय कुमार ने एक खाकी ड्रेस खरीद लिया। खाकी टोप जूते आदि पहनने के बाद तो उसे पहचानना भी मुश्किल था। चमड़े के सूटकेस में उसने पर्चे छिपाकर रखे और हाथ में बैत घुमाते हुए इस तरह घूमने लगा जैसे फ़ौजी सिपाही छुट्टी पर जा रहा हो। चूँकि मेल और एक्सप्रेस ट्रेन पर पुलिस की कड़ी निगरानी रहती थी, वह रात की पैसेंजर गाड़ी से रवाना हुआ। जहाँ सुबह होती, वहाँ उतर पड़ता। दिन भर किसी सराय में या होटल में गुज़ारता। और रात में फिर रेलगाड़ी में सवार होता। इस तरह वह सोलह घंटों की जगह तीन दिन में नागपुर पहुँचा।

जिस समय वह नागपुर स्टेशन पर पहुँचा तब रात के साढ़े दस बजे थे। खिड़की से बाहर झाँका तो पाया कि पुलिस का एक बड़ा जत्था, मय मैजिस्ट्रेट के प्लेटफ़ार्म पर घूम रहा है। और हरेक यात्री को घूर-घूर कर देख रहा है। अभय ने सोचा क्या पुलिस को मेरे आने का पता चल गया है ? अभय ने देखा, अधिकांश पुलिस सिपाहियों के हाथ में डंडे हैं। साथ में सात-आठ मिलिटरी सिपाही भी हैं, जिनके हाथ में संगीनें हैं। पुलिस इन्स्पेक्टरों के हाथ में पिस्तौलें हैं। निस्संदेह उन्हें खुफिया तौर पर मालूम हो गया है कि बम्बई से कांग्रेस की लड़ाई के पर्चे लेकर कोई आदमी आ रहा है। उनको ज़ब्त करना ज़रूरी है। उसी के स्वागत की यह तैयारी थी।

अभय ने जान लिया कि वह यदि प्लेटफ़ार्म पर उतरा तो

अवश्य गिरफ्तार हो जायगा। नागपुर विश्वविद्यालय का वह मशहूर विद्यार्थी रह चुका है। कई भाषणों, डिबेटों में हिस्सा लिया है, लोग उसे पहचानते हैं। और फिर यह खाकी ड्रेस। पहले तो कभी पहना नहीं था। आज इसे देखते ही उन्हें शक होगा। और यदि उसके सूटकेस की तलाशी ली गयी तो फिर वह कहीं का नहीं रहेगा। गिरफ्तारी की उसे चिन्ता नहीं है, पर ये पच्चे यदि कांग्रेस कमेटी में न पहुँच पाये तो क्या होगा? इसी की उसे चिन्ता थी। इसके आगे प्राणों की भी नहीं थी।

गाड़ी नागपुर से आगे नहीं जा रही थी। देखते-देखते खाली हो गयी। वह उसमें अकेला रहे तब भी पुलिस की नज़र उस पर जायगी ही—आखिर यह अब तक अकेला क्यों बैठा है? तो क्या करे, कैसे बच कर जाय?

उसने सामान तो प्लेटफार्म पर उतरवा लिया और दूर आँधरे में घूमने लगा। एकाएक उसने सुना—

“अरे अभय, यहाँ कहाँ?”

वह चौंक उठा। आखिर पकड़ा गया न? पीछे मुड़ कर देखा—

वह आदमी वहीं पहने हुए तो था, पर वह वहीं पुलिस की नहीं थी, रेल्वे की थी।

“कौन, भार्गव?”—अभय ने पूछा।

“हाँ रॉ, ग़नोमत है कि तुमने मुझे पहचान लिया। मैंने सोचा बारह साल बाद मिले—भगवान जाने पहचान सकोगे या नहीं?”

अभय को याद आया कि भार्गव उसके साथ तीसरी-चौथी

श्रेणी में पढ़ता था। दोनों साथ हाकी खेलते थे। स्कूल व स्काउट-समिति में भी थे। अब वह रेल्वे गार्ड हो गया है।

स्कूल या कालेज के पुराने सहपाठियों के बीच आत्मीयता की एक ऐसी ज़बरदस्त डोर होती है जो कभी-कभी रक्त सम्बन्ध से भी मजबूत साबित होती है।

भार्गव ने बताया कि शहर में मिलिटरी का घेरा है नेताओं की गिरफ्तारी के बाद चार-पाँच बार गोली चली कोई कहता है अब तक तेईस आदमी मारे गये, कोई कहता सत्तावन। सेक्रेटैरिएट पर चढ़कर एक विद्यार्थी यूनियन जै उतार रहा था, उसे गोली मार दी गयी। शहर में तरह-तरह की अफवाहें हैं, सच-भूठ राम जाने। इस वक्त कफ़रू लगा है बाहर निकलना ख़तरे से ख़ाली नहीं। चारों तरफ़ आतं फैला है।

अख़बार बन्द थे, यातायात के साधन ठप हो गये थे तार-टेलीफ़ोन कट गये थे। अभय को लगा कि भार्गव जो बत रहा है वह किसी समाचार पत्र से क्या कम है ?

“तुम इस समय बाहर मत निकलना, अभय ! अँधेरे में गोली चलना मुश्किल नहीं। क्यों नाइक जान को जोखिम में डालते हो।”

“पर प्लेटफ़ार्म भी तो ख़तरे से ख़ाली नहीं है। पुलिस त यहाँ भी चक्कर काट रही है। हर गाड़ी पर उसकी नज़र है—” अभय ने कहा।

“तो चलो, मेरे साथ मेरे क्वार्टर में चलो। रात वह बिताओ। कल की कल देखी जायगी।”

अनन्त गोपाल शेवड़े

“नहीं भाई, मेरे कारण तुम अपनी नौकरी ख़तरे में डालो, मैं यह नहीं चाहता—”

“अरे यार, पुराने दोस्त के लिए आदमी क्या नहीं करता ? तुम लोग जो देश के लिए लड़ रहे हो, उनके लिए हम इतना-सा भी न करें ? हम तो सिर्फ़ पेट-पानी पालने वाले कीड़े हैं। तुम लोगों की क्षण-दो-क्षण सेवा कर सकें, इतना सौभाग्य हमें कहाँ ?”

अभय गदगद हो गया। उसने देखा कि रेलवे की काली पोशाक के भीतर भार्गव का शुद्ध अन्तःकरण छिपा हुआ है। मनुष्य के बाहरी आवरण से उसके अन्तर्मन का अन्दाज़ लगाना कितना कठिन होता है ?

अभय ने रेलवे क्वार्टर जाने से इन्कार कर दिया, इसलिए भार्गव ने उसे अजनी लोकल में एक पहले दर्जे के डिब्बे में चढ़ा दिया। कहा कि यह गाड़ी बिल्कुल खाली है—रात भर शंटिंग करती रहेगी। उसी में पड़े रहना। तुम्हारी तरफ़ किसी का ध्यान भी नहीं जायगा। सुबह होते ही गाड़ी अजनी के प्लेटफ़ॉर्म पर लग जायगी। वहीं से उतर कर जेल के अहाते के पीछे से ही घर पहुँच जाना। पुलिस का उस जगह पहरा नहीं है।

दूसरे दिन सुबह अभय घर पहुँच गया। उसका खाकी ड्रेस देख कर पलभर के लिए तो माँ उसे पहचान नहीं पायी, पर जब पहचाना तो बोली, “विजया बेटी, ज़रा इसकी नज़र तो उतार दो। चार दिन से भूख-प्यास हराम हो गयी है। बम्बई की खबरें सुन कर तो दिल काँप उठता था। वहाँ की गिरफ्तारी, गोली-बारी, आग और मार-कमट की खबरें सुन कर तो ऐसा लगता था कि जाने तू सुरक्षित कैसे लौटेगा? आज आ गया है—अब आज चैन की नींद सोयेंगे।”

“ऐसा करने से कैसे चलेगा, माँ!”—अभय बोला, “यह तो ज्वालामुखी का पहला स्फोट है, क्रांति का प्रारम्भ है। कुछ लोग तो इन चार दिनों के भीतर ही अपना शरीर छोड़ कर शहीद हो गये। अब ये लपटें तो गाँव-गाँव में फैलेंगी। तब क्या होगा, कौन कह सकता है? इसलिए कोई घर से गया तो

वापस लौट कर आयागा ही, यह आशा रखना ही व्यर्थ है। आया तो घड़ी-दो-घड़ी के लिए आ गया, पर इस घर की अपेक्षा तो बड़े घर का निवास ही अब भारत के देशसेवियों के भाग्य में लिखा है। किस्मत ज्यादा खुली तो बन्दूक की गोली या फाँसी के फन्दे पर ही भाग्य भूलेगा। वह दिन कितना गौरवमय, कितना पुनीत होगा माँ !”

“अरे, यह सब क्यों बोलता है, बेटा। यह मैं जानती हूँ कि चारों तरफ आग लग रही है, तो हमको आँच लगे बगैर कैसे रहेगी ? गांधी जी के हुकुम से देश के लिए यह बर्दाश्त करना पड़े तो उसमें क्या हर्ज है ? बड़े-बड़े नेता जेल चले गये, कई माताओं की गोदें सूती हो गयीं, कई घर उजड़ गये—उसमें हम जैसे छोटे-मोटे लोगो को भी कुछ तकलीफ अगर उठानी पड़े तो क्या बात है ? कल क्या होगा सो तो भगवान ही जाने, पर आज तू सकुशल घर लौट आया है तो क्या मैं खुशियाँ न मनाऊँगी ?”

“हाँ माँ, आज तो घर लौटा हूँ—पर रात ही फिर निकल जाना है। गाँव-गाँव बम्बई कांग्रेस का संदेश पहुँचाना है। नेता सब जेल में बन्द हैं। जनता कहीं गुमराह न हो जाय और जो आग भड़की है वह शांत न होने पाये। सन् सत्तावन की क्रांति अब सन् बयालीस में पूरी करनी है। ऐसी घड़ी बार-बार नहीं आती माँ ।”

यह सब तो मैं नहीं जानती बेटा। इतना ज़रूर जानती हूँ कि यह सब जो हो रहा है, वह भगवान की प्रेरणा से हो रहा है। तुम्हे जैसा ठीक जँचे वैसा ही करो। पर ऐसा कुछ न करना

ज्वालामुखी

जिससे तुम्हारी माँ का दूध लजाये । मैं नहीं चाहती कि मेरी भावनाएँ तुम्हारे रास्ते का काँटा बनें । भगवान को सब की लाज फ़िकर है । वे तुम्हारी भी रक्षा करेंगे और हमारी भी ।”

अभय ने दिन भर में छद्मवेशी स्वयं-सेवकों द्वारा कांग्रेस कमेटी के मन्त्री से सम्पर्क स्थापित कर लिया और कार्यक्रम के परचों का गढ़ा उन्हें निश्चित होकर सौंप दिया । मन्त्री का संदेश आया कि नागपुर से तीन मील दूर एक देहात में रात को कार्यकर्ताओं की एक गुप्त सभा होगी, उस में अभय ज़रूर आये और बम्बई में जो हुआ, वह उन्हें बता कर उनका मार्गदर्शन करे । सब कार्यकर्ता गुप्तरूप से वहाँ पहुँचने वाले हैं—पुलिस को पता न लगे ऐसा करना है । नहीं तो चार-पाँच लारियाँ आकर सबको गिरफ्तार कर लेगी, अत्यन्त सावधानी की ज़रूरत है । अभय ने जबाब दिया, “ठीक है । हुक्म की पूरी-पूरी तामील होगी ।”



जब माँ पूजा में बैठ गयी तो विजया अपने सोने के कमरे में गयी जहाँ अभय लेटा हुआ था। दीवाल की तरफ मुँह था, आँखें मुँदी हुई थीं। विजया धीरे से पैताने बैठ गयी और उसने अपना हाथ उसके पैरों पर रख दिया। उसके ममता भरे स्पर्श से वह चौंक कर उठ बैठा—

“यह क्या करती हो रानी?”

“बहुत थके-माँदे आये हो। सोचा, थोड़े पेर ही दबा दूँ।

“नहीं नहीं। थकने-वकने की कोई बात नहीं। यों ही लेटे-लेटे आराम कर रहा था। आजकल दिनभर पुलिस की सर-गर्मी रहती है इसलिए हमें तो घर में ही समय काटना पड़ता है। हाँ, रात हमारी है।”

“क्या आज ही रात को जाना होगा?”—विजया ने पूछा।

“हाँ विजया! अब तो एक भी क्षण खोने को नहीं है।”

“आज रात को जाओगे तो कब लौटोगे ?”—विजया ने पूछा ।

“कहना कठिन है । नौ अगस्त को जो विस्फोट हुआ है, उसकी ज्वालाएँ दूर-दूर तक फैली हैं—फैल रही हैं । नेताओं के बाहर न रहने से जनता गुमराह न हो जाय, इसका डर है । जनता में जोश बहुत है—वह फट पड़ने के निकट है । उसे ठीक रास्ता न मिला तो गलत रास्ते भड़केगा । पर वह अब शांत नहीं बैठ सकता । हिंसा में विश्वास रखने वाले क्रांतिकारी, जनता को हिंसा के लिए उभाड़ रहे हैं । हिंसा फट पड़े, यह सरकार भी चाहती है क्योंकि उसका दमन करना वह जानती है । जनता ने एकाध पुलिस थाने या कचहरी में आग लगायी तो सरकार गाँव-के-गाँव जला डालेगी । एक सरकारी आफसर का खून हुआ तो सारे जमाव पर मशीनगन चला कर लाशें बिछा देगी । हिंसा से निपटना वह जानती है, अहिंसा के सामने उसका झुक गिर पड़ता है । कायरता से तो हिंसा अच्छी, पर उससे बढ़े पैमाने पर काम होना मुश्किल है । और हिंसा का जवाब सरकार की सौगुनी क्रूर हिंसा से मिला तो जनता का दिल बैठ जाने का डर है । इसे रोकना जरूरी है । इसी के लिए मैं अपनी सारी ताकत लगाने वाला हूँ ।” अभय ने कहा ।

“पर यह काम कितने दिन कर सकोगे ? पड़ोस के राय-साहब का लड़का कह रहा था कि परसों उनके यहाँ खुफिया पुलिस तुम्हारी पूछताछ कर गयी थी । शायद तुम्हारी गिरफ्तारी का इन्तजाम हो रहा हो ।”—विजया ने कहा ।

“हाँ, हो सकता है । जिस पैमाने पर पुलिस की छान-बीन

चली है, उससे तो यह लगता है कि कोई भी आदमी जिसके बारे में ज़रा भी शक है, जेल के बाहर नहीं रह सकेगा। पर गिरफ्तार हो जाना तो आसान है। अभी मैं थाने के सामने से निकलूँ तो फ़ौरन पकड़ लिया जाऊँ। पर इससे काम कैसे चलेगा? आज की ज़रूरत तो यह है कि कार्यकर्ता अधिक-से-अधिक तादाद में गिरफ्तारी से बचें और प्रचार करते रहें। सतत घूमते रहें। एक रात से अधिक एक जगह रहना भी मुश्किल है। पुलिस की टोह तो सतत ही जारी है—”

“हाँ, सो तो होगी ही। पर प्रचार में क्या कहोगे।”

“कहूँगा क्या? वही जो बम्बई के परचों में लिखा है। वह आदेश गाँव गाँव में पहुँचे, लड़ाई के काम से असहयोग हो, कानून भंग किये जायँ, जिस तरह से भी हो गांधी जी के आदेशों पर चल कर विदेशी शासन की मशीन ठप्प कर दी जाय—यही सब तो करना है। जहाँ जनता शांत है, वहाँ पुलिस हिंसा को भड़का रही है क्योंकि फिर उसे हथियार उठाने का बहाना मिल जाता है। यह एक भयंकर चीज़ है—जहाँ तक हो सके जनता को इससे बचाना है।”

“पर तुम ज्यादा दिन स्वतंत्र घूम सकोगे, ऐसा मुझे नहीं लगता। यदि पकड़े गये तो कितने दिन जेल में रहना पड़ेगा?”

“जेल में सड़ना तो मुझे पसन्द नहीं विजया। मैं तो उसे जहाँ तक बने, टालूँगा। पर जेल में क्या खतरा है? गिरफ्तार व्यक्तियों को, हो सकता है कि लड़ाई चलते तक बन्द रखा जाय—लड़ाई चल सकती है तीन-चार साल या ज्यादा भी। खतरा तो वास्तव में बाहर है। और असल में वही सच्चे

कार्यकर्ता का कार्यक्षेत्र होना चाहिए ।” —अभय बोल ।

“बाहर का खतरा कैसा ?” —विजया ने भयभीत होकर पूछा ।

“खतरा यही पुलिस की लाठी या गोली का । आजकल हम गुलाम हिन्दुस्तानियों की जिन्दगी का मूल्य ही क्या है, विजया ? लड़ाई की तैयारी में हम खलल डालते हैं । इस नाम पर जुलूस-के-जुलूस मशीनगन से उड़ा दिये जाते हैं । देशसेवियों पर दहशत बिठलाने के लिए फाँसी और काले पानी की सजाएँ देना क्या मुश्किल है ? अंग्रेजी राज हिलने लगे तो हो सकता है कि देशभक्तों की कतारों-की-कतारों को लाइन में खड़ा करके गोलियों से तड़ातड़ उड़ा दिया जाय, जैसा कि रूस में हुआ था । सन सत्तावन में तो विद्रोहियों को आम चौराहों पर पेड़ों की डालों से लटका कर दिन-दहाड़े फाँसी चढ़ा दिया गया था । सत्तावन के ग़दर की तरह ही तो आज देश में क्रांति मची हुई है विजया ! इसमें किसे क्या कीमत चुकानी पड़े, कौन कह सकता है ? आज का दिन गया सो गया । कल क्या होगा, यह कौन बता सकता है ?”

यह सब सुन कर विजया का दिल काँप उठा । उसे अकस्मात् विवाह के दिन का नीरांजन बुझने का अपशकुन याद आया और सहसा उसकी आँखों में पानी आ गया, जो वह चाहते हुए भी न छिपा सकी ।

अभय का दिल भी द्रवित हो गया । उसने विजया को पास खींचते हुए कहा—

“पगली, इसमें रोने की क्या बात है ? यह तो गौरव और सौभाग्य की बात है कि हम इस ऐतिहासिक ज़माने में पैदा हुए

और उसमें काम करने का हमें मौका मिला। स्वतन्त्रता की लड़ाई का पुण्यपर्व बार-बार नहीं आता विजया ! हम जीत गये तो देश को स्वतन्त्र बना हुआ देखेंगे। हार गये तो हार देखने के लिए हम जिन्दा ही क्यों रहेंगे ? सफलता मिलने तक लड़ते रहना, न मिले तो लड़ते-लड़ते मर जाना, इसके सिवा हमारे पास और कोई रास्ता नहीं है। बम्बई में तो अफ़वाह थी कि गांधी जी आमरण उपवास शुरू करने वाले हैं। इसी से जान लो कि वे कितने दृढ़ हैं, और हमें कितना दृढ़ रहना है। नहीं विजया, इस बार किसी बात की कोर-कसर नहीं रखनी है। यह हमारी स्वतन्त्रता की आखिरी लड़ाई है और यह तो हर कीमत देकर जीतनी ही है। आज गीता का सन्देश ही हमारे लिए उपयुक्त है—

“हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं, जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मात् उत्तिष्ठ कौतेय, युद्धाय कृतनिश्चयः।”

अभय की ओजस्वी वाणी सुन कर विजया अपना दुख भी भूल गयी। बोली—

“मैं भी इस संग्राम में अपनी आहुति क्यों न दूँ, अभय ?”

“तुम ? मैं तुम्हें बड़ी खुशी से इसके लिए प्रोत्साहन देता, यदि तुम्हारी कोख में नया जीवन न छिपा रहता। उसके लिए तो तुम्हें सावधानी से काम लेना ही होगा।”—और एकदम विजया की हालत का भान होते ही उसका दिल करुणा और चिन्ता से भर गया। अत्यन्त आत्मीयता से भरे स्वर में बोला—

“तुमने लोड़ी डाक्टर से जाँच करवा ली थी न ? क्या कहती है ?”

अनन्त गोपाल शेवड़े

“हाँ, जाँच तो करवा ली थी। कहती है, सब ठीक है। अभी तो छः महीने बाकी हैं। कैल्शियम के इन्जेक्शन लेने को कहा है सो मैं ले रही हूँ।”

“देखो रानी, मैं अभी से बताये देता हूँ कि लड़की होगी तो उसका नाम रखना है क्रांति ! और लड़का हुआ तो क्रांतिकुमार। और समझो कि इस लड़ाई में मैं ज़िन्दा न बचा तो मेरे बच्चे से कहना कि यह लड़ाई जारी रखनी है, तब तक जब तक कि इस विशाल देश के नभोमण्डल से पराधीनता के काले बादल पूरी तरह से हट न जायँ—समझीं ! माँ तुम्हारे साथ है, इसलिए मुझे किसी बात की चिन्ता नहीं है। वह बड़ी समझदार है, बड़ी सहिष्णु है। उसका आश्रय न होता तो मेरा न जाने क्या हुआ होता ?”—अभय ने कहा।

“हाँ, सचमुच उन्हें पाकर तो मैं बिल्कुल भूल गयी कि अपनी माँ को बचपन में ही खो चुकी थी। उनका कितना बड़ा सहारा है ! मुसीबत का पहाड़ टूट पड़े, हिम्मत हारना तो उन्होंने सीखा ही नहीं। भगवान जाने इतनी शक्ति, इतना ज्ञान, इतना धीरज उन्होंने कहाँ से पाया ?”—विजया ने कहा।

इतने में देव-गृह से स्वर सुनायी दिये—

ओम् यज्ञेन यज्ञ मयजन्त देवा :

दोनों ही उठ कर पूजा-घर की तरफ दौड़ पड़े और माँ की आवाज़ में आवाज़ मिला कर मंत्र-पुष्पांजलि में सम्मिलित हो गये।

शाम को बादल धिर आये थे, इसलिए अँघेरा जल्दी छा गया। माँ ने खाना जल्दी ही तैयार कर लिया और उसने अभय और विजया दोनों के लिए थालियाँ लगायीं। विजया ने आनाकानी की पर माँ ने जोर दिया और बोली—

“आज साथ खा लो बेटी! पता नहीं फिर कब यह मौका आये।”

यह बात सुन कर विजया का दिल भारी हो गया। वह खाने बैठ गयी। विजया के स्वास्थ्य की हालत देखते हुए माँ उसे अब बहुत कम काम करने दिया करती थीं। उनके हाथ-पैर अभी अच्छे चलते थे—पुरानी हड्डी जो ठहरी! रसोई-घर की जिम्मेदारी भी अभी माँ ने अपने ही हाथ में रखी थी। विजया माँ के आग्रह के कारण सकुचा जाती, पर कुछ न कर पाती। इस तरह साथ खाने का प्रसंग यह पहला नहीं था। पर न

जाने क्यों आज उस छोटे से घर के वातावरण में कुछ गंभीरता, कुछ भारीपन छा गया था।

तीनों चुप थे—अधिक बातचीत नहीं हुई। विजया को लगा कि उसके गले में कोई चीज अटक रही है। एकाध रोटी भी मुश्किल से नीचे उतरी होगी। अभय का हाथ भी धीमे ही चल रहा था। माँ यह सब देख रही थी, देख कर समझ रही थी। भोजन के आध घंटे के बाद ही कांग्रेस का स्वयं सेवक आनेवाला था, जिसके साथ अभय को तीन मील दूरी वाले गाँव में सभा के लिए जाना था। और वहीं से वह प्रचार-कार्य के लिए देहात में दौरे पर जाने वाला था। पुलिस उसके पीछे थी। उसके चंगुल से जितने दिन भी बच सके, बचना उसका धर्म था। पता नहीं किस दिन वह गिरफ्तार हो जाय और वहीं से जेलखाने रवाना कर दिया जाय। और फिर इस अनिश्चित वातावरण में, जब देश जीवन और मरण की लड़ाई में लगा हुआ था, जब चारों तरफ तूफान उठा हुआ था, वह छोटा सा व्यक्ति अभय, स्मेर की रुई की तरह कहाँ-से-कहाँ बिखर जाय, यह कौन कह सकता था ? भारत में जो श्मशान की शांति थी, उसे भंग करने के लिए तूफान उठा है। पृथ्वी के गर्भ में छिपे हुए ज्वालामुखी की तरह आज वह फट पड़ा है। उसकी अग्नि-वर्षा में कौन भस्म होगा कौन बचेगा, कौन जियेगा और कौन मरेगा, यह कौन कह सकता है ? पता नहीं यह तूफान कब शांत होगा ? पता नहीं तब तक कितने घर उजड़ चुकेगे ? कितने लोगों को अपने प्राणों की आहुति देनी होगी ? शंकर ने आज रुद्रावतार धारण कर लिया है, भगवान ने सृष्टि और स्थिति के कार्य से

अवकाश लेकर संहार की लीला प्रारम्भ कर दी है। ऐसी हालत में कल क्या होगा, इसका भविष्य कौन बता सकता था। अभय, उसकी माँ तथा विजया—ये सब जानते थे कि वे एक ऐसे मार्ग पर खड़े हैं जो एक लम्बी और अंधेरी सुरंग में से जा रहा है। वह सुरंग कितनी लम्बी थी और अंधेरा कितना गहरा था, यह वे नहीं जानते थे। पर इतना जरूर जानते थे कि वे आज नियति के हाथ में खिलौने हैं, और उन्हें इस लम्बे, गहरे, अंधकार भरे मार्ग से जाना ही है। आज उनके व्यक्तिगत सुख और शांति का सूरज डूब रहा था। फिर वह कब उगेगा, वे नहीं जानते थे। किन्तु इतना आत्मा-विश्वास उन तीनों में था कि व्यक्ति-व्यक्ति और घर-घर के टिमटिमाते हुए दीपक भले ही बुझ जायँ, वे इस हतभाग्य देश की पराधीनता, उसकी कालिमा और कलक को समाप्त करने, उसमें स्वतंत्रता का सूर्योदय निकट लाने को ही अस्तायमान हो रहे हैं। जब रात का अंधेरा मिटता है, और रवि का प्रकाश अपना वैभव लेकर अवतरित होता है तब छोटे-छोटे दीपकों को बुझना ही होता है।

खाना पूरा हुआ न हुआ कि दरवाजे पर लाठी लिये, कम्बल ओढ़े एक स्वयं सेवक हाज़िर हो गया। जाने का वक्त आ गया।

अभय ने भी कंधे पर एक कम्बल डाला, हाथ में कपड़ों की थैली ली और लाठी उठा कर चलने को उद्यत हुआ। माँ को लगा कि उसका राम बनवास को जा रहा है। विजया को लगा कि उसका भी राम बनवास को जा रहा है, पर वह सीता जैसी भाग्यशालिनी कहाँ जो उसके साथ जा सके ?

अभय ठाकुर जी को नमस्कार करके आया और बोला—

“अच्छा माँ, अब चलता हूँ !” ऐसा कह कर वह भुका और उसने अपना सिर माँ के चरणों पर रख दिया। माँ का हृदय मानो फट पड़ना चाहता हो। पर वह ज़हर का घूट पीकर भी शांत बनी रही। उसने विजया से पूजा की थाली लाने को कहा। दीप जला कर अपने हाथ से अभय के मस्तक पर कुमकुम लगाया और उस पर अक्षत फेंकी। उसी तरह उसने उस स्वयं-सेवक को भी बुला कर कहा—

“तुम्हारा क्या नाम है बेटा ?”

“दीनबन्धु !”

“अनाथों के नाथ तुम्हारी रक्षा करें !”—कह कर माँ ने उसे भी तिलक लगाया। उस मंगल दीप के टिमटिमाते हुए प्रकाश में अभय ने देखा कि दीनबन्धु उससे उम्र में कम-से-कम दस वर्ष बड़े होंगे। उनकी छोटी सी डाढ़ी थी। चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गयी थीं। दाँ-एक दाँत भी गिर गये थे, पर चेहरे पर परम शांति और समाधान की सौम्य आभा चमक रही थी, जिससे जान पड़ता था कि उनका हृदय कितना निर्मल है।

दीनबन्धु ने भो भुक् कर माँ के चरण छू कर प्रणाम किया।

“देखो बेटा ! तुम अभय से बड़े हो। तुम उसका साथ देने आये हो, उसे रास्ता बताने आये हो। तुम्हारा साथ हमेशा बना रहे और भगवान तुम्हारी रक्षा करें ! यही मेरी प्रार्थना है।”—माँ ने कहा।

“हाँ माँ ! कांग्रेस कमेटी ने मुझे अभय बाबू के साथ ही रहने की

हिदायत दी है। इस सूबे का चप्पा-चप्पा मैं जानता हूँ। अभय बाबू कालिज में पढ़ते थे, इसलिए वे नये हैं। पर हमारे मन्त्री जी ने कहा है कि अभय बाबू एक हीरा है जो चारों तरफ़ प्रकाश फैलायेगा। उनसे हमारी लड़ाई ज्यादा-से-ज्यादा फ़ायदा उठा सके, इसलिए मुझे उनके साथ कर दिया है। मैं बराबर उनका साथ दूँगा माँ !”—दीनबन्धु ने कहा।

अब तो सचमुच निकलना ही होगा वरना सभा में पहुँचने में देर हो जायगी। तीन मील का अंतर है, कीचड़-कादों का रास्ता है, और फिर अँधेरी रात !

जैसे ही अभय ने जूते की तरफ़ पैर बढ़ाये, विजया ने ज़मीन पर घुटने टेक कर माथा नवा कर उसे नमस्कार किया। अभय का कण्ठ भर आया और आँखें गीली हो गयीं।

“देखो अपने स्वास्थ्य को, सम्हालना। माँ का पूरा खयाल रखना। उनका छत्र होते हुए किस बात की फ़िक्र है ?” और उसने फ़ौरन मुड़ कर कहा—

“चलो दीनबन्धु।”

दीनबन्धु ने दाहिने हाथ में लाठी थामी और बायें हाथ से कम्बल, और आगे बढ़ा।

अभय कुमार उसके पीछे हो लिया। कदम बढ़ाने के पहले सिर्फ़ एक बार ही उसने पीछे मुड़ कर अपनी माँ और पत्नी की ओर देखा, और फिर डग मारता हुआ आगे बढ़ चला।

वे दोनों स्त्रियाँ पत्थर की मूर्ति जैसी खड़ी थीं और अंधकार में विलीन होते हुए उन दो पुरुषों की पृष्ठाकृति की ओर देख रही थीं।

अनन्त गोपाल शेवड़े

और उनकी आँखों से भर-भर आँसू बह रहे थे । जब तक वे दोनों दिखायी देते रहे, तब तक वे एक टक खड़ी देखती रहीं और जब आँखों से ओझल हो गये तब उनके हृदय से एक गहरी निःश्वास निकल गयी, मानो वे अपनी अथाह वेदना को उसके द्वारा बाहर फेंकने का प्रयत्न कर रही हों । उन्हें अपने सामने घनघोर अंधकार को छोड़ कर और कुछ नहीं दिखायी दे रहा था ।



जिस गाँव में कार्यकर्ताओं की सभा थी, वह मुश्किल से ५०-६० घरों का गाँव होगा। वहाँ के एक बड़े से किसान की गौशाला में सभा हुई। ज़मीन पर टाट-पट्टियाँ बिछी थीं। रोशनी के लिए मिट्टी के तेल के तीन दिये एक दूसरे से कुछ अंतर पर रखे थे। वहाँ करीब साठ-सत्तर कार्यकर्ता जमे हुए थे। गौशाला के आस-पास स्वयं-सेवकों का पहरा था। कहीं से किसी मोटर की रोशनी दिखायी दे तो फ़ौरन सभा वालों को इत्तला दी जा सके ताकि वह तितर-बितर हो जायँ और पुलिस के हाथ में कोई न लगे। कदम-कदम पर इस बात का डर था कि यदि इस सभा का सुराग़ खुफ़िया पुलिस को मिला गया होगा तो वह छ़ापा मारे बिना न रहेगी। वह तो सारे शहर को जैसे एक कंधी से साफ़ कर रही थी ताकि क्रांति को भड़काने वाला एक भी आदमी बाहर न बच रहे। उस छोटी

सी फूस की भोंपड़ी में जो लोग इकट्ठे हुए थे, उन्हें पकड़े जाने का डर नहीं था—वह तो अपनी जिम्मेदारी से मुँह मोड़ने जैसा आसान काम था। तारीफ़ इसी में थी कि गिरफ्तार न हों और काम करते रहें। इन ६०-७० कार्यकर्ताओं पर ही यह जिम्मेदारी थी कि वे क्रांति की आग गाँव-गाँव में फैला दें। एक बार यह काम पूरा हुआ कि फिर परवाह नहीं कितने आदमी गिरफ्तार हो जाते हैं। आग भड़क जाने पर नये नेता, नये कार्यकर्ता, नये सिपाही अपने आप तैयार हो जायँगे और वे ही मशाल ले कर आगे बढ़ेंगे। यही कार्यक्रम था। •

सभा में आये हुए लोगों में अधिकांश को अभय जानता नहीं था। कांग्रेस कमेटी के मन्त्री भी वहाँ थे जो अब तक पकड़े नहीं गये थे। उनसे उसकी मुलाकात थी। उनका उस पर पूरा-पूरा भरोसा था। उन्होंने अभय को कार्य-संचालन की पूरी आज्ञा दी थी क्योंकि उनका विश्वास था कि वह गांधी जी के तत्वों के अनुसार ही काम करेगा। उसके हाथ में लड़ाई की बागडोर देने में कोई खतरा नहीं। फिर वह पढ़ा-लिखा, समझदार युवक था। उसकी वाणी में जैसे सरस्वती ही बैठी थी। उसके व्यक्तित्व की तुरन्त छाप पड़ती थी। जनता का नेतृत्व करने के सारे गुण उसमें थे। और चूँकि वह स्वयं बम्बई के विस्फोट के समय वहाँ मौजूद था, वहाँ की ठीक-ठीक भावना, वातावरण और चिन्तनशीलता का प्रतिनिधित्व कर सकता था। मन्त्री महोदय का तो खयाल था कि यह इस सूबे का अहोभाग्य कि उन्हें अभय जैसा योग्य कार्यकर्ता मिला। क्रांति नये, अजाने और अदेखे नेताओं को जन्म देती है।

अभय के पहुँचते ही सभा का काम शुरू हो गया । मन्त्री जी ने इने-गिने शब्दों में कहा—

“साथियो ! हम किस क्रांति से गुज़र रहे हैं, यह आप जानते ही हैं, देश में चारों तरफ़ आग फैली हुई है । गांधी जी ने ‘करेंगे या मरेंगे’ की घोषणा की है । वही हमारा रणक्षेत्र का जयघोष है । हमारे सभी नेता जेल में बन्द किये गये हैं ताकि वे आन्दोलन का संचालन न कर सकें । पर यह आन्दोलन नहीं है, क्रांति है । आन्दोलन नेता संचालित करते हैं, क्रांति जनता के द्वारा चलायी जाती है । बम्बई के विस्फोट के समय हमारे बहादुर साथी अभय कुमार जी मौजूद थे । उन्होंने वहाँ जो बातें देखीं, जो संदेश सुना, उसे ही वे आपके सामने रखेंगे । यह आपका-हमारा सौभाग्य है कि वे अब तक गिरफ़्तार नहीं हुए । मुझे खबर मिली है कि पुलिस उनके पीछे हाथ धो कर पड़ी है । उन्हें पता लग गया है कि ये ही बम्बई से परचे लाये हैं और ये अब सब जगह आग भड़का रहे हैं ! ये कितने दिन या घंटे मुक्त रह सकेंगे, यह कहना कठिन है । पर ये गिरफ़्तार होने के पहले अधिक-से-अधिक काम करना चाहते हैं । मैं आशा करता हूँ कि आप में से प्रत्येक आदमी इस बात की घोषणा करेगा कि वह क्रांति के प्रति वफ़ादार है और इस सभा की कार्रवाई को गुप्त रखेगा ।”

“हम घोषणा करते हैं कि हम क्रांति के प्रति वफ़ादार हैं और इस सभा की कार्रवाई को सर्वथा गुप्त रखेंगे—” सभा ने धीमी आवाज़ में एक स्वर से जय घोष किया ।

“तो ठीक है”—मन्त्री जी ने कहा—“आईए अभय बाबू,

इन्हें अब आप अपनी बात बताइए —”

अभय थोड़ा आगे बढ़ा और बोला—

“साथियो ! हमारा यह परम सौभाग्य है कि हम इस क्रांति के युग में पैदा हुए और स्वतन्त्रता की इस आखिरी लड़ाई में योग देने का हमें अवसर मिला । हमारी आने वाली पीढ़ियाँ हमारे इस भाग्य पर गर्व करेंगी और हम से ईर्ष्या करेंगी ।

आज हम सब एक मजबूत बंधन में जकड़े हुए हैं । हमारे नेताओं ने देश की जनता का आह्वान किया है—करो या मरो ! हमें कुछ कर दिखाना है । यानी अपने देश को स्वतन्त्र करना है । नहीं तो इसी प्रयत्न में अपनी आहुति दे देना है । सन् ५७ में भौंसी की रानी लक्ष्मीबाई ने जो काम शुरू किया था, उसे आज पूरा करना है ।

हमारा देश इतना पुराना है, इतना बड़ा उसका इतिहास है । उसके माथे पर हिमालय का मुकुट है, गंगा-यमुना की धाराएँ उसका गलहार है, हिन्द महासागर उसके चरणों को धोता है । पर आज न्याधिराज हिमालय पर, गंगा यमुना की पवित्र धाराओं पर तथा हिन्द महासागर की लहरों पर हमारा अधिकार नहीं है !

सात-समुन्दर से पार आने वाले लोग, जो न हमारी जाति के, न धर्म या संस्कृति के हैं, हम पर निरंकुश सत्ता जमाये हैं । हम मनुष्य नहीं हैं, जानवरों से भी बदतर हैं । यह स्थिति हमें असह्य है । इसे एकदम बदलना हमारा परम धर्म है, और हम इसे बदल कर ही रहेंगे ।

अंग्रेजी साम्राज्य खूँखार और भयानक विनाशकारी युद्ध

ज्वालामुखी

में उलझा हुआ है। इस युद्ध में हम उसकी पराजय नहीं चाहते, पर हम यह मानते हैं कि उसने हमें स्वतन्त्रता नहीं दी तो उसकी पराजय निश्चित है। हम स्वतन्त्र हो गये तो हम बराबरी के नाते उसकी मदद करने को तैयार हैं—कन्धे-से-कन्धा मिला कर अपनी और उसकी स्वतन्त्रता की रक्षा करेंगे।

पर अंग्रेजी सल्तनत को यह मंजूर नहीं है। हमारी मदद से ही उसका सारा लड़ाई का इन्तजाम हो रहा है, हमारी अनिच्छा से, जुल्म और जोर-जबरदस्ती से। यह सब काम हमें फौरन बन्द करना है। जनता ऐसी भड़क उठे कि लड़ाई के काम में रच-मात्र भी मदद न हो। हर चीज में अड़ंगा और असहयोग हो, पर करना है यह गांधी जी के मार्ग पर चल कर, यानी अहिंसा के रास्ते।

कायरों की तरह मरने से तो हिंसा भली। मरना है तो चींटियों जैसे नहीं मरना है—पुरुषार्थ करके मरना है। बहादुरों की मौत बार-बार नहीं आती। देश के लिए मर मिटने वालों के लिए स्वर्ग के द्वार हमेशा खुले रहते हैं। —

आपको ध्यान रखना होगा कि हिंसावादी क्रांतिकारी इस देश में शस्त्रात्मक क्रांति करना चाहते हैं, और हिंसा के मार्ग के द्वारा स्वतंत्रता की लड़ाई जीतना चाहते हैं। उस मार्ग पर जिनका विश्वास है, वे ऐसा करें। हमारे लिए तो गांधी जी का मार्ग ही श्रेयस्कर है।

गांधी जी का रास्ता कायरों का नहीं, बहादुरों का रास्ता है। असहायों का नहीं, कर्मण्य-पुरुषार्थियों का है।

उसके मुताबिक हमें वह सब करना है जिससे सरकार

बैठ जाय । लड़ाई का काम ठप हो जाय । सरकार का खजाना खाली हो जाय । लड़ाई के लिए रंगरूट न मिलें । यातायात के साधन समाप्त हो जायँ ।”

“तो क्या हम रेलगाड़ी के पुल उड़ा सकते हैं ?” एक युवक ने उत्साह के साथ पूछा ।

“हाँ, बशर्ते कि तुम उसके बाद लाल भण्डो लिये खड़े रहो और आने वाली रेलगाड़ी को सर्वनाश से रोको ।”

“तो फिर इसमें क्या मज़ा है ?”—उसी युवक ने कहा ।

“इसमें मजे की क्या बात है ? रेलगाड़ी में बैठे हुए निरपराध मुसाफिरों को मुसीबत में डालने से क्या फ़ायदा ? पुल उड़े तो फ़ौजी सामान ढोने में तकलीफ़ होगी—बस इतना ही हमारा फ़ायदा है ।”

“क्या हम पुलिस थाने जला सकते हैं ?”—दूसरे कार्यकर्ता ने पूछा ।

“हाँ, पर थानेदारों को नहीं । जनता का जोर हो तो थानेदारों की पोशाकें उतरवा कर उन्हें जलाया जा सकता है, क्योंकि वे विदेशी सत्ता की प्रतीक हैं । पर थानेदारों के व्यक्तित्व को बचाना हमारा कर्तव्य है । उनके सरकारी कागज़ात जलाना, पोशाके जलाना आदि का जनता पर यह असर होगा कि ब्रिटिश शासन की साख़ और प्रतिष्ठा अब इस देश में दो दमड़ी की हो गयी है । जनता के दिलों में यह मनोवैज्ञानिक परिवर्तन ही हमारा ध्येय है ।”—अभय ने कहा ।

“हम स्त्रियाँ क्या काम कर सकती हैं ?”—एक तरुण स्त्री ने खड़े हो कर पूछा ।

अभय को यह पता नहीं था कि उस जमात में स्त्रियों भी हैं। मिट्टी के तेल के धुँधले प्रकाश में वह सभी उपस्थित लोगों के चेहरे नहीं देख पाता था। और फिर यह स्त्री एक ओर अँधेरे में बैठी थी।

“स्त्रियाँ तो बहुत बड़ा काम कर सकती हैं। वे तो साक्षात् जगज्जननी शक्ति की प्रतीक हैं। सारी स्फूर्ति और प्रेरणा की स्रोत हैं। वे क्रांति में कूद पड़ें तो हमारी विजय में क्या शक है ?”—अभय ने कहा।

“हम तैयार हैं—” उस तरुणी ने दृढ़ता से कहा, “हम सिर्फ थोड़ा सा दिशा-दर्शन चाहती हैं।”

“आप हमारे गुप्त प्रचार का कार्य सब से अच्छी तरह कर सकती हैं। कार्यक्रमों के परचों और बुलेटिनो को घर-घर में बाँटना, गुप्त संदेश पहुँचाना, लाठी या गोली से आहत व्यक्तियों की सुश्रूषा का इन्तजाम करना, क्रांति के लिए धन-संग्रह करना आदि अनेक काम हैं, जिनमें आप बहुत बड़ा हाथ बटा सकती हैं।”

“समझ गयी। हम स्त्रियों का दल तैयार करेंगी—”

इतने में दूर अंधकार को चीरती हुई मोटर की तेज रोशनी दिखायी दी। बाहर पहरेदार स्वयं-सेवक ने चेतावनी दी कि संभवतः पुलिस आ रही है। खचाखच कीचड़ तथा एकदम कच्चे रास्ते के कारण उसका यहाँ आना मुश्किल है फिर भी पुलिस पैदल आ सकती है। कांग्रेस मन्त्री महोदय ने इशारा किया कि सभा फौरन बरखास्त की जाय और सब लोग चारों दिशाओं में तितर-बितर हो जायँ।

“अच्छा साथियो—अलविदा । अब हम या तो स्वतंत्र भारत में मिलेंगे या स्वर्ग में । आओ, एक बार सब मिल कर कहे—

“करेंगे या मरेंगे ।”

सब ने उठ कर गंभीर स्वर में दृढ़ता से दुहराया—

“करेंगे या मरेंगे ।”

मन्त्री महोदय ने कहा—

“दीनबन्धु, जाओ अभय बाबू को तथा इन दो बहनों को लेकर उस अमराई के पीछे के रास्ते से खाप्री स्टेशन को निकल जाओ—फ़ौरन । वहाँ से इन बहनों को गाड़ी पर चढ़ा कर नागपुर वापस भेज देना और तुम दोनों वर्धा और पुलगाँव की तरफ़ निकल जाना । जाओ जल्दी । पुलिस की नज़र अभय बाबू पर ही है, और उन्हें ही बचाना हमारा सब से मुख्य काम है ।”

“बहुत अच्छा !”—कह कर दीनबन्धु लाठी उठायी और कहा—“क्षतिप अभय बाबू, और आप भी बहन जी—”

पाँच मिनट के भीतर ही वे चारों लम्बे-लम्बे डग भरते हुए उस गाँव से निकल कर मोटर के प्रकाश की विपरीत दिशा की ओर अंधकार में विलीन हो गये । दीनबन्धु सबसे आगे थे, पीछे वे दो स्त्रियाँ, और सबसे पीछे अभय । सबके हाथ में एक-एक लाठी थी । चारों तरफ़ घनघोर अंधकार था । नीचे कीचड़ तथा उसमें भरे काँटे । पर पैरों में क्या गड़ रहा है, इसकी तरफ़ किसी का ध्यान नहीं था । वे तो आगे बढ़ रहे थे । बढ़ते जा-रहे थे, मन में उल्लास था, अपूर्व उमंगे थीं ।

ज्वालामुखी

कहाँ जा रहे हैं, मंजिल पर कब पहुँचेंगे, इसका कोई पता नहीं। बस चलना ही उनका एक काम था, चलना और चलते जाना। अनिश्चित और व्यवस्थित वर्तमान में से वे एक अज्ञात और निश्चित भविष्य की ओर जा रहे थे। पर उनमें से किसी के भी मन में कोई डर नहीं था, आशंका नहीं थी। जिस दृढ़ता के साथ वे कदम बढ़ाते चले जा रहे थे, उससे ऐसा जान पड़ता था कि उन्हें पूर्ण आत्म-विश्वास था कि इतिहास उनके कार्यों को निश्चय ही सुरक्षित रखेगा। उन्हें अपना, अपने सुख-दुख का कोई खयाल नहीं था। जो खयाल था, वह था सिर्फ़ यही कि हमारा देश इस क्रांति में सफल होकर कैसे ऊपर उठे। हमारा देश। हमारा प्यारा भारत देश !



विजया को उस रात नौद कहाँ ? अभय सुबह गाड़ी से बम्बई से आया और अँधेरा होते-होते कम्बल उठा कर चूल दिया । कितनी लगन, कितना तेज, कितनी हिम्मत है उसकी ! अपने ध्येय के पीछे वह कितना पागल है ! सेवा में न आगा देखता है न पीछा । उससे उसका क्या बनेगा—बिगड़ेगा इसका, और ऐसा कि जिसका हिसाब नहीं । वह तो एक ज्योति की तरह है । अपने आप को जला कर भी चारों तरफ प्रकाश फैला सके, यही उसकी सतत कोशिश रहती है । यही उसका स्वभाव—अपने ध्येय के लिए सर्वस्व समर्पित कर देने की शक्ति—उसके मन को मुग्ध किये हुए है । वह जानती थी कि इस पुरुष के साथ वह आराम और सुख नहीं है जो अक्सर उसके साथ पढ़ने वाली कालेज की छात्राओं का ध्येय था—पति की अच्छी-खासी नौकरी, बंगला, मोटर, नौकर-चाकर, क्लब-सिनेमा

ज्वालामुखी

आदि । उसके चाचा के यहाँ भी तो इसी प्रकार का वातावरण था, जिससे वह ऊब उठती थी । यह जीना भी कोई जीना है ? दुनिया में कब आये, कब चले गये, क्या किया, क्या कमाया, क्या छोड़ गये, इसका कोई जवाब नहीं । जंगल में कितने प्राणी ऐसे ही चुपचाप मर जाते हैं, किसे पता चलता है ? उनसे तो मनुष्य का जीवन अलग होना चाहिए । समय के परदे पर कोई छाप ही न पड़े, जीवन में कुछ कर के न दिखाया, और मरण में किसी को न रुलाया तो क्या किया ? इस प्रकार के विचारों को लेकर ही विजया ने अभय के चरणों पर अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया । और यह करने के बाद एक क्षण के लिए भी उसे पछतावा नहीं हुआ । कभी दाल है तो सब्जी नहीं, दूध फट जाय तो चाय की प्याली नहीं, पलंग की निवार टूटी तो उसे सुधरवाने की गुंजाइश नहीं, इसलिए ज़मीन पर ही सोना पड़े, मैके से जो साड़ियाँ लायी उसके बाद एक गज कपड़ा भी खरीदने की सामर्थ्य नहीं । काँच की चूड़ियों को छोड़ कर और कोई आभूषण नहीं । पर एक क्षण के लिए भी विजया को नहीं लगा कि उसके छोटे से घर में परम आनन्द नहीं । अभय को पाकर तो वह जैसे धन्य हो उठी । कौन सा जन्म-जन्मान्तर का संचित पुण्य था जो इस पुरुष-रत्न से प्रीति हुई । प्रीति क्या हुई, भक्ति हो गयी । पति क्या पा लिया, भगवान् ही मिल गये । ऐसी हालत में दुनिया की कौन सी नारी है जो उसके मांगल्य से, उसके सुख-सौभाग्य से ईर्ष्या न करे ?

और अभय ? वह भी विजया को पाकर जैसे पूर्ण हो उठा । क्या वह उसकी प्रीति की देवी नहीं हैं ? स्फूर्ति का स्रोत नहीं

है ? उसका प्रेम उसे उन्मत्त नहीं बनाता, विलास की ओर नहीं आकर्षित करता, पुरुषार्थ से दूर नहीं खींचता । वह उसे अपूर्व त्याग, संयम और पौरुष की दीक्षा देता है । उसका सतत यही स्वप्न है कि कैसे वह कर्तृत्व के आसमान में उड़े और वहाँ से चाँद-सितारे तोड़ लाये । विजया उसका पुरुषार्थ देख कर धन्य हो उठेगी । उसी के निस्सीम आनन्द में उसका अपना आनन्द भी समाया हुआ है । फिर परवाह नहीं कि इस गगनचुम्बी प्रयत्न में आसमान से लौटना ही न हो । कायरता असफलता में नहीं है, प्रयत्न के दारिद्र्य में है ।

आश्चर्य नहीं जो अभय उसके—विजया के रोम-रोम में समा गया हो । उसके रक्त की एक-एक बूँद, हृदय का एक-एक स्पंदन, प्राणों का एक-एक निःश्वास, अभय के चेतन-अचेतन व्यक्तित्व से ओत-प्रोत है । अभय उससे दूर ही कब और कैसे जा सकता है ? दिव्य प्रीति के चिर-मिलन का यही स्वरूप नहीं तो और क्या होता है ?

फिर भी आज शाम को जब अभय, दीनबन्धु के साथ घर से रवाना हुआ तो विजया के दिल में एक गहरी कसक उठे बिना नहीं रही कि सावनी अमावस्या का यह घनघोर अंधकार कहीं उसे ग्रस तो नहीं लेगा ? धरती मॉफ्ट पड़ी है; ज्वालामुखी धधक रहा है, उसके विकराल जबड़ों में कौन-कौन समायेगा, यह किसी को भी नहीं मालूम है । आशंका से, किसी अज्ञात और अगम्य भय से उसका हृदय काँप उठा । वह बिस्तर पर पड़े-पड़े ही नमस्कार करके बोली—‘माँ भगवती, तुम्हीं मेरे सौभाग्य की रक्षा करो !’

उसकी आँख लगी ही थी कि बाहर के दरवाजे पर ठपठपाने की आवाज आयी। इस मध्य रात्रि के बीते प्रहर में, जब घर में सिर्फ वे दोनों ही स्त्रियों हैं, कौन ठपठपा रहा है ? उसे लगा कि शायद वह सपना देख रही है। और वह फिर निचेष्ट पड़ी रही। इतने में फिर ठपठपाहट हुई और इस बार अधिक जोर से। तब वह बोली—

“कौन है ?”

“बाहर से भारी-सी आवाज आयी—“पुलिस !”

“ठहरो खोलती हूँ।”—विजया ने धीरज के साथ कहा। उठ कर बत्ती जलायी, अपनी साड़ी सँवारी, बाल ठीक-ठाक किये और पास के कमरे में माँ को जगाने गयी। माँ तो पहले से ही जागी बैठी थी।

“चाण्डाल आ गये ?”—माँ ने पूछा।

पता नहीं बाहर किसी ने यह सुन लिया या नहीं। किसी ने दरवाजा एकदम जोर से भड़भड़ा कर गरज कर कहा—

“दरवाजा खोलो। फौरन खोलो नहीं तो हम बन्दूक दाग देंगे।”

विजया ने जाकर दरवाजा खोला तो देखा सामने एक ऊँचा-पूरा पुलिस का अफसर वदीं पहने हुए खड़ा है। एक हाथ में पिस्तौल और दूसरे में टार्च। उसके पीछे तीन-चार दारोगा भी डटे हैं। और उनके पीछे लगभग तीस-चालीस पुलिस के जवान हाथ में लाठी लिये मकान के चारों तरफ घेरा डाले खड़े हैं। दूर सड़क पर बिजली की रोशनी में देखा तो पुलिस की दो बड़ी काली लारियाँ दिखायी दीं।

विजया को देखते ही उस आफसर ने सख्ती से पूछा—

“अभय कुमार कहाँ है ?”

“वे तो यहाँ नहीं हैं ।”

“कहाँ चला गया ?”

“पता नहीं, कहाँ गये ?”

“आज सुबह तो वह बम्बई से लौटा था न ? और आज ही कैसे चला गया ? देखो, मैं ताकीद करता हूँ कि सच-सच बता दो वरना बहुत बड़ी फजीहत में पड़ जाओगी ।”—डिप्टी साहब ने कहा ।

“क्या फजीहत होगी ? मैं तो सच ही बता रही हूँ ।”

“तो बताओ वह कहाँ गया ?”

“मुझे मालूम ही नहीं तो क्या बताऊँ ? कहाँ जा रहा हूँ, यह नहीं बता गये तो मैं क्या करूँ ?”

“अरे, देखते क्या हो ?—” उन्होंने पुलिस के जवानों की तरफ़ सुखातिब होकर कहा । “डालो मकान पर घेरा और कस कर तलाशी लो । कहीं छिपा कर रखेगी उसे ? कोई मनो-बैग थोड़े ही है !—”

मकान के चारों तरफ़ जूतों की टापे बजने लगी । माँ को कुछ घबड़ाहट मालूम हुई । लोटा उठाया और पाखाने की तरफ़ कदम उठाया—

“कहाँ जा रही है बुड्डी ?” एक जमादार कड़े स्वर में बोला । “इस समय पाखाना-वा खाना सब बन्द । खड़ी रह वही ।”

माँ के हाथ से लोटा छूट गया और वे वहीं-की-वहीं धम्म

से बैठ गयी ।

तलाशी शुरू हुई । डिप्टी साहब ने विजया से कहा कि पहले वह तलाशी करने वालों की तलाशी ले ले ।

“मुझे ही लेना तलाशी । तुम्हारी नीयत तुम्हारे साथ—” कह कर वह बत्ती उठा कर उस छोटे से मकान का एक-एक कमरा, एक-एक आलमारी, एक-एक सन्दूक दिखाने लगी । द। घंटे तक जम कर तलाशी हुई । कागज का एक एक रक्का देखा गया, कहीं उसमें बम्बई के पर्चे तो नहीं हैं ? अभय कुमार की किनाबें उलट-पुलट कर देखी । उसका एक बड़ा फोटो (पोर्ट्रेट) जब्त कर लिया । कुछ कागजात उठा ले गये । अभय और विजया के पत्रों का पुलिन्दा भी उठाना ही चाहते थे कि विजया ने कड़ी आपत्ति की । दूसरे अधिकारी ने सलाह दी कि यह छोड़ दो । पर उसके पहले एक-एक लिफाफे का पता पढ़ा गया कि हस्ताक्षर उन दोनों को छोड़ कर और किसी का तो नहीं है । तब जा कर उसका पिंड छोड़ा ।

दो घंटे के भीतर ही उस घर की हालत ऐसी हो गयी जैसे जानवरों ने उसे अपने खुरों से खूँद डाला हो । जब पुलिस को अभय कुमार हाथ न लगा और न बम्बई के पर्चे, तो डिप्टी साहब अपने दलबल सहित जाने को निकले । चलते-चलते विजया से बोले—

“देखो जी, अभय कुमार यदि घर पर आय तो और न पुलिस को रतला देना । उस पर संगीन जुर्म है और उसकी गिरफ्तारी का वारन्ट हमारे पास है । गुनहगार आदमियों को पकड़वाने में सरकार की मदद करना तुम्हारा फर्ज है । वरना

अनन्त गोपाल शेवडे

तुम्हारी भी गिरफ्तारी हो सकती है ।”

“आगे की बात क्यों करते हो ! गिरफ्तार करना है तो लो, चलो, मैं अभी तैयार बैठी हूँ ।”

“नहीं, अभी तो छोड़ देते हैं । पर अबकी बार कोई शक हुआ तो गिरफ्तारी से न बचोगी—याद रखना ।” ऐसा कह कर डिण्टी साहब बोले—“चलो, चलें यहाँ से । आज यहाँ कुछ भी नहीं है ।”

“और अब यह घर कौन ठीक करेगा ?” विजया ने पूछा ।

“तो क्या यह हमारा काम है ?”—पुलिस-अधिकारी ने कहा ।

“तो और किसका है ? आप ही ने तो यहाँ घमा-चौकड़ी मचायी । अब आप ही इसे ठीक नहीं करेंगे तो कौन करेगा ?”

“ज़रा जवान सम्हाल कर बोल, लड़की । जानती नहीं किससे पाला पड़ा है ?”—डिण्टी साहब ने आँखें तरेर कर कहा ।

“क्या कम्-लेंगे आप ? यही न कि गोली दाग देंगे या संगीन पेट में भोंक देंगे ? औरतों पर हाथ उठाने का पुरुषार्थ नहीं करोगे तो गैरों का नमक कैसे हजम करोगे ?”

“बड़ी बकबक करती है, पकड़ो इसे ।”—डिण्टी साहब ने हुक्म दिया । तीन-चार जवान लाठी लेकर आगे बढ़े ।

इतने में दूसरे अप्सर ने कहा, “ठहरो ज़रा,” और वह डिण्टी साहब के कान से भुँह लगा कर काना-फूसी करने लगा । डिण्टी साहब की नज़र विजया के उभरे हुए पेट की ओर गयी और उन्होंने उसे गिरफ्तार करने का विचार छोड़ दिया । बोले—

ज्वालामुखी

“जाने दो, हमें तो अभय से काम है। इस लड़की की किटकिट में क्या धरा है ? चलो जल्दी।”

यह कह कर वे सब से आगे रवाना हुए और पुलिस का घेरा उठा। पाँच मिनट में ही सब-के-सब लारियों में जा बैठे, जो भर करती हुई रवाना हो गयीं। विजया ने घड़ी में देखा तो उस समय तीन बजने को थे।

अभय कुमार, दीनबन्धु और वे दोनों स्त्रियाँ करीब-करीब दो-ढाई बजे खाप्री स्टेशन के पास पहुँचे। जब उन्हें दूर से स्टेशन की लाल बत्ती दिखायी दी तो वे बड़े प्रसन्न हुए। ऐसा लगा जैसे निस्तब्ध अँधेरी रात में उन्हें उजाला ही मिल गया। गाड़ी आने में तीन घंटे की देर थी। दीनबन्धु ने कहा, “चलो थोड़ा आराम कर लें।” वे दोनों लड़कियाँ भी थक कर चूर हो गयी थीं। अभय भी थका-माँदा था। स्टेशन के अहाते में वे सब-के-सब लौट गये। दीनबन्धु तो थोड़ी ही देर में खराँटे लेने लगे। शान्ता की सहेली भी जल्दो ही सो गयी, पर शान्ता और अभय को नींद नहीं आयी। शान्ता जानती थी कि तीन घंटे के भीतर ही उसका तथा अभय का साथ छूट जायगा और फिर पता नहीं कब भेंट हो। वह नागपुर के वीमेन्स कॉलेज में ही बी० ए० में पढ़ती थी। उसके पिता

सन् १९२३ के भूखड़ा सत्याग्रह में जेल में भूख हड़ताल करते-करते मरे थे, तब वह मुश्किल से एकाध बरस की दुधमुँही बच्ची होगी। पिता का ऋण चुकाने के लिए ही वह आज की क्रांति-ज्वाला में अपनी आहुति देने को तत्पर थी। उसने अभय का नाम सुना था, दो-एक बार डिबेट में उसके भाषण भी सुने थे। बम्बई में विद्रोह की घोषणा तथा गांधी जी की गिरफ्तारी के बाद वह अपने आपको नहीं रोक सकी और आन्दोलन में कूद पड़ी। कांग्रेस कमेटी के सेक्रेटरी ने उसे अभय से मिलने को कहा और उस गुप्त सभा की जगह बतायी। वह बेचारी अपनी एक कॉलेज की सहेली को लेकर कीचड़ खूँदती हुई वहाँ आयी और वहीं से ही अभय के साथ थी। अभय के लिए उनके मन में अतीव आदर था। किसी-किसी का व्यक्तित्व ही इतना उज्ज्वल, इतना निर्मल होता है कि उसे देखते ही अपने आप श्रद्धा से मस्तक झुक जाता है। उसे लगा कि अभय यदि उसे आग में कूद पड़ने का हुक्म दे तो उस पर अमल करने में वह एक निमिष के लिए भी नहीं हिचकेगी।

गाड़ी आने की घंटी बजी। शान्ता ने पूछा—

“मेरे लिए कोई खास काम ?”

“क्रांति का कार्यक्रम तो मैं बता ही चुका हूँ—”

“सो तो जानती हूँ, पर इसके अलावा ?”

“इसके अलावा ?”—अभय ने कुछ सोच कर कहा,
“एकाध बार मेरे घर का चक्कर लगा आना। कष्ट न हो तो ज़रा विजया का ध्यान रखना। उसकी प्रसूति के वक्त जाने मैं

कहाँ रहूँ !”

“आप बिलकुल चिन्ता न करें। मेरे पास कुछ छात्राओं का दल है जो मेरे कहे पर सब कुछ करने को तैयार है। विजया बहन को अपने वश भर कोई तकलीफ नहीं होने दूँगी।” शान्ता ने कहा।

“बस अब आप ही लोगो का सहारा है, बहन”—अभय कुछ भावावेग में आकर बोला। विदाई के समय की विजया की करुण मूर्ति की याद से उसका हृदय भर आया।

गाड़ी आकर चली गयी। वे दोनों स्त्रियाँ नागपुर लौट गयीं। गाड़ी छूटने के बाद बड़ी देर तक अभय उसके पीछे की बत्ती की तरफ देखता रहा जो प्रतिक्षण उससे दूर होती जा रही थी, पर उसकी दिशा इससे ठीक उलटी थी। उसे जाना था घर से दूर, और दूर, उस अज्ञात और अज्ञेय दिशा में, जहाँ पराधीनता के अधेरे का अन्त हो, और मंगल प्रकाश की किरणें दिखायी दें। परवाह नहीं यदि राह में ही ठोकर लग कर गिर जाना पड़े, मर जाना पड़े। पर उस दिशा की ओर कूच करना यही एक कर्तव्य-कर्म है, यही धर्म है। उसने फिर लाठी सम्हाली और बोला—

“चलो दीनबन्धु, आगे बढ़े।”

यह दीनबन्धु भी बड़ा बिचित्र आदमी है। ऐसा कोई आन्दोलन नहीं जिसमें ये महाशय साल-छः महीने की जेल न काट आये हों। सोलह साल की कच्ची उम्र में ही गांधी जी का सन् इक्कीस के असहयोग आन्दोलन का बिगुल सुना। जनाब माँ-बाप को बुत्ता देकर दफ्ता १४४ भंग करके जेलखाने पहुँचे। तीन महीने लगातार चक्की पीस कर बाहर निकले तो बिलकुल जर्जर ! उन दिनों जेल तो सचमुच यमपुरी थी। चार-छः महीने बीमार रह कर चंगे हुए तो फिर सन् २३ का नागपुर का भयङ्क-सत्याग्रह छिड़ गया। सो उसमें भी सरदार वल्लभ भाई पटेल की सेना में भरती हो गये। सन् तीस में आन्दोलन शुरू हुआ तो बुलेटिन बाँटते-बाँटते गिरफ्तार कर लिये गये। सन् बत्तीस में फिर नौ महीने की जेल भुगत ली। सन् ४० में व्यक्तिगत-सत्याग्रह छिड़ा तो विनोबा भावे के पीछे आप भी

अनन्त गोपाल शेवड़े

हाज़िर । यानी कि कभी भी देश की पुकार हुई हो और दीनबन्धु उसमें पीछे रहे हों, यह असम्भव है । इस बीच में घर-गिरस्ती में मन लगे और इनका यह देश-भक्ति का पागलपन खत्म हो जाय, इसलिए माता-पिता ने ज़बरदस्ती उनकी शादी कर दी । पर लो का मोह उनके जीवन में कोई परिवर्तन नहीं ला सका । कहने को उनका एक छोटा-मोटा धन्धा भी था—घड़ीसाज़ का । पर कहीं जुलूस निकला कि दुकान बन्द करके उसमें शामिल ! किसी नेता की गिरफ्तारी हुई नहीं कि सबसे पहले हड़ताल उन्हीं की दुकान से शुरू होती थी । अपना काम तो अच्छा जानते थे और काफ़ी कीमती घड़ियाँ उनके यहाँ ठीक होने के लिए आतीं—खासे बड़े-बड़े लोगों की । पर देश सेवा के काम के कारण वे हफ्तों पड़ी रहतीं । यदि एक बार उनकी दुकान से घड़ी सुधर कर गयी तो क्या मजाल कि दुबारा सुधरने के लिए आये । बात यह थी कि जब सन् २४ से २६ तक राजनैतिक मायूसी का ज़माना था, उनके पिता ने उन्हें घड़ीसाज़ का काम सीखने को बम्बई भेज दिया था । वहाँ दीनबन्धु एक स्विस् कम्पनी में उम्मीदवारी करके काम सीख गये । बुद्धि से कुशाग्र तो थे ही, और लगन के भी पक्के । ग़नीमत यही थी कि उन दिनों कोई आन्दोलन नहीं छिड़ा वरना कहाँ की कम्पनी और कहाँ की घड़ीसाज़ी । जब सीख कर आये तो दो साल के भीतर ही उन्होंने मारकेट में अच्छी-खासी धाक जमा ली । उसी बीच उनकी शादी हो गयी, और उन्हीं दो-तीन वर्षों के भीतर ही उनके माता-पिता भी चल बसे । माँ पहले गयी और पिता बाद में । पर जाते समय उन्हें संतोष था कि बेटा रास्ते से लग गया

है, कमाता-खाता है, शादी भी हो गयी है, वंश चलेगा ।

पर भाग्य का खेल कि दीनबन्धु का वंश चला 'नहीं' । दो-तीन बच्चे हुए, पर वे या तो होते ही मर गये या पैदा होने के तीन महीने के भीतर ही । दीनबन्धु की पत्नी लक्ष्मी हर बार रोती-पीटती । दीनबन्धु उसे धीरज बँधाते—

“रोने-धोने से क्या होगा लक्ष्मी ! भगवान के यहाँ से वे आये और उन्हीं के यहाँ चले गये । हमारे भाग्य में न लिखा हो तो कहाँ से मिले ? रामजी की मरजी ।”

पर इन वाक्यों से लक्ष्मी को ढाढ़स बँधने की बजाय असह्य पीड़ा होती । बेचारी दिन भर घर का काम-काज करती । डुट-पुँजिया आमदनी में गिरस्ती चलाती । यहाँ दीनबन्धु का दिन-भर घर में पता नहीं । शाम हुई नहीं कि — दुकान बन्द कर सीधे कांग्रेस के दफ्तर में चले जाते । वहाँ एक स्वयं-सेवक की तरह जो काम सिर पर पड़ता, उसे श्रद्धापूर्वक करते । दफ्तर को भाड़ू लगाने में भी, मौका पड़ जाय तो, उन्हें कोई संकोच नहीं हुआ । स्वयं-सेवक दल के मुखिया जी का उन पर बहुत भरोसा था । दीनबन्धु को कोई काम बताया गया, तो वह पूरा हो कर ही रहता । उन्होंने किसी कार्य के लिए 'हों' की तो वह पत्थर की लकीर ही समझिए । निश्चय के इतने दृढ़ कि एक बार डट गये तो डट गये । सन् तीस में गढ़वाल-दिवस के जुलूस में वे सबसे आगे थे । पुलिस और फ़ौज ने जुलूस रोक लिया । सारा जुलूस-का-जुलूस वहीं नीचे ज़मीन पर धरना दे कर बैठ गया । पुलिस ने तितर-बितर होने का हुक्म दिया । संगीनें सीधी कीं, घोड़ों को ऊपर दौड़ा देने

का डर दिखलाया, बन्दूक की नलियाँ साफ़ करने लगे, पर दीनबन्धु ऐसे बेलाग बैठे कि जैसे इन सबसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं। उनके हाथ में तकली थी सो वह चलती ही रही। उनकी निर्विकारता और निडरता संक्रामक साबित हुई। तमाम जुलूस उन्हीं से प्रेरणा लिये पत्थर की तरह दृढ़ बैठा रहा। आखिर पुलिस ही ठंडी पड़ गयी। बारह बजे रात को फ़ौज वहाँ से हटा ली गयी और जुलूस आगे बढ़ा।

पर इतना सब होने पर भी दीनबन्धु को अहंकार छू तक नहीं गया। नम्रता और शालीनता इतनी कि गजब! मुझे अमुक कमेटी में रखो या मेरा नाम अखबार में छपाओ या मुझे कभी सभा के मंच पर बैठाओ या मुझे कभी फूलमाला पहनाओ—ऐसी बात जाने-अनजाने भी उनके मुँह से तो क्या, हाव-भाव से भी नहीं निकलती थी। उनकी कोई तारीफ़ करने लगे तो छुई-मुई से सकुचा जाते और फ़ौरन बात पलट देते। जो काम करते उसके लिए एक पाई का खर्च भी नहीं लेते। जो खर्च होता, अपनी जेब से करते। जब काम में भिड़ते तो भूख-प्यास, घर-बार किसी की भी सुध नहीं रहती। बेचारी लक्ष्मी उनको राह में आँखे बिछाये बैठी रहती। कभी-कभी वे रात के एक-डेढ़ बजे तक लौटते। पर लक्ष्मी भी एक अजीब स्त्री है जो तब तक उनके लिए भूखी बैठी रहती। वे खा लेते तभी वह खाती। दीनबन्धु ने हजार बार कहा कि मेरे लिए थाली ढाँक कर तुम खा लिया करो और सो जाया करो, पर लक्ष्मी क्यों मानने चली? कहती, “तुम दिन भर दर-दर भूखे-प्यासे घूमते रहो और मैं घर बैठे ही खा-पी लिया करूँ?”

यह कैसे हो सकता है ?”

दीनबन्धु रोज़ कहने से नहीं चूकते और लक्ष्मी कभी करने से नहीं चूकती। पर रात को जब एक-डेढ़ बजे वे दोनों, मिट्टी के तेल के टिमटिमाते प्रकाश में, सूखी रोटी साथ बैठ कर खाते, तो ऐसा लगता कि उनके छोटे से मकान में स्वर्ग ही उतर आया है। लक्ष्मी की अपने पति पर जो अगाध श्रद्धा है उससे दीनबन्धु की रंचमात्र भी कम नहीं है। दीनबन्धु यदि उस अनपढ़ नारी के लिए देवता थे, तो वह नारी भी दीनबन्धु के लिए साक्षात् लक्ष्मी का अवतार थी। वह जानती थी कि देश सेवा की धुन में दीनबन्धु पागल हैं और उसमें वे अपने टके-रुपयों को भी नहीं देखते। घर में दारिद्र्य हो या तंगदस्ती, उनकी देश सेवा के काम में कोई बाधा नहीं पड़ती। अड़ोस-पड़ोस की स्त्रियाँ लक्ष्मी से कहतीं कि तुम उन्हें रोकती क्यों नहीं ? काम-धन्धा करें तो घर-गिरस्ती अच्छी चले और तुम भी कुछ कपड़े-जेवर पहनो। जब देखो तब जुलूस में, जब देखो तब जेल में। और इधर तुम मिला-रिन्-सी की दशा करके बैठी हो।

“उन्हें क्यों रोकूँ बहन ? पति के जीवन में अपने आप को खो देना, खपा देना, यही तो हमारा धर्म है न ? उन्हें जिस बात में सुख मिलता है उसमें मैं क्यों बाधा बनूँ ? और वे क्या बुरा करते हैं ? देश का काम ही तो करते हैं न ? यह छोड़ कर उन्हें और क्या नशा है ? न शराब पियें, न जुआ खेलें। बीड़ी को तो हाथ लगाते नहीं, और तमाखू को छूते नहीं। मजदूरों के घरों में दिन-रात शराब-खोरी और मारपीट होती रहती है।

कोई रात नहीं जाती कि किसी औरत का रोना न सुनायी दे । पर घर में उनके आते ही मेरे लिए तो जैसे उल्लास और हर्ष का वातावरण छा जाता है । मेरा ऐसा सौभाग्य और मैं स्वयं उन्हें रोक कर अपने ही पैरो पर कुल्हाड़ी मारूँ ! ना बहन, यह मुझसे नहीं होगा ।”

पड़ोस की औरतें अपना मन मार कर, जल-भुन कर जैसी आती वैसी चली जातीं और लक्ष्मी की पति-भक्ति वैसी-की-वैसी अक्षुण्ण बनी रहती ।

पर एक दिन लक्ष्मी को भयंकर कष्ट हुआ । उसकी तीसरी संतान— एक लड़का—हुई थी जिसको पाने के सुख में उसके लिए स्वर्ग भी हेय हो गया था । इसके पहले सब लड़कियाँ ही हुई थी और जल्दी ही चली गयी थीं । यह बच्चा चार महीने का हो गया । उसके लाड-प्यार में लक्ष्मी अपने आपको खो बैठी । दीनबन्धु उसके इस अनिर्वचनीय आनन्द को देख कर मन-ही-मन कहता—‘हे भगवान ! कम-से-कम इस बच्चे को तो बचा रखना । इसी को देख कर ही तो लक्ष्मी अपने जीवन की तन-हाई की घड़ियाँ आनन्द में काटेगी । दीनबन्धु को दिखायी दे रहा था कि दूसरा महायुद्ध जोर पकड़ रहा है और गांधी बाबा रण भेरी बजाये बगैर नहीं रहेंगे । अब की बार तो यह भी असम्भव लगता है कि साल-छः महीने के भीतर ही रिहाई हो सकेगी । हो सकता है कि लड़ाई खत्म होने तक ही जेल में सड़ना पड़े । तब बेचारी लक्ष्मी का क्या होगा ? यह बच्चा उसके पास रहेगा तो वह अपने सारे दुख भूल जायगी । इसलिए हे प्रभू ! तूने इसे दिया है तो अब इसे सुरक्षित रख !

पर प्रभू के मन में कुछ और ही था । उस दिन सुबह दीनबन्धु कलेवा करके दूकान पर गये तो उसके बाद ही बच्चे को हरारत हो गयी । लक्ष्मी का जी धक से हो गया । उसने पड़ोस के वैद्यराज को बुलवा कर दिखाया । उन्होंने हाथ में दो-एक पुड़ियों थमा कर राह पकड़ी । दो-तीन घंटे के बाद दीनबन्धु की दुकान पर आदमी भेजा तो खबर आयी की दूकान बन्द है और दीनबन्धु नदारद !

सन् ४२ की १३ अप्रैल थी। जलियाँवाला दिवस मनाने की नैयारी जोर-शोर से चल रही थी । जनता का जोश तो बढ़ता ही जा रहा था । स्वराज्य की लड़ाई फिर छिड़ेगी, ऐसे आसार दिखायी पड़ रहे थे । लोगों में बड़ा उत्साह था, उमंगें थीं । जुलूस में लोग हजारों की तादाद में शामिल होते । सभाओं में तो ठसाठस भीड़ रहती । भाषण भी ऐसे गरमा-गरम होते कि जनता और भड़क जाती । वातावरण संघर्ष की भावना से पूर्ण था । ऐसे वातावरण में दीनबन्धु के उत्साह का क्या पृच्छना ? दिन भर सारे शहर में घूम कर जुलूस का ऐलान किया, शाम को इस कदर शानदार जुलूस निकला कि देखते ही बनता था । खुद कांग्रेस के नेता ही जनता का उत्साह देख कर दंग रह गये । जुलूस इतना लम्बा था कि शाम के साढ़े सात बजे समाप्त होने की बजाय साढ़े नौ बजे समाप्त हुआ । उसके बाद आम सभा शुरू हुई । जोशीले भाषण हुए । बुलन्द नारे लगे । राष्ट्रीय गाने हुए और रात को एक बजे जाकर कहीं सभा समाप्त हुई । दीनबन्धु जब डेढ़ बजे के करीब घर पहुँचे तो देखा कि उनकी पत्नी लक्ष्मी सिर पीट-पीट कर अत्यन्त करुणा

अनन्त गोपाल शेवडे

से रो रही है और उसका क्रन्दन रात्रि की नीरवता को चीर रहा है । उसके साथ पड़ोस की दो-तीन स्त्रियाँ बैठी थीं और पास ही ज़मीन पर एक मैला कपड़ा ओढ़े उसका बच्चा निस्तब्ध, निश्चल पड़ा हुआ था । दीनबन्धु यह दृश्य देखते ही सिर पर हाथ रख कर धम्म से नीचे बैठ गये ।



घंटे भर के भीतर ही दीनबन्धु बच्चे का क्रिया-कर्म करके लौटे तो देखा कि उनकी पत्नी ज़मीन पर पड़ी है और उसकी आँख लग गयी है। आँखों के आँसू अब भी सूखे नहीं थे। दीनबन्धु का हृदय भर आया। मन-ही-मन बोले—पिछले जन्म का जाने कौन-सा पुण्य कमाया था जो इस जन्म में ऐसी संगिनी मिली। नाम के मुताबिक सचमुच लक्ष्मी है। मेरे घर में उसे क्या सुख मिलता है ? न अच्छा खान-पान, न रुपये-गहने और न सुख-सन्तोष। जब देखो तब सुबह का छोड़ शाम को मिलाने की खटपट ही चलती रहती है। उसे बच्चों का अत्यन्त प्यार है, पर भगवान की इच्छा कि उसकी कोख भरी नहीं कि सूनी हुई। मैं घंटों, दिनों और हफ्तों बाहर घूमा करता हूँ। घर में आया जैसे न आया ! सचमुच, मुझसे उसे क्या सुख मिलता है ? पर वह भी ऐसी अजीब स्त्री है कि मुझे सदैव स्वीकार करने के लिए

तैयार बैठी रहती है। घर में आया तो कभी एक क्षण के लिए भी नहीं लगा कि मुझे किसी चीज की कमी है। मेरे मुँह में जब तक कौर नहीं जाता, तब तक वह खाना नहीं छुएगी। फिर इसमें चौबीस घंटे का फ्राका पड़े या छत्तीस का। दस रुपये लाकर दिये तो वही आराम और दस पैसे लाये तब भी वही। मेरी इस ऊबड़-खाबड़ जिन्दगी के साथ पूर्णतः समरस होकर कैसे गृहस्थी चलाती है, भगवान जाने। पर सचमुच वह देवी से कम नहीं है। और वहीं खड़े-खड़े अपनी पत्नी का धूल-धूसरित, अश्रु-प्लावित, क्लान्त और शांत चेहरा देख कर उनकी आत्मा उसके सामने श्रद्धा से झुक गयी।

बिना आवाज़ किये दीनबन्धु ने चरखा खोला। ज्योंही उसका चक्र घूमा कि लक्ष्मी की आँख खुली। वह हड़बड़ा कर उठ बैठी, और बोली—

“आग लगे इस नींद को ! ससुरी ने आने तक की खबर नहीं लेने दी। कब के आये हो ?”

“अभी तो आया हूँ। चरखा खोला नहीं कि तुम्हारी नींद खुल गयी।”—दीनबन्धु बोले।

“कैसी कम्बख़्त है यह नींद कि मुझे पता.....”

“तो क्या हो गया लक्ष्मी। सोयी ही क्यों नहीं रहती ?”

“नहीं नहीं, ऐसे कैसे होगा ? अभी चूल्हा जला कर खिचड़ी चढ़ा देती हूँ। दिन-भर के भूखे हो।”

“ना ना, रानी ! मैं आज कुछ नहीं खाऊँगा।” दीनबन्धु ने आग्रह पूर्वक कहा। “अगर तू खायगी तो चल, मैं ही खिचड़ी चढ़ा देता हूँ।”

ज्वालामुखी

“नहीं, मैं तो बिल्कुल नहीं खाऊँगी। ज़रा भी इच्छा नहीं है।”

“तो जाने दे, मुझे भी नहीं है। जा तू सो जा।”

“और तुम ?”

“मैं थोड़ा चरखा कात लूँ। अगली पंचमी को तेरी साल गिरह है, भूल गयी ! उस दिन तुझे अपने सूत की साड़ी पहनाऊँगा। भद्दे खों ने कहा है, तुम सूत तो ला दो, दूसरे दिन साड़ी बुन कर न दी तो जुलाहे की ओलाद नहीं।”

लक्ष्मी पास आकर चटाई बिछा कर सो रही। दीनबन्धु ने उसका सिर अपनी बायीं जाँघ पर सहारा देकर रख लिया। लक्ष्मी ने बिना कुछ कहे-सुने आँखें मूँद लीं। उसकी मुद्रा पर इस समय शोक का कोई भाव नहीं था। ऐसा लगा जैसे वह — एक अनिर्वचनीय शांति, एक अपूर्व तृप्ति के वातावरण में सोयी हुई हो।

दीनबन्धु का चरखा चला और उसमें धूँ-धूँ की आवाज़ निकलने लगी। उसी के संगीत में अपना सुर मिलाते हुए वे गुनगुनाने लगे—

“हम ग़रीबों के गले का हार बन्दे मातरम् !
छीन सकती है नहीं सरकार बन्दे मातरम् !!”

“इस बड़े को क्या हो गया है लल्ला की माँ ? दिखता है, यह हमारी नाक कटवा कर ही रहेगा ।”—चौधरी मैजिस्ट्रेट साहब ने कचहरी से आते ही चौधरानी जी से कहा । उनकी पत्नी ने उन्हें इतना विचलित कभी नहीं देखा था ।

“क्यों, बात क्या है ? ऐसा क्या किया बड़े ने ?”—चौधरानी जी ने पूछा ।

“सुनता हूँ वह विद्यार्थियों के जुलूस में शामिल होने चला गया । जानता नहीं गधा कि शहर में दफ़ा १४४ लगी है । जो तोड़ेगा सो फ़ौरन गिरफ़्तार कर लिया जायगा । इस समय कोई मुरव्वत थोड़े होगी ? फिर वह मैजिस्ट्रेट का लड़का हो या उसके बाप का ।”—चौधरी साहब ने कहा ।

चौधरी साहब शहर के, यानी हेडक्वार्टर के, मैजिस्ट्रेट थे और जब से बलवा शुरू हुआ तब से उन्हें बहुत गहरी जिम्मेदारियाँ

सौपी गयी थीं। कोर्ट-कचहरी के बाद रात-बेरात तलाशी, गिरफ्तारी के लिए जाना पड़ता, शहर की गश्त लगानी पड़ती, अमन-चैन में खलल का खौफ हुआ कि लाठी-गोली चलाने का हुक्म देना पड़ता। सुबह उठते ही जो पतलून चढ़ी, उसका दूसरे दिन सुबह तक उतर सकना मुश्किल हो जाता। अजीब दिन थे। ऐसा काम उन पर कभी नहीं पड़ा। आज बाईस साल की नौकरी हुई, हिन्दू-मुसलमानों के बड़े-बड़े दंगे उन्होंने संहाले। सत्याग्रह आन्दोलन भी देखे पर यह बात कुछ और ही मालूम पड़ती थी। सरकार के हुक्म भी इतने सख्त थे कि ज़रा भी चूँ-चपट की गुंजाइश नहीं। कौन दुश्मन कम्बख्त कमिश्नर साहब के कान भर दे और नौकरी से बरखास्त होना पड़े। जो दिन निभ गया सो निभ गया। कल क्या होगा, सो कल जाने।

खैर, आज तक तो जो हुआ सो हुआ। पर जब उन्हें पुलिस के ज़रिये पता चला कि उनका बड़ा लड़का महेन्द्र विद्यार्थियों के जुलूस में शामिल होने जा रहा है तो वे घबड़ाये हुए मिसल छोड़ कर घर की तरफ भागे और बड़े की माँ से इस तरह शिकायत की जैसे वही महेन्द्र के इस काम के लिए जिम्मेदार है।

“जुलूस में गया है तो गिरफ्तार हो जायगा। उसके लिए अब मैं क्या करूँ ? सुना है कि गुप्ता जज साहब की लड़की भी जुलूस में गयी है। और सुनती हूँ कि पांडे साहब का लड़का तो कल रात को ही गिरफ्तार हो गया।”

“यह सब तुम्हें कहाँ से मालूम हुआ ?”

“डिप्टी साहब की घरवाली तो अभी आकर सब कह गयी है। उसी के साहब ने तो पांडे साहब के लड़के की

गिरफ्तारी की है।”

“हे भगवान ! तुम्हें तो हम से भी ज्यादा पता रहता है । पर बड़े की गिरफ्तारी से कमिश्नर साहब को यह शक नहीं होगा कि उसको मेरी ही शह है ?”

“अरे, क्या बात करते हैं आप ? किसको किसकी शह है ? घर-घर में तूफान उठा है, कौन किसको रोके ? और रोके तो सुनता कौन है ? बड़ा भैया कह गया कि मैं गिरफ्तार हो जाऊँ तो बाबू जी, अपने साहब को बता दें कि मैं घर से निकल गया हूँ । कहो तो लिख कर दे देता हूँ । अब बोलो, क्या करूँ ?”

“यह महेन्द्र बड़ा अजीब निकला । मँझला समझदार है ।”—चौधरी साहब बोले ।

“काहे का समझदार ? घुब्ला है इसलिए ऐसा मालूम पड़ता है । पर मुझसे कह रहा था कि बड़े यदि गिरफ्तार हुए तो वह मैदान में कूद पड़ेगा । कहता था, बड़े भैया यदि वीरता दिखायेंगे तो क्या मैं कायर बन कर घर में बैठा रहूँ ? मुझ से यह नहीं हो सकता । मैं चुपचाप सुनती, रही.....”

“हे शिव शंकर ! तब तो मेरी नौकरी भी खतरे में है । कमिश्नर साहब को कैसे यकीन दिला सकूँगा कि लड़के मेरी सुनते नहीं—”

“वे आपकी क्या सुनेगे ? मेरी भी तो नहीं सुनते—मैं उनकी माँ हूँ, तब भी ! वे तो अभय बाबू के नाम की माला जपते हैं ।”—चौधरानी जी बोलीं ।

“अभय की ?”—मैजिस्ट्रेट साहब ने ऐसे चौंक कर कहा जैसे सामने कोई डाकू खड़ा हो, “अभय की तो गिरफ्तारी का

वारंट निकल चुका है। उस पर बड़ा संगीन जुर्म है। उसकी तो ज़रा भी खैरियत नहीं। अगर उसने अपनी गिरफ्तारी में बाधा दी तो उसे गोली भी मार देने का हुक्म निकल चुका है।

“हाय राम! गोली का हुक्म!”—चौधरानी जी ने अचकचा कर पूछा। “आखिर उस बेचारे ने किया ही क्या है? कितना प्यारा नौजवान है वह? बच्चों को पढ़ाने आता था तब मैंने उसे पास से देखा है। कैसा कोमल स्वभाव, कैसा निर्मल अंतःकरण! बच्चों को तो अपनी पीठ का भाई मानता है और मुझे तो मैं ही कहता था। वह तो फूलों जैसा कोमल लड़का है—उस बेचारे ने क्या किया जो उसे गोली मार दी जायगी—बताओ तो?” चौधरानी जी आवेश में बोली।

“बम्बई से वही ग़दर के परचे लाया। उसी ने चारों तरफ़ आग फैलायी। स्वयं-सेवक उसी के भाषण से भड़के। शहर में पुलिस का एक जमादार जान से मार डाला गया और सुनता हूँ कि वह वर्धा नदी की तरफ़ गया हुआ है, जहाँ गाँव-के-गाँव सरकार के खिलाफ़ बगावत कर चुके हैं। वहाँ भी शायद खून खराबी हुई है, ऐसी रिपोर्ट है।

“पर वह तो चींटी को भी मारना पाप समझता था। यह कैसे हो सकता है कि वह किसी का खून करने को भड़काये। यह सब ग़लत है। एमखाह किसी को ज़बर्दस्ती सूली पर चढ़ाना हो तो चढ़ा दो।”

“तुम क्या कह रही हो लल्ला की माँ! यह भी क्या तुम्हें ड्रिप्टी साहब की घरवाली ने ही बताया।”

“उस बेचारी ने काहे को बताया? ऐसे असंगुन की बात

अनन्त गोपाल शिवड़े

कौन कहेगा और वह भी देवता स्वरूप अभय कुमार के सम्बन्ध में । ना, ना, भगवान !” — ऐसा कह कर चौधरानी जी ने एक के बाद एक दोनों गालों पर हल्की चपत मार ली ।

चौधरी मैजिस्ट्रेट अपनी पत्नी की इस दृढ़ता के सामने हतबुद्धि रह गये । गंभीर चेहरा बना कर गुमसुम हो गये । चौधरानी जी ने रौताइन को बुला कर हुक्म दिया कि साहब की चाय के लिए सिगड़ी पर पानी रख दे और वे फ़ौरन अपने देव-गृह में चली गयीं । धी का दीप तथा उदबत्ती जला कर देवी से हाथ जोड़ कर बोलीं—“हे माई ! ऐसा ही करो कि अभय के बारे में जो सब सुना है, वह भूटा हो ।” उसकी रक्षा करो, माँ, उसकी रक्षा करो !”

आन्दोलन की आग शहरों में तो भड़की, पर उसकी लौ अब देहात में भी जा पहुँची। बम्बई के विस्फोट की खबरें दूसरे शहरों में पहुँचीं तो वहाँ भी विस्फोट हुए। शहरों की खबरें गाँवों में पहुँचीं, तब वहाँ भी विस्फोट हुए। सारी जनता में विद्रोह की भावना मूर्तिमान थी। विदेशी साम्राज्य के खिलाफ घृणा नस-नस में भरी पड़ी थी। पर शताब्दि-डेढ़ शताब्दि के अंग्रेजी शासन की मजबूत पकड़ में वह भावना सोयी-सी, मरी-सी जान पड़ती थी, पर वह एकदम गायब नहीं थी। मौका पाकर वह एकदम उभड़ पड़ने को तैयार थी। अगस्त क्रांति के तेजस्वी संदेश ने जैसे मुद्दों में भी जान डाल दी, जो मिट्टी के आदमी थे, वे भी शूरवीरों की तरह ललकार कर उठ खड़े हुए। सब के मन में यही भावना थी कि बस आजादी की यह आखिरी लड़ाई है। जो कुछ करना है इसी

समय करना है। मर-मिटना है तो इसी समय। इसी में तो मोक्ष मिलेगा। यह मौका चूके कि दुबारा यह पर्व नहीं आयेगा।

अभय गांधी जी की जीवन-प्रणाली में श्रद्धा रखता था। उसकी धारणा थी कि गांधी जी ही भारत को अहिंसक क्रांति द्वारा स्वतंत्र कराने की क्षमता रखते हैं। और यदि भारत उनके नेतृत्व में अपनी गुलामी से मुक्ति पाने में सफल हो गया तो दुनिया के अन्य पद-दलित, पराधीन राष्ट्रों को भी शक्ति मिलेगी, उन्हें भी अपनी बेड़ियाँ तोड़ फेंकने का मार्ग मिल जायेगा। इसी तरह राष्ट्र के बाद राष्ट्र अहिंसक समाज-व्यवस्था की ओर बढ़ते चले जायँगे, और युद्ध के दावानल में उलझी हुई, झुलसी हुई दुनिया में सच्ची शांति, सच्चा मानव-धर्म प्रस्थापित करने का मार्ग प्रशस्त हो जायगा। पश्चिमी देश हिंसा और प्रतिहिंसा के कुचक्र में इस कदर फँस गये हैं कि वे उसमें से निकल नहीं पाते। उनका हरेक कदम उन्हें उस कीचड़ में गहरा, और गहरा, धँसाता चला जा रहा है। जब वे स्वयं अपने आपको नहीं बचा सकते तो दुनिया को क्या बचा सकेंगे? गांधी ही वह अद्भुत, अगम्य शक्ति है जो गहन निराशा और पीड़ा से जर्जरित विश्व को शांति का मार्ग दिखा सकेगा। अतः इस आन्दोलन का महत्व केवल देश की स्वतंत्रता तक ही सीमित नहीं है, विश्व की शांति और उद्धार के लिए भी है।

इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर अभय कुमार आन्दोलन को अहिंसा के रास्ते पर चला रहा था। पर चूँकि आन्दोलन

ज्वालामुखी

अब किसी संस्था विशेष का कार्यक्रम नहीं रह गया था, जैसा कि सन् १९४०-४१ का व्यक्ति-गत सत्याग्रह था, उसमें किसी भी विचार धारा के व्यक्ति को कूद पड़ने की रोक-टोक नहीं थी। नतीजा यह हुआ कि क्रांतिकारियों का एक दल, जो हिंसा में विश्वास करता था, खूजानों पर डाका डालने, शस्त्रागारों को लूटने, जालिम सरकारी अफसरों का खून करने, डायनामाइट से रेल्वे पुल उड़ा देने के कार्यक्रमों में हिस्सा लेने के लिए जनता को उभाड़ रहा था। सूबे के कुछ इलाके जहाँ गांधी-वादियों का जोर था, अहिंसा के मार्ग पर चलते थे। पर कुछ ऐसे भी इलाके थे जिनका नेतृत्व सशस्त्र क्रांतिकारियों ने हथिया लिया था। वहाँ पुलिस और फ़ौज ने घेरा डाल दिया था और धीरे-धीरे वह अपनी कमान संकरी बनाते हुए आततायियों के केन्द्रों पर छापा मारने की आयोजना कर रहे थे। अपनी कार्रवाई करने के लिए उन्हें सारे अधिकार सौंप दिये गये थे। उनके पास मशीनगनों भी थीं और हुक्म था कि ज़रा भी विरोध हो तो फ़ौरन गोलियाँ बरसा दो। जनता में दहशत पैदा करके उसकी कमर तोड़ने के सिवा ब्रिटिश हुक्मत को टिकाने और लड़ाई का संचालन (बॉर एफ़र्ट) करने का और कोई रास्ता नहीं था। जनता में निराशा, विफलता, पराजय की भावना आ गयी कि किस्सा खत्म।

घुघरी गाँव में जोश उमड़ रहा था, वैसे भी वहाँ जाग्रति थी, और अब तो क्रांति का वातावरण था, इसलिए क्या पूछना ! “करो या मरो” के नारे से सारा गाँव गूँज उठा । गाँव की आबादी दो-ढाई हजार होगी । पुलिस थाना था, डाकघर, प्राइमरी स्कूल आदि सुविधाएँ थीं । पर राष्ट्रीय जाग्रति में वह बड़ी-बड़ी तहसीलों और कुछ जिलों से भी आगे था । प्रदेश के नेताओं को इस गाँव का भरोसा था । पटेल, पटवारी जैसे पाँच-सात घर छोड़ दिये तो सारे गाँव में एक भी घर नहीं मिलेगा, जहाँ राष्ट्रीय झण्डा न हो या गांधी जी की तस्वीर न हो । राष्ट्रीय गीतों और भजनों की भी एक मण्डली थी जिसके पास हारमोनियम, तबला, तानपूरा, मंजीरे आदि साज थे । वह गाँव, अतराफ के और कुछ गाँवों की तरह बाबा मानवदास का भक्त था । बाबा मानवदास उसी इलाके के एक

ज्वालामुखी

साधु थे जो भगवद्-भक्ति के साथ ही मानव-सेवा का भी संदेश दिया करते थे। स्वामी विवेकानन्द की परम्परा की तरह उनका उपदेश भी यही था कि निराकार परमेश्वर तो साकार मानव के हृदय में बसते हैं। इसलिए मानव की सेवा ही ईश्वर को पाने का एकमात्र मार्ग है। वे मस्त होकर खंजड़ी पर भजन गाया करते थे, जिन्हें सुन कर जनता विभोर हो कर भूमने लगती थी। भजनों की भाषा और भाव सरल थे, इसलिए वे अपढ़-से-अपढ़ लोगों के दिलों में भी फ़ौरन घर कर लिया करते थे। भक्ति के साथ कर्म का समन्वय होना चाहिए, ऐसा वे मानते थे, इसलिए उनके भक्तों को केवल त्रिपुण्ड लगा कर ध्यान धरते हुए किसी ने नहीं देखा था। उनके हाथ में झाड़ू, दवा का बक्स और स्लेट-पेंसिल आदि उपकरण भी दिखते, जिसके फल-स्वरूप गाँव की सफ़ाई, मरीजों और पीड़ितों की सेवा तथा साक्षरता प्रचार आदि कार्यों में काफ़ी तरक्की होती थी। बाबा मानवदास गांधी जी के बड़े भक्त थे। उनकी धारणा थी कि गीता में भगवान् कृष्ण ने जो आश्वासन दिया था, उसी के अनुसार गांधी जी का अवतार हुआ है। एक बार सेवा ग्राम जा कर वे गांधी जी से भी यही कह आये थे। पर प्रत्यक्ष राजनीति से बाबा जी को कोई सरोकार नहीं था। केवल विधायक कार्यक्रम से उनका थोड़ा-बहुत सम्बन्ध था। मानव की, राष्ट्र की या भगवान् की सेवा करना ये सब एक ही भक्ति-भावना के विभिन्न स्वरूप हैं, ऐसा वे मानते थे। वे स्वयं पढ़े-लिखे तो नहीं थे, पर उनके प्रवचनों को सुन कर कोई ऐसा अंदाज़ नहीं लगा सकता था। उनके विचार अनुभव और अनुभूति से उत्स्फूर्त थे। वाणी में इतना

अनन्त गोपाल शेवड़े

मार्दव, हृदय में इतनी करुणा, आचरण में इतना सौजन्य कि जो व्यक्ति उनके सम्पर्क में आता, अनायास ही उनका भक्त बन जाता। अचरज नहीं, जो उस इलाके में बाबा जी की अनन्य पूजा होती।

उस दिन गुरुवार का दिन था और बाबा जी के भक्तों ने घुघरी गाँव में ही उनके भजन का कार्यक्रम रक्खा था। भजन रात को नौ बजे शुरू हुआ। आस-पास के आठ-दस गाँवों के लोग वहाँ इकट्ठे हुए। नर-नारी, बूढ़े-बच्चे-सब ! पिछले दिन यानी बुधवार को घुघरी से तीन मील दूर आमगाँव में गोली चल गयी थी, जिसमें वहाँ का एक किसान, फागू, जन्न से मारा गया। त्रियों पर भी अत्याचार हुए, ऐसी खबरें भी आयी थीं। उस वातावरण में शोक और रोष दोनों ही फैल गये थे। देखते-देखते इस हत्या-काण्ड की खबर आस-पास के दस-बीस गाँवों में फैल गयी। फागू किसान देहात में लोकप्रिय था और स्वभाव का था बड़ा सरल और गरीब। वह भी बाबा जी का भक्त था। नतीजा यह हुआ कि उसकी अकारण मृत्यु से ग्रामीणों के हृदय में ठेस लगी। अपने दुख का भार हल्का करने के लिए वे सब-के-सब अपने बाल-बच्चों को लेकर बाबा मानवदास का भजन सुनने घुघरी चले आये। उनमें उस अभागे किसान की बूढ़ी माँ भी थी, जो बुढ़ापे और दुःख के कारण चल नहीं पाती थी। इसलिए उसे वहाँ के दो-एक युवक कंधों पर बैठा कर लाये थे। उसके आँसू तो थमते ही न थे, क्योंकि फागू उसका इकलौता लड़का था। वह तो यही कहती थी कि इस अंग्रेजी राज की ठठरी बन जाय, जिसने मेरे गरीब बेगुनाह फागू को खा

ज्वालामुखी

लिया । ज्योंही वह भजन की सभा में आयी, लोग बोल उठे—
“फागू की माँ ।”

उसके भरते हुए आँसू देख कर औरतें और कुछ मर्द भी अपने आँसुओं को रोक नहीं पाये । उसका स्वागत करने को बाबा मानवदास स्वयं मंच पर उठ खड़े हुए और झुक कर उन्होंने फागू की माँ के चरण छूकर कहा—

“माँ, तुम बड़ी भाग्यशालिनी हो, जो तुम्हारा बेटा देश के लिए शहीद हुआ । तुम वीर-माता हो ।”

और उस दिन भजनों का क्या समा बँधा । बाबा जी तो हमेशा ही भजनों में रम जाते थे, पर आज तो जैसे उसमें बिलकुल डूब गये । झूम-झूम कर गाते थे, उनके साथ जनता भी झूमती थी । ऐसा रंग चढ़ा, ऐसा रस बरसा कि वाह ! जब उन्होंने सूरदास का यह भजन गाया—

“अब की टेक हमारी । लाज राखो गिरधारी !”

तो ऐसा लगा कि आज वे आर्त हो कर ईश्वर का आह्वान कर रहे हैं कि आओ, भारत की इस विपदा की घड़ी में, जब शासकों के अत्याचारों से जनता त्राहि-त्राहि कर रही है और स्त्रियों की मान-मर्यादा पर भी आक्रमण हो रहा है, आओ, और भारत की लाज राखो !

“जैसी लाज राखी अर्जुन की भारत युद्ध मँभारी !

सारथी हो के रथ को हाँको, चक्र सुदर्शनधारी !!

भक्तन की टेक न टारी !!”

और जब उन्होंने यह पंक्ति शुरू की—

तो कौरवों की सभा का सारा दृश्य आँखों के सामने नाच उठा। दुःशासन का वस्त्रहरण, पाण्डवों की असहायता और द्रौपदी की कर्ण पुकार ! उसी की कर्ण में अपनी कर्ण की टेर मिला कर बाबा मानवदास ने गाया—

“सूरदास की लाज राखो, अब को है रखवारी ?”

सारा श्रोतृ-समुदाय भाव-विभोर हो कर भक्ति-रस-सागर में गोते लगाने लगा। अपने दुःख और अपमान का उन्हें विस्मरण हो गया। फागू की माँ भी अपने आँसू पोंछ कर मगन-मस्त हो कर डोलने लगी। लोगों के निराश और चिंताग्रस्त दिल प्रकृतिस्थ होने लगे और उन्हें लगा कि उनके सर्व-भ्राण नेता गांधी जी भले ही जेल में चले गये हों और उनकी ग़ैरहाजरी से लाभ उठा कर सरकार जनता को छल भले ही रही हो, पर वे अब अकेले, अहसास नहीं हैं, साक्षात् भगवान ही उनको सहारा देने दौड़ पड़े हैं। भजन की समाधि ही कुछ ऐसी लगी। और जब भक्त-मण्डली इसी तरह आनन्द-सागर में हिलोरें ले रही थी, बाबा जी ने आवाज़ चढ़ा कर फिर एक हुंकार भरी—

“क्या सोया गफ़लत का माता,
जाग रे नर जाग रे !”

श्रोतृ-समुदाय जैसे हड़बड़ा कर उठ बैठा। ऐसा लग रहा था कि भगवान के अस्तित्व का भान करा कर अब वे लोगों को कर्मक्षेत्र में कूद पड़ने का आह्वान कर रहे हो। फिर एक बार ललकार कर उन्होंने कहा—“सुन लो प्यारो !

“क्या सोया गफ़लत का माता,

ज्वालामुखी

जाग रे नर जाग रे ।”

उनकी पहाड़ी आवाज़ रात्रि की निस्तब्धता को चीर कर एक अजीब समा बाँध रही थी । उनकी खंजड़ी भी अब शंकर जी के डमरू की तरह डमडमा रही थी । लोग जाग गये, जाग कर उठ बैठे, कुछ करने के लिए, कर-गुजरने के लिए बेचैन हो उठे, तड़पने लगे । बाबा जी ने गाया—

“ऐसी जागन जाग पियारे ! जैसी ध्रुव प्रल्हाद रे !

ध्रुव को दीनी अटल पदवी, प्रल्हाद को राज रे !!”
फिर बोले—

“मन है मुसाफ़िर, तनुका सरा बिच, तू कीता अनुराग रे !

रैन बसेरा कर ले डेरा, उठ चलना परभात रे !!”

अन्त में उन्होंने आनन्दधन का एक भजन भैरवी राग में गाया—

“अब हम अमर भये, न मरेगे ।”

और इस भजन के बाद धुन लगायी—

“रघुपति राघव राजा राम,

पतित पावन सीताराम !”

इस धुन में सारी जनता शामिल हुई । लगभग चार घंटे तक भजन सुनने के बाद जो आत्म-विभोरता श्रोताओं को अभिभूत किये हुए थी, वह अपूर्व उल्लास और उमंगों के साथ धुन के जय-घोष में प्रतिबिम्बित होने लगी । लगभग आध घंटे तक तो यह धुन ही चलती रही । प्रत्येक मिनट उसकी गति बढ़ने लगी, उसकी लय बढ़ती गयी । मंजीरों की खनखन, खंजड़ी की डमडम, मृदंग के धिक् बोल और श्रोताओं की

अनन्त गोपाल शेवड़े

तालियों ने एक अजीब-सा वातावरण पैदा कर दिया। उन कुछ क्षणों के लिए लोग भूल गये कि वे कहाँ हैं, क्या कर रहे हैं ? उन्हें अपने आस-पास के भौतिक जगत् का विस्मरण हो गया और केवल बाबा मानवदास की मूर्ति ही उन्हें नयन मूँदे, धुन में मस्त दिखायी दी। बाबा की डाढ़ी, काले और सफ़ेद बाल—उनके गले में फूलों और रुद्राक्ष की मालाएँ तथा उनका गेरुआ वेष—यह छोड़ कर और कुछ नहीं दिखायी देता था।

ज्यों ही भजन समाप्त हुआ—बोलो कृष्ण बलदेव की जय, सियावर रामचन्द्र की जय, भारत माता की जय के नारों से आकाश गूँज उठा।

सब लोग बोल उठे, “बाबा जी का ऐसा भजन हमने कभी नहीं सुना। आज तो हम सचमुच कृतार्थ हो गये।”

लोग पौ फटते-फटते अपने-अपने गाँवों को पहुँच भी न पाये थे कि अकस्मात् उन्होंने सुना कि भजन समाप्त होने के एक घंटे बाद ही पुलिस और मिलिटरी ने घुवरी गाँव पर घेरा डाल दिया और बाबा मानवदास गिरफ्तार हो गये।

बाबा मानवदास की गिरफ्तारी से जनता प्रलुब्ध हो गयी । बोली, कल फागू किसान को गोली मार दी और आज बाबा जी को कैद कर लिया । इस राज में अब कोई नेम-धरम भी बचा है या नहीं ? हम हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें, धिक्कार है हमारे जीने पर । चलो रे संगी ! अब हम कुछ कर के ही दिखायें । करेंगे या मरेंगे !

घुघरी गाँव के जवान, सब-के-सब उठ खड़े हुए । गाँव के पटेल ने रोका, सयाने पंडित जी ने, जो कथा बाँचते थे और पंडिताई करते थे, सावधानी से काम लेने की बात कही । दो एक बड़े-बूढ़े भी बोले, “वक्त बड़ा टेढ़ा है, सोच-समझ कर ही काम करना चाहिए ।” पर नौजवान किसी की सुनने को तैयार नहीं थे । बोले—अधिक-से-अधिक क्या होगा ? यही न कि फाँसी लगेगी । सो लग जाय । जान तो एक बार जानी ही है,

सो इसी तरह क्यों न चली जाय ? दो-चार लोग नाम तो लेंगे कि हम देश के लिए फाँसी पर चढ़ गये । बस, बात खत्म ! इतने पर कौन क्या कहता ? पटेल, कथा वाचक पंडित जी, सब चुप हो गये ।

उस दिन अभय कुमार का मुकाम घुघरी से सात मील दूर के एक गाँव में था । उसे जब मालूम हुआ कि बाबा मानवदास की गिरफ्तारी के कारण घुघरी की जनता उमड़ पड़ी है तो उसने कहा—

“चलो दीनबन्धु, फ़ौरन घुघरी चलें ।”

“पर वहाँ तो पुलिस और मिलिटरी का डेरा लगा होगा । तुम गिरफ्तार हुए बिना न रहोगे । मौत के मुँह में स्वयं जाने से क्या फ़ायदा ? तुम्हारी गिरफ्तारी के लिए तो पुलिस जमीन-आसमान एक रह रही है ।”

“करने दो ! पर इस बार घुघरी की जनता न समझली तो बड़ा अनर्थ हो जायगा । उसे समझालना जरूरी है । उसका जोश सही रास्ते पर रहे, यह बड़ा आवश्यक है ।”

दीनबन्धु ने दो घोड़ियों पर जीने कसवायीं और एक घंटे के भीतर ही दोनों घुघरी पहुँचे । वहाँ के लोग दीनबन्धु को जानते थे और अभय कुमार का नाम सुन चुके थे । अभय कुमार को घर छोड़े पन्द्रह दिन हो गये थे, तब से उसे डाढ़ी बनाने का वक्त नहीं मिला था । और जब उसने सुना कि उसकी गिरफ्तारी के लिए एक डी० आई० जी० और फ़ौजी-पुलिस की एक खास टुकड़ी तैनात हुई है तो उसने डाढ़ी बढ़ाने का ही निश्चय कर लिया । गोरा-गोरा, सुन्दर, गठीला नौजवान—अपनी काली डाढ़ी के

ज्वालामुखी

कारण तपस्वी जैसा लग रहा था । धुधरी की जनता ने उसका बड़े प्रेम के साथ स्वागत किया ।

वह जब धुधरी पहुँचा तो पुलिस और फ़ौज बाबा मानवदास को लेकर कब की चली गयी थी । वहाँ सिर्फ़ एक थानेदार और सर्किल अफ़सर थे, जो दौरा करने के लिए आये थे । और आठ पुलिस के सिपाही । सर्किल अफ़सर ने धुधरी के प्रभुब्ध वातावरण को देख कर कुमक भिजवाने के लिए एक सिपाही के जरिये ज़िले को संदेशा भेजा । पुलिस के रवाना होने पहले ज़िला अफ़सर ने मैजिस्ट्रेट को फ़ौरन मोटर पर रवाना किया जो तहसील और दो चपरासियों को लेकर धुधरी के डाक बंगले में आकर ठहर गये तथा पुलिस की कुमक के आने की प्रतीक्षा करने लगे ।

धुवरी के दस-बारह प्रमुख आदमियों की एक गुप्त बैठक हुई जिसमें अभय कुमार और दीनबन्धु भी थे। मुखिया ने कहा—“अभय बाबू, अब बताओ क्या करें ? आप हुकम दो तो हम लोग आग में कूद पड़ें। हम सब तैयार हैं—क्यों रे सोमा ?”

“हाँ हाँ, हम सब बिलकुल तैयार हैं !” केवल सोमा ने ही नहीं, सब लोगों ने सुर में सुर मिला कर कहा।

अभय ने कहा—“हमें बे मतलब आग में नहीं कूदना है। जिस बात से क्रांति का काम आगे बढ़े, वही करना है। उसमें फिर आग में कूद पड़ना जरूरी हो तो वह भी करना है।”

“नहीं साहब, हम तो आज आग ही लगायेंगे और जलना हो तो उसी में जल जायेंगे। सरकार ने परसों फागू को गोली मार दी, औरतों पर भी हाथ डाला और आज बाबा जी को गिरफ्तार कर के ले गये। तो क्या हम चूड़ियाँ पहने बैठे रहें ?”

“नहीं, चूड़ियाँ क्यों पहने रहो ! बराबर प्रतिकार करो, सरकार के काम को हर तरह ठप करने की कोशिश करो ।”

“हम तो आज जुलूस निकाल कर थाने पर कब्जा करेंगे । पुलिस ने विरोध किया तो उसे आग लगा देंगे ।”

“थाने को आग लगाने की बजाय उसके अन्दर के सरकारी कागजों को आग लगाना सही होगा ।”—अभय ने कहा ।
“थाने को आग लगाने से उसके भीतर के पुलिस कर्मचारी नहीं जल जायेंगे ?”

“जल जायें तो क्या ?” सोमा दर्जी ने कहा, “हमारे फागू को गोली मार दी, उसका बदला नहीं लेंगे ? और अब आज बाबा जी को गिरफ्तार कर लिया । बेचारे भजन-पूजन किया करते थे, सो इस राज में अब वह भी गुनाह हो गया । हम तो अब खामोश नहीं बैठ सकते । जब तक पुलिस की नाक नहीं कटे, हमारी छाती ठंडी नहीं होगी ।”

“नहीं, हमें इस तरह बदला नहीं लेना है । हम यदि गांधी जी के मार्ग पर चलना चाहते हैं तो ऐसा नहीं करना होगा । तुम पुलिस की नाक काटना चाहते हो ना, सरकारी कागजात जला दो, पुलिस के थानेदार और सिपाहियों की बर्दियाँ उतरवा कर उन्हें आग में झोंक दो—वे सब विदेशी शासन के प्रतीक हैं । और फिर थाने पर तिरंगा झंडा फहरा दो । वही तुम्हारी विजय है, उसी में तुम जिसे बदला कहते हो, वह भी मिल जायगा । थाने पर एक घंटे के लिए ही क्यों न हो, जनता का कब्जा हो गया, उसी का मतलब है जनता का राज्य आ गया । फिर संगीनों के बल पर वे पुनः थाना ले लें, पर वह डाका

अनन्त गोपाल शेवड़े

डाल कर कब्जा करने जैसा होगा। उस पर उनका नैतिक हक जाता रहेगा।”—अभय ने कहा।

बात कुछ लोगों की समझ में आयी, कुछ के नहीं आयी। सोमा बोला—

“यदि पुलिस ने प्रतिकार किया तो ?”

वह तो प्रतिकार करेगी ही। पर उसके बावजूद तुम्हें आगे बढ़ना होगा और कब्जा करना होगा। वह गोलियाँ चलायेगी तो गोलियाँ खानी होंगी। तुम्हारे आदमी मरेंगे, जखमी होंगे, गिरेंगे, पर कब्जा करने के बाद इस सबका परिमार्जन हो जायगा, यह सब कुर्बानी परिपूर्ण होगी। जुलूस शांत रहा तो सफलता मिले बगैर नहीं रहेगी। हो सकता है कि पुलिस की गोलियाँ खत्म हो जायँ या उनके हाथ से बन्दूक छूट जाय। विदेशी शासन के भारतीय नौकरों का ही यदि हृदय-परिवर्तन हो जाय तो इतना बड़ा राज्य कैसे चलेगा ? अहिंसक क्रांति का यही हेतु है—” अभय ने कहा।

“अभय बाबू ! हम तो कोशिश करेंगे शांत रहने की। पर पुलिस ने कुछ उलटी-सीधी कार्रवाई की तो भरोसा नहीं दे सकते। फिर जो हो जाय। जनता भडकी हुई है। उसे रोकना मुश्किल है। न रोको तो मुश्किल है।”

“तो लो, मैं तुम्हारे जुलूस में चलता हूँ। तुम्हारे भले-बुरे में मैं साथ हूँ। हम लोग आखिरी दम तक कोशिश करेंगे कि गांधी महाराज का झंडा झुकने न पाये।”—अभय बोला।

“ना ना बाबू ! हम आपको अपने साथ न आने देंगे। जो कुछ करेंगे, घुघरी के लोग ही करेंगे। घुघरी के लिए

ज्वालामुखी

आपकी जान जोखिम में नहीं डालेंगे।” —मुखिया जी ने कहा और उसका समर्थन सब लोगों ने एक स्वर से किया।”

“इसमें जोखिम की क्या बात है ?” —अभय ने कहा। “जोखिम की जिन्दगी तो अब हमारे साथ लगी है। जब देश ही एक युद्ध-क्षेत्र बन गया है तो कौन सा देश-भक्त नागरिक अब सुरक्षित है, बताओ तो ?”

“सो तो ठीक है, सोमा ने कहा, “पर आपकी जान को जरा भी आँच लगी तो घुघरी की नाक कट जायगी। हम ने आपकी बात मन में धार ली है सो आप भी हमारी मान लें और इन्हीं घोड़ियों पर सवार होकर सोना घाटी के रास्ते से चले जाएँ। खाने का सामान साथ बाँधे देते हैं, वहीं किसी खोह में चूल्हा चढ़ा लेना।”

“सोमा ने पूरे सोलह आने की बात कही,” एक प्रौढ़ सज्जन ने कहा, जो बाद में पता चला कि सोमा के चाचा थे। “अब आप और दीनबन्धु दादा यहाँ से फौरन चल दें तो हमें शांति मिले।”

और इसके पहले कि अभय कुछ कहता, कपड़े की दो बैलियों में आटा-चावल आ गया और उन्हें घोड़ियों पर सवार करके सचमुच खदेड़ दिया गया।

घुघरी गाँव के इतिहास में ऐसा विशाल जुलूस कभी नहीं निकला था । नौजवान उसके अगुवा थे, जिनमें ज्यादातर बाबा मानवदास की भक्त-मंडली के लोग थे । जितने पुरुष थे, करीब-करीब उतनी ही स्त्रियाँ थीं । कई तो अपनी गोद में बच्चे लिये हुए थीं । गाँव के अगुवा लोगों ने स्त्रियों से बहुत कहा कि आज मत जाओ, गोली चलने का खतरा है, पर उन्होंने एक न मानी । गोली चले तो चले । जैसे फागू मर गया, वैसे हम भी मर जायँगी । भव-सागर तो तर ही जायँगी ! बाबा जी ने कल रात ही हमें इतनी सीख दी सो आज ही भूल जायँ ? नहीं, लाठी चले या गोली, हम तो जुलूस में चलेंगी ही । बच्चों का साथ भी नहीं छोड़ा जा सकता । उनसे बिछुड़ कर न जाने कब मिलेंगे ? जो हमारा हाल होगा, सो उनका होगा । उनकी यह दृढ़ता देख कर कोई कुछ न बोल सका । सोमा ने कहा, “आने दो

मुखिया जी ! माताएँ हैं, जगद्धात्री का अवतार हैं । उनसे तो शक्ति बढ़ेगी ही, घटेगी नहीं । उनके रहते पुरुष भी भाग नहीं सकेगे, आने दो ।”

आठ बजे सुबह ही जुलूस खोले हुए समुद्र की तरह उमड़ पड़ा । राष्ट्रीय झंडे तो जाने कितने थे । ? कुछ स्वयं-सेवकों के हाथों में तख्तियाँ थी जिन पर नेताओं के संदेश और नारे लिखे थे । एक पर लिखा था—“सन सत्तावन का काम बयालीस में पूरा करो !” दूसरे पर था—“अंग्रेजों, भारत छोड़ो ।” तीसरे पर था—करेंगे या मरेगे !” कुछ लोगों के पास न झंडे थे, न तख्तियाँ, सो उन्होंने अपनी-अपनी लाठियाँ ले ली थीं । मुखिया जी ने मना किया कि इनकी ज़रूरत नहीं है । पर वे बोलते, “यह तो नित्य ही हमारे लंगोट की तरह हमारे साथ रहती है । हम दिशा मैदान जाते हैं तब भी इसे नहीं छोड़ते । फिर आज कैसे छोड़ें ? हमें कोई न छोड़े तो हम इसका उपयोग थोड़े करेंगे ?”

“आज तो थाने पर ही हमला करना है तो पुलिस छोड़े बिना कैसे रहेगी ?”—मुखिया ने कहा ।

यों ही गिरफ्तारी-विरफ्तारी होगी तो हम कुछ नहीं बोलेंगे । पर हमारी औरतों पर यदि किसी ने हाथ डाला तो अभी बताये देते हैं कि ठन कर ही रहेगी । फिर पुलिस से कहना कि देख लो बेटा, भोला पहलवान के अखाड़े का ज़ोर !”—हनुमान अखाड़े के संचालक भोलानाथ ने मूँछें ऐंठते हुए कहा ।

मुखिया जी को इसी जगह खतरा दिखायी दिया । बोले—

“भोला ठाकुर ! आज का जुलूस तो बिलकुल शांत रहेगा । हमें मारना नहीं है, मरने के लिए तैयार रहना है । पुलिस लाठी चलाये, गोली चलाये, हमें जवाब नहीं देना है । गांधी जी ने हुक्म दिया है—”

“गांधी जी ने तो हुक्म दिया—करेंगे वा मरेगे । सो आप मरते रहें हम तो करेगे और कर के रहेंगे ।”—भोला ने कहा ।

“करेंगे का मतलब है स्वतन्त्र होकर रहेंगे और न हो पाये तो उसी के लिए लड़ते-लड़ते मरेंगे । करेंगे का मतलब खून-खराबी करेगे, ऐसा नहीं है ।”—मुखिया जी बोले ।

“मुखिया जी, अपनी समझ में तो यह सब नहीं आता । हमारे पास भी यह लाल परचा है, जिसमें सारा प्रोग्राम साफ़-साफ़ लिखा है—” यह कह कर भोला ने गाँठ से एक मुड़ा हुआ लाल रंग का हैंडबिल निकाला, जिस में लाल क्रांतिकारी पार्टी का कार्यक्रम लिखा था । उसमें थाना जलाने, पुल उखाड़ने, शस्त्रागार लूटने, जालिम अफसरों को सजा देने आदि कामों का उल्लेख था ।

“अरे, यह तो गांधी जी का परचा नहीं है, दूसरे दल का है ।”—मुखिया ने कुछ धबड़ा कर कहा ।

“तो क्या हरेक परचे पर गांधी बाबा के दस्तखत रहेंगे ? वे तो जेल में बैठे हैं—कहाँ से दस्तखत करेंगे, बताओ तो ? और मान लो कि परचा दूसरे दल का है तो क्या वे हिन्दुस्तानी नहीं हैं ? प्रोग्राम छपा है, हाथ से तो लिखा नहीं है ! वह ग़लत कैसे होगा ?”—भोलानाथ ने कहा ।

इतने में पीछे से सोमा आया और बोला—“मुखिया जी क्या कर रहे हो ? जनता पीछे से ठेल रही है । आगे बढ़ो !”

“बोलो भारत माता की जय ! हिन्दुस्तान हमारा है । करेंगे या मरेंगे । बढ़े चलो, नौजवानो, बढ़े चलो !”

नारे लगने लगे । जनता का जयघोष गगन चूमने लगा । जुलूस के अगले हिस्से ने गाना शुरू किया—

“मारने का नाम मत लो, पहले मरना सीख लो !”

भोला पहलवान के दल ने गाना शुरू किया—

“माँ रंग दे बसन्ती चोला !

जिस चोले को पहन भगत ने फेंका बम का गोला ।

माँ रंग दे बसन्ती चोला !”

जुलूस थाने की तरफ बढ़ने लगा, जो गाँव से बाहर एक छोटे से टीले पर था । गाँव का कोई घर ऐसा नहीं होगा जो इस समय खाली न हो गया हो—दो-चार बीमार या बूढ़ों को छोड़ कर बाकी सब घर के लोगों ने, पुरुष, स्त्री, बच्चों ने, जुलूस में उत्साह से भाग लिया था । फागू की मृत्यु और पिछली रात को बाबा मानवदास का भजन—इन दो कारणों से घुघरी गाँव के लोग जैसे एक नवीन चेतना से अनुप्राणित हो उठे । आज गोली क्या मशीनगनों चल जायँ तो भी वे हँसते-हँसते प्राण देने के लिए तैयार हैं, ऐसी ही भावना उनके दिल में उठी । अगले क्षण क्या होगा, इसकी उन्हें कोई परवाह नहीं । जो होना हो सो हो । भाग्य का लिखा कोई नहीं टाल सकता । हम हर बात के लिए तैयार हैं ।

घुघरी का थाना इस समय सब-इन्स्पेक्टर गुलाबराव के

जिम्मे था। घुघरी थाने का चार्ज लिये उसे करीब-करीब एक साल हो गया था, इसलिए वह इस बस्ती को बहुत कुछ जानता था। उसकी पत्नी जानकी बाई देवी की भक्त थी और पूजा-पाठ में रोज घंटा-दो-घंटा खर्च किया करती थी। उस रात को भी वह थानेदार साहब के हजार मना करने पर भी ज़मादार राम-प्रसाद की औरत को साथ लेकर बाबा मानवदास का भजन सुनने को चल पड़ी थी। आँधरे में बैठी थी, इसलिए शायद किसी का ध्यान उसकी ओर न गया हो। पर इस कारण उसके आनन्द में किसी प्रकार की कमी नहीं थी। दूसरे दिन सुबह बाबा मानवदास की गिरफ्तारी का समाचार सुन कर उसे भी दुःख हुआ था। पर वह जानती थी कि वह उसके पति के बस की बात नहीं थी। इसका हुक्म तो राजधानी से आया था। जानकी बाई के प्रभाव के कारण गुलाबराव ज़्यादातियाँ या अत्याचार नहीं कर पाता था। और न उसका ऐसा नाम ही था। लोगो से भय्या-दादा कह कर ही वह ज़्यादातर अपना काम निकाल लिया करता था। अगर बात बहुत बेजा न हो तो लोग उसको मान भी लेते थे।

पर उस थाने की मदद के लिए जो सर्किल इन्स्पेक्टर साहब भेजे गये थे, वे अलग प्रकृति के आदमी थे। नाम तो था उनका बाबूराम पर अपने मातहत सिपाहियों से 'लाला बाबूराम साहब' कहलाने की जिद करते थे। कुछ लोग तो उनका नाम सही-सही कह पाते, कुछ नहीं कह पाते। कहने में ज़रा ग़लती हुई कि इस गुस्ताखी के लिए सिपाही को गरजती हुई आवाज़ में गालियों सुननी पड़तीं।

कुछ लोग उनकी खुशामद करने के लिए कह देते—“डिण्टी साहब !” यह सुन कर वे कुछ नरम पड़ जाते, और उनकी बाँछें खिल जातीं। कहते—“अरे भाई, अभी डिण्टी साहब कहाँ बना हूँ। हाँ, इस आन्दोलन को मैंने ठीक से दबा दिया तो डिण्टीगिरी कहीं नहीं गयी। ऐसा खुद डी० आई० जी० साहब ने मुझ से कहा। इसीलिए तो मारा-मारा इस जंगली इलाके में भटक रहा हूँ।”

लाला बाबूराम काफ़ी ऊँचे, पूरे और तगड़े आदमी थे। रंग था एकदम काला-स्याह। भुँह में हमेशा पान-तम्बाखू भरा रहता जिसके कारण दाँत काले पड़ गये थे। भूँछें ऐंठदार थीं, जिन्हें वे हमेशा उँगलियों से सहलाया करते थे। मुर्गी और बकरे के सिवा उन्हें खाना हज़म नहीं होता था। रात में शराब ज़रूर पी लेते थे और कोई हफ़ता नहीं जाता था जब वे अपनी औरत को नहीं पीटते थे। मार खा कर वह रोने लगती तो और मार पड़ती थी। उनके एक लड़का और एक लड़की थी, जिनकी उम्र आठ और बारह साल के मीतर ही थी। फिर भी औरत को मारने के कार्यक्रम में कभी व्यतिक्रम न होता था। मारने में लात और घुँसों का ही उपयोग होता हो सो बात नहीं। बेंत, हंटर और कीलों से ठुके सरकारी बूटों का भी जब-तब इस्तेमाल हो जाता। हर बार मार-पीट के वक्त बन्दूक से उड़ा देने की धमकी दिये बिना नहीं रहते, पर बेचारे बड़े दयालु थे कि अब तक इस धमकी पर अमल नहीं किया था। उनके लड़के-बच्चों पर इस सब का क्या असर पड़ता है, इसका उन्हें खयाल भी नहीं आता था। ज्यों ही उनके बूटों के टाप घर आने की मुनादी करते

त्योही दोनो बच्चे दुबक कर साँस रोके हुए अपने कमरे में छिप जाते और सोने का स्वाँग करते । बेचारो की नीद भी इतनी पक्की थी कि बाबू जी के सोने के कमरे में कोई भी काण्ड होता, कैसा भी हड़कम्प मचता, पर वह खुलने का नाम नहीं लेती । उनकी औरत या बच्चे उनकी आँख से आँख नहीं मिलाते इस बात का लालाजी को बड़ा गुरुर रहता । ‘साहब, डिंसप्लिन तो इसी को कहते हैं!’—मूँछे ऐंठते हुए वे अपने आप शाबाशी ले लिया करते थे । अपनी औरत को कभी-कभी भूले-भटके वे धर्मपत्नी तो कह दिया करते, पर उन्होंने ऐसा कोई नियम नहीं बना लिया था कि उसी के साथ वफ़ादार रहें । आखिर लम्बे-लम्बे दौरे करने पड़ते और तबियत भी ज़रा रगीन थी । इसलिए जो थानेदार और जमादार उन्हें जानते थे, वे उनके दौरे का पूरा-पूरा इन्तज़ाम कर दिया करते थे । आखिर सर्किल साहब यदि इसी तरह खुश हो सकते हैं तो वही सही । मालिक की मर्जी । उनकी तनख्वाह जो भी हो, माकूल या नामाकूल, पर उन्हें तंगदस्ती की हालत में कभी किसी ने नहीं देखा था । ‘अगर सिविल सर्जन और डाक्टर ‘प्राइवेट प्रैक्टिस’ करते हैं तो कम्बख्त हम पुलिस वालों ने ही कौन सा गुनाह किया, जो हम उससे महरूम रहें ?’ उनके इस सीधे-सादे सवाल का कोई जवाब नहीं दे पाता था । उनका यह दावा था कि कोई उन्हें इसका सही-सही जवाब दे देगा तो वे ‘प्राइवेट प्रैक्टिस’ करना छोड़ देंगे । अब तक किसी ने जवाब नहीं दिया, इसलिए यह ‘प्रैक्टिस’ छूटी नहीं । इन्साफ़ ही की तो बात है । इसलिए उनकी औरत की पीठ पर बेंतों और धँसों

के कितने भी दाग हों, उन्हें ढँकने के लिए रेशम और सैटिन को छोड़ कर दीगर कपड़े न रहते । जैवर भी होते तो चाँदी या नकली सोने के नहीं, असली सोने के । यदि खुदा-न-खास्ता बुरे दिन आ ही गये तो इस सोने को छोड़ कर और क्या काम आयेगा । इसलिए बेचारे दौड़-दौड़ कर, एड़ी-चोटी का पसीना एक करके उसका संग्रह करते ।

उनके मातहत दारोगा, मुंशी या जवान उन्हें जल्लाद समझते, पर जो उनकी नस पहचानते थे, वे उन्हें उँगलियों पर नाचते थे-। उनका दौरा हुआ कि एकाध बड़े मालगुजार के यहाँ की कत्ल की तफ्तीश रख दी, तो उसी में अंडे-मुर्गी से ले कर पलंग-मसहरी का शाही इन्तजाम हो जाता । जाते समय एकाध छल्ले या गलहार की भेंट मिलती सो अलग । हाकिम उनसे नाराज नहीं थे । कोई टेढ़ा या मुश्किल काम हो जिसमें सख्ती या बेरहमी की जरूरत हो, तो उन्हीं को सौंपा जाता । क्या मजाल कि काम बिगड़ जाय । वाकई, लाला बाबू-राम साहब का उन दिनों पुलिस के महकमे में काफी बोलबाला था ।

अचरज की बात नहीं जो घुघरी थाने की बिगड़ती हुई हालत को सुधारने के लिए वही तैनात किये गये हों । वे चार दिन से लैमा डाले वहाँ पड़े थे । आमगाँव की गोला-बारी, भजन के बाद बाबा मानवदास की गिरफ्तारी आदि कामों के लिए उनकी अचूक कार्य-कुशलता ही ज़िम्मेदार थी । अब वे घुघरी इलाके को हुकूमत के खिलाफ़ बगावत करने के लिए सबक

अनन्त गोपाल शेवडे

सिखाने को अपनी मूँछें मरोड़ रहे थे। इतना काम और बजा दिया कि डिप्टी साहब बनने में कोई शक नहीं।



जैसे-जैसे पुलिस थाना निकट आने लगा, जुलूस का जोश बढ़ता गया। नारे और भी बुलन्द होने लगे, राष्ट्र-गीतों में और भी उत्कट भावनाएँ भरने लगीं। जन-मेदिनी के हाव-भाव में एक विशिष्ट प्रकार की मस्ती छाने लगी, थाने से लगभग सौ गज पहले एक पाठशाला थी। वहाँ गाँव के मुखिया रामनाथ जी की पत्नी रामेश्वरी देवी हाथ में पूजा का थाल लिये खड़ी थी। ज्योंही जुलूस के नायकों की कतार उस जगह पहुँची, वह सामने आयी और कपूर का दीप जला कर उसने सारे जुलूसकी आरती उतारी। कतार की पहली पंक्ति में रामनाथ जी, सोमा दर्जी, भजन समाज का मंत्री रामदास, जिसकी उम्र मुश्किल से उन्नीस वर्ष की होगी, और कन्या पाठशाला की अध्यापिका सरस्वती बाई थी। रामेश्वरी देवी ने सब को कुमकुम लगाया जो उनके कपालों पर इस पार से उस पार तक रक्तिमा लिये

चमक उठा। उनको चम्पा, कनेर और जासोंद के फूलों के मालाएँ पहनायीं और उनके सिर पर अन्न डाले। फिर एक बार आरती करके रामेश्वरी देवी ने पूजा का थाल नीचे धरती पर रख दिया और उसने सारे जुलूस को साष्टांग दण्डवत् किया। इस जन-पूजा में मुश्किल से एक-डेढ़ मिनट लगा होगा। पर ज्योंही रामेश्वरी देवी जैसी प्रतिष्ठित महिला ने, जिसकी गाँव के लोग बड़ी इज्जत करते थे, ज़मीन पर लोट कर साष्टांग प्रणिपात किया वैसे ही उदात्त भावनाओं के उद्रेक की बिजली-सी सारे जन-समुदाय को छू गयी। उसके बाद जो नारे शुरू हुए—ओफ़ ! इतनी गर्जना, इतनी दहाड़ जैसे आसमान फट पड़ेगा। ऐसा लग रहा था जैसे, कुरुक्षेत्र में पाँच जन्य शंख ही बज रहा हो। करेंगे या मरेंगे ! करेंगे या मरेंगे !! करेंगे या मरेंगे !!! महात्मा गांधी की जय !

इतनी ठसाठस, इतनी रेल-पेल, इतना धक्कम-धक्का। भगवान जाने, कौन-सी वह ताकत थी जो इस विशाल जन-समुदाय को तूफ़ान की तरह भकभोर रही थी। कल तक ये देहाती नागरिक, कितने शांत, कितने सौम्य थे, जैसी गऊ। कोई अपमान कर दे, ठोकर मार दे, फिर भी चुप। खून ऐसा ठंडा जो कभी खौले ही नहीं। आदमी हैं या पत्थर, इसका भी शक होने लगे। पर आज उन्हीं मिट्टी के पुतलों में यह जान कहाँ से आ गयी ? उनमें से दो-चार को छोड़ कर किसी ने गांधी बाबा को देखा नहीं था। पर आज वह उनकी नस-नस में समा गया सा दिखता है। कल का शांत सागर आज इतना भयंकर और अशांत क्योंकर हो उठा ? कल का सौम्य मानव आज

ज्वालामुखी

शंकर जी का रुद्रावतार कैसे धारण कर पाया ? कल का सुप्त ज्वालामुखी आज कैसे धधक उठा ? निगूढ़, अथाह और अजेय मानव के इस क्रांतिकारी परिवर्तन की पहेली को प्रत्यक्ष अन्तर्यामी को छोड़ कर और कौन बूझ सकता है ?



जनता का यह खूब देख कर थानेदार गुलाबराव आशंकित हो उठा। सर्किल-इन्स्पेक्टर लाला बाबूराम भी कुछ घबरा गया, पर ऐसी परिस्थिति में सख्ती और दहशत ही काम करती है, ऐसा वह मानता था। हिन्दुस्तानी आदमी जो ठहरे। उनमें विरोध करने की ताकत ही कितनी-सी रहती है ? पानी के बुलबुले तो हैं ! ज़रा हवा का भोंका आया कि पटापट फूटे। दिखने को आदमी हैं पर अन्दर से खोखले। तभी तो चालीस करोड़ हिन्दुस्तानियों पर लाख-डेढ़ लाख अंग्रेज राज करते हैं। निकम्मे, नामर्द, कायर ! जैसे मेढ़ हैं मेढ़ ! उन्हें ज़रा डराओ, ज़रा धमकाओ, ज़रा डण्डा दिखाओ तो ऐसे तितर-बितर हो जाते हैं कि नामोनिशां नहीं रहता। सो इस जुलूस से निपटने में क्या देर लगेगी ? और उसने अचानक अपनी पैण्ट की जेब में भरा हुआ पिस्तौल टटोला।

लाला बाबूराम को खौफ सिर्फ इसी बात का था कि अब तक जिले से पुलिस की कुमक नहीं आ पायी थी। अब आयगी, अब आयगी, इसी में वह अब तक बैठा रहा। थानेदार गुलाबराव ने सर्किल साहब से मशिवरा किया। उसकी राय थी कि घुघरी की जनता प्रकृति से शांत है, और उसे चिढ़ाया-भड़काया न गया तो वह विशेष नुक़सान नहीं करेगी। खुलूस क्या चाहता है, इसकी तलाश पहले की जाय।

“इसकी तलाश कैसे होगी ?—” सर्किल साहब ने पूछा।

“मैं जाकर मुखिया से बात कर आता हूँ—” थानेदार ने कहा।

“इसमें तो पुलिस की कमजोरी दिखेगी, और ये कमबख्त सर पर चढ़ेंगे”—लाला बाबूराम ने कहा।

“नहीं साहब ! मैं इन लोगों को बहुत कुछ जानता हूँ। ज़रा सी भलमनसाहत या चुचकार-पुचकार से तो इनसे जो चाहे करा लीजिए। पर इनके साथ ज़रा टेढ़ की कि ये किसी के देवता से मानने वाले नहीं। वक्त ज़रा विकट है। होशियारी से ही काम लेना होगा।”

“वे क्या चाहते हैं ? क्या करेंगे ?” सर्किल साहब ने पूछा।

“मेरे पास खुफ़िया रिपोर्ट आ गयी है। वे थाने के कागज़ात चाहते हैं, उन्हें जला देंगे। मेरी और आपकी वदीं उतरवा कर जलाना चाहते हैं। और थाने पर अपना झंडा लगाना चाहते हैं—” गुलाबराव ने कहा।

“यह कैसे हो सकता है ?”—लाला बाबूराम ने भड़क कर कहा। “हमारे रहते, हमारी आँखों के सामने यह कैसे होने दिया

जा सकता है ?”

“साहब, यह वक्त तो काम निकाल लेने का है,” गुलाबराव ने कहा। “मेरे पास कोई जरूरी कागजात नहीं हैं—दो-एक सफ़तीश के मामलें हैं। तीन-चार इबतदाई रिपोर्टें हैं, हाजरी रजिस्टर, रवानगी रजिस्टर हैं। इनके जलने से कोई काम नहीं रुक रहा अपनी वर्दियों की बात, सो एक जली तो दूसरी आबकारी। इसमें क्या होता है? अपना भंडा चढ़ा भी लिया तो पुलिस की कुमक आते ही फिर उसे उतार कर सरकारी भंडा चढ़ा देंगे। चार-छः घंटे का तो खेल है। तूफ़ान जैसे उठा है वैसे शांत हो जायगा।”

“क्या वाहियात बात करते हैं थानेदार साहब!” लाला बाबूराम ने तुनक कर कहा, “आप पुलिस के इन्स्पेक्टर हैं या आबकारी के? कहते हो, कागजात जलाने दें, वर्दियाँ जलाने दें, भंडा चढ़ाने दें। डी० आई० जी० तो हमें जिन्दा फाड़ खायगा, जानते हो? उसका नाम टायगर है, टायगर! जैसा नाम वैसी करनी। इस समय किसी ने कमजोरी दिखायी कि उसकी चटनी बनने में देर नहीं। आखिर ये जुलूस वाले करेंगे ही क्या? दो चार गोलियाँ चलायीं कि भागते रास्ता नहीं मिलेगा। धुत्! कहते हैं, कागज जलाने दो,—धुत्!”

“पर अपने पास कारतूस भी कितने हैं? मेरी पिस्तौल भरी है, आपकी भी है। और दो-तीन पड़े होंगे। पर फ़ायर करने के बाद भीड़ अगर बिगड़ी तो फिर कारतूस भरने का वक्त भी नहीं मिलेगा।”—इन्स्पेक्टर गुलाबराव ने कहा।

“पर आपके पास इतने ही कारतूस क्यों? और भी तो

होने चाहिएँ ।”

“जी हाँ, घर में एक और ‘बेल्ट’ रखा है !”

“फिर उसे मैंगा लीजिए ! एक-दो फ़ायर के बाद ही जुलूस तितर-बितर हो जायगा । मुझे पूरा भरोसा है कि दुबारा कारतूस भरने की जरूरत नहीं होगी । हिन्दू मुसलमानों के दंगों में, और पिछले आन्दोलन में कई बार मैं ऐसी परिस्थिति का मुक़ाबिला कर चुका हूँ । और कोई होता तो अब तक डी० एस० पी० बन गया होता...” सर्किल साहब ने कहा ।

“साहब, इस तरीके से तो खतरा है, यह मेरी अदना राय है । मेरा फ़र्ज़ है, मैं आपको मुकामी हालत से वाकिफ़ कर दूँ, आगाह भी कर दूँ । फिर आप जो हुक़म दें ।”

“अरे, कहाँ का खतरा वतरा लगाये बैठे हो ? देखो तो मिनटों में ‘सिचुएशन’ को काबू में लाता हूँ । हाँ, मैजिस्ट्रेट साहब को बुलाने के लिए सिपाही भेज दो ।”

“सो तो मैंने भेज दिया है । पर डाक बंगला नाले के उस पार है, नाला भरा है, मैजिस्ट्रेट साहब को आने में कुछ देर लगेगी । और जुलूस यह फाटक तक पहुँच गया—”

नारों की बुलन्दगी में अब कुछ कहना-सुनना मुश्किल था । जुलूस थाने के फाटक तक आकर थाने के चारों तरफ़ फैलने लगा । अब नये नारे लग रहे थे—

“जेल के फाटक तोड़ दो !

हमारे नेता छोड़ दो !!

जेल के फाटक तोड़ दो !

हमारे नेता छोड़ दो !!”

अनन्त गोपाल शेवडे

और इसी की देखा-देखी नारा लगा—

“थाने के फाटक तोड़ दो !

सरकारी कागज जला दो !!”

बस इसी नारे का जोर अब चलने लगा वही उनकी युद्ध की
हुंकार हो गयी, वही लक्ष्य—

“थाने के फाटक तोड़ दो !

सरकारी कागज जला दो !!”

इस तरह नारे लग ही रहे थे कि सर्किल-इन्स्पेक्टर लाला
बाबूराम ने गरज कर कहा—

“खबरदार, अगर फाटक के भीतर कदम रखा तो गोली
चला दूँगा ।”

लाला बाबूराम की आवाज गोश्त-बकरे पर पली आवाज
थी । ऐसी गूँज उठी कि चार-पाँच सेकण्ड के लिए सचमुच
सन्नाटा छा गया । ऐसा लगा जैसे जुलूस इस आगाही के लिए
तैयार न था । पर फौरन मुखिया रामनाथ और सोमा दत्तों ने
अपने हाथ के झुंडे ऊँचे फहरा कर आवाज दी—

“थाने के फाटक तोड़ दो !

सरकारी कागज जला दो !!”

इतना कहने भर की देर थी कि सारे जुलूस ने गला फाड़ कर
उस नारे को दुहराया और पीछे से भोला पहलवान के अखाड़े
के लोगों ने जुलूस को ऐसा ठेला दिया कि थाने का फाटक
सचमुच चरमरा कर टूट पड़ा और इस धका-पेल में जनता थाने
के अहाते में धँस गयी । फाटक के टूटते ही जुलूस ने सफलता
के आनन्द में फिर एक बार जयघोष किया —

“थाने के फाटक टूट गये !

थाने के फाटक टूट गये !!”

भीड़ को इस भयंकर आक्रमणकारी रुख में देख कर सर्किल-इन्स्पेक्टर लाला बाबूराम ने पिस्तौल निकाला और भीड़ पर सीधे फ़ायर किया—दन्, दन् । एक गोली रामदास के जॉघ में लगी और दूसरी लगी सरस्वती बाई के पेट में । सो दोनों तड़ से नीचे गिर पड़े । रामदास तो एकदम बेहोश हो गया और सरस्वती बाई ने “हाय राम !” कह कर फ़ौरन प्राण छोड़ दिये ।

इस गोलाबारी के कारण भीड़ के एक हिस्से में खबराहट पैदा हो गयी और कुछ लोग भागने को उद्यत हुए । पर जैसे पता चला कि सरस्वती बाई को गोली लगी तो लियों ने भागने वालों को ललकार कर कहा—

“भागते कहाँ हो ? औरत को गोली लग गयी और तुम भागते हो ! नामर्द कहाँ के—”

इतनी बात सुन कर भागने वालों के पैर वहीं के-वहीं ठिठक गये । वे फिर लौट आये और थाने की तरफ़ बढ़ने लगे ।

सर्किल साहब ने हुक्म दिया—“फ़ायर करो थानेदार साहब ! देखते क्या हो ? नहीं तो मुझे पिस्तौल दो और तुम मेरी पिस्तौल भरों ।”

गुलाबराव ने फ़ौरन अपनी पिस्तौल सर्किल साहब को दे दी और वह उनकी पिस्तौल भरने लगा । सर्किल साहब ने फिर दो फ़ायर किये—

दन्-दन् !!

दो लाशें और गिर पड़ीं । लाला बाबूराम का निशाना अचूक था और वह डराने के लिए नहीं जान लेने के लिए फायर कर रहा था ।

इनमें से एक गोली भोलानाथ के शरीर को चूमती हुई निकल गयी और उसके अखाड़े के एक स्वयं-सेवक के कन्धे पर जा लगी जो धड़ाम से नीचे लुढ़क गया ।

भोलानाथ ने देखा कि सर्किल साहब की पिस्तौल खाली है—शेर की तरह लपका और लाला बाबूराम का गला इस तरह दबोचा कि वह धरघराने लगा । उसकी देखा-देखी उसके दल के और लोग बड़े और गुलाबराव के हाथ से पिस्तौल छीन ली । उसके कारतूस जमीन पर बिखर गये, और उन्हें एक आदमी ने हथिया लिया । इतने पर भी सर्किल साहब ने चिल्ला कर कहा—

“थानेदार साहब, घर से कारतूस मँगाओ और फायर करो, नहीं तो जान जाती है ।”

गुलाबराव ने पास ही अपने क्वार्टर में एक जवान को दौड़ाया—कारतूस लाने के लिए । पर वह गया तो गया । उसे कारतूस का बेल्ट नहीं मिला । क्योंकि वह पहले ही जानकी बाई ने कुएँ में डाल दिया था । वह खुद भी परिस्थिति से इतना डर गया था कि थरथर काँप रहा था ।

जब भोलानाथ को मालूम हुआ कि थाने में कारतूस नहीं हैं और पिस्तौलें बेकाम हो गयी तो क्या पूछना ? उसने भीड़ को हुक्म दिया—“चलो देखते क्या हो ? थाने पर कब्जा करो । इनकी गोली खत्म हो गयी ।”

इतना कहने भर की देर थी कि जनता ने थाने पर धावा

बोल दिया। गुलाबराव से वहीं उतरवायी तो उसने चुपके से दे दी और अन्दर की गंजी और लंगोट पहने खड़ा हो गया। दो-तीन पुलिस के जवानों ने भी चुपचाप दे दी। पर लाला बाबूराम और जमादार मुन्नु खाँ ने प्रतिकार किया और उनमें तथा भोलानाथ के आदमियों में हाथापाई होने लगी। भोलानाथ ने हुक्म दिया कि इन्हें खम्भे से बाँध दो। एक खम्भे से लाला बाबूराम को बाँधा और दूसरे से मुन्नु खाँ को। हवालात में सारे सरकारी कागजात इकट्ठे किये, मेज़-कुर्सी, कलम-दावात सब की होली बनायी, उसमें टूटे फाटक की, और आस-पास पड़ी लकड़ियाँ ढाल दीं। मिट्टी के तेल के पीपे लाये और थाने की होली में तथा उसकी छत पर, दरवाजों पर, दीवारों पर फैला कर आग लगा दी। मुखिया रामनाथ और सोमा दर्जी ने बहुत मना किया, बहुत रोका, पर किसी ने नहीं सुना। भीड़ का नेतृत्व अब भोलानाथ और उसके लाठीधारी अखादियों ने हथिया लिया था। देखते-देखते थाने की होली जलने लगी और उसकी लपटें आसमान से बातें करने लगीं। उन्हीं में सर्किल-इन्स्पेक्टर लाला बाबूराम और बुधरी थाने के जमादार मुंशी मुन्नु खाँ की भी होली हो गयी। पुलिस ने जनता की तीन जाने लीं जिनमें एक स्त्री थी। जनता ने उसका बदला अंग्रेजी हुकूमत के दो कर्मचारियों को ज़िन्दा जला कर लिया। उनसे कोई कहने-सुनने वाला नहीं था, किसी की सुनने को वे तैयार नहीं थे। ऐसा लगता था कि पुलिस और जनता दोनों, नियति के हाथ की कठ-पुतली बन कर कोई प्रचंड, भयंकर विभीषिका का खेल रचा रहे थे। किसी का किसी पर कोई काबू नहीं था। कौन क्या कर

अनन्त गोपाल शेवडे

रहा है, यह वह स्वयं नहीं जानता था। किसी अनियन्त्रित उद्दाम भावना के आवेग में आकर वे, बे-अख्तियार, जो कर रहे थे, वह करते जा रहे थे। इसका क्या अर्थ है, क्या प्रयोजन है, यह कोई नहीं जानता था।

और घुघरी थाने की छोटी सी इमारत धू-धू करके आग में जल रही थी। और उसमें जल रहे थे दो आदमी जिन्होंने अंग्रेजी हुकूमत का नमक खा कर, अपने पैट के लिए, उसको कायम रखने में किसी बात की कसर नहीं रखी थी, और इस कार्य में किसी भी गलीज़-से-गलीज़ और नीच-से-नीच काम से कभी मुँह नहीं मोड़ा था।



घुघरी थाने के जलने की तथा सर्किल इन्स्पेक्टर बाबूराम और मुन्शी मुन्नु खौं को सिन्दा जला देने की घटना ने राजधानी को हिला दिया। गवर्नर की कोठी पर चीफ़ सेक्रेटरी, आई० जी० पुलिस और दो-एक बड़े हाकिमों की बैठक हुई। वे सब-के-सब अंग्रेज थे। उनमें से एक ही हिन्दी-स्तानी था। सभा में इस घटना की छानबीन की गयी और उसके राजनैतिक पहलू पर बड़ी गम्भीरता पूर्वक विचार किया गया। ब्रिटिश शासन के लिए घुघरी एक चैलेंज है। यों भी तो अगस्त क्रांति की अद्भुत और अपूर्व उथल-पुथल में, भारतीय अफसरों की वफ़ादारी पर बड़ा बोझ पड़ रहा है। कोई भी सरकारी कर्मचारी ऐसा न होगा जिसका नज़दीक या दूर का रिश्तेदार आन्दोलन से सम्बन्ध न रखता हो। गांधी का शोर तो घर-घर में है। सी० आई० डी० की रिपोर्टें कहती हैं कि बड़े-बड़े

सरकारी अधिकारियों के घरों में औरतें गांधी जी के फ़ोटो की पूजा करती हैं। उधर यूरोप में खूँखार लड़ाई जारी है, इंग्लैण्ड पर ज़बर्दस्ती बमबारी हो रही है, अंग्रेज़ अफ़सरों के रिश्तेदार, लड़के, लड़कियाँ, लड़ाई में काम कर रहे हैं। उनके दिल और दिमाग़ पर भी भारी बोझ है। और इधर भारतीय अफ़सरों पर भी दूसरी तरह का बोझ है। ऐसी हालत में शासन की धाक, उन में उसकी श्रद्धा, तथा उनका नैतिक बल बना रहना निहायत जरूरी है। यदि भारतीय अफ़सरों को यह डर पैदा हो जाय कि इस बलबे में उनकी हालत सर्किल-इन्स्पेक्टर बाबूराम की तरह हो सकती है, तो हुकूमत का काम कैसे चलेगा। नहीं, घुघरी का बदला भयंकर सख्ती से लेना होगा। जब तक घुघरी की कमर नहीं तोड़ दी जाती तब तक औरों को सबक नहीं मिलेगा। अब इस सूबे में घुघरी की पुनरावृत्ति नहीं होगी। यह सरकार को इज्जत-आबरू और प्रेस्टीज की बात है—पालिसी की बात है। और उसी सभा में धड़ाधड़ दो-चार बड़े-बड़े निर्णय ले लिये गये और उन पर फ़ौरन अमल करने का हुकम हुआ।

पहला हुकम हुआ कि लाला बाबूराम की बेवा औरत को पाँच हजार का और मुन्नू ख़ाँ की औरत को दो हजार का इनाम दिया जाय। इनाम की रकम खुद डी० आई० जी० टायगर दे आयँ, यह तजबीज़ हुई।

पुलिस रिपोर्टों से पता चला कि घुघरी के अग्नि-काण्ड के चंद घंटे पहले अभय कुमार नाम का नौजवान वहाँ मौजूद था। वही बम्बई से परचे लाया था और अब तक पुलिस को

चमका दे कर हर जगह घूमता फिर रहा है। उसकी गिरफ्तारी फौरन की जाय और उसकी तस्वीर के पोस्टर सब जगह चिपका कर ऐलान कर दिया जाय कि जो उसे सरकार के सामने जिन्दा या मृत पेश करेगा, उसे दस हजार का नक़द इनाम दिया जायगा। उस पर इलज़ाम है कि खून कराने की गर्ज से उसने घुघरी की अपढ़ और अज्ञानी जनता को भड़काया। लिहाज़ा उस पर कतल और जनता को उभाड़ने की साजिश का मामला चलेगा।

इसके अतिरिक्त डी० आई० ज़ो० और ज़िला मजिस्ट्रेट के साथ मिलिटरी की एक टुकड़ी घुघरी में भेजी गयी कि वह घुघरी की जनता को उसके राजद्रोह के लिए सबक सिखाये।

घुघरी काण्ड से प्रांतीय शासन के सत्ता केन्द्र को जैसे आग लग गयी। वही आग उसने घुघरी पर बरसाने का निश्चय किया। खून का जवाब खून से, आग का जवाब आग से, व्यक्तिगत हिंसा का जवाब शासन की संगठित हिंसा से देने की परम्परा हमेशा ही अंग्रेज़ी राज में रही है। कलकत्ते की काल कोठरी के वक्त वही हुआ। १८५७ में भी वही हुआ। सन् १९४९ में भला और कुछ क्यों होने चला ?

जब फौजी दस्ते घुघरी पहुँचे तब वह शांत हो चुकी थी । सुबह के भयंकर अग्नि-काण्ड की प्रतिक्रिया के कारण उसकी गलियाँ, बाज़ार, स्कूल सब सूने पड़े थे । गाँव वालों ने किसी तरह सरस्वती बाई और गोली से मारे गये दो अन्य नौजवानों का दाह-संस्कार किया और सब अपने-अपने घरों में जा कर बैठ गये । सारा गाँव जैसे मातम मना रहा हो । ऐसा लगता था जैसे नर-नारी ही क्या, गाँव की गाय-भैसे, कुत्ते और पशु भी रो रहे हैं । हवा भी, जो सुबह सायँ-सायँ करती चल रही थी, थाने को तथा सरस्वती बाई आदि शहीदों की चिताओं को भस्म कर अब शांत हो गयी थी । ऐसी भयंकर शांति थी कि जिसे देख कर डर लगता था । चौक में हनुमान मन्दिर के पास का पीपल का वृक्ष भी खड़ा था, निस्तब्ध और मौन । जैसे उसको भी इतना गहरा दुख था, इतना मूक और

कातर कि उसे काठ ही मार गया हो। वह न हिलता था, न डुलता था।

घरों में कानाफूसी में बात होती थी। कुछ लोग कहने लगे कि मुखिया रामनाथ, सोमा दर्जी, भोलानाथ पहलवान और वे सब लोग जिन पर गुनाह लग सकता था, पुलिस के आने से पहले ही जंगलों में भाग जायँ, नहीं तो उनकी खैर नहीं। सरकार का बदला बड़ा क्रूर और भयंकर होगा—उससे बचने का और कोई उपाय नहीं है।

पर उन्हें यह बात नहीं रुची। बोले, कायर बन कर क्यों भाग जायँ? जो किया है, सो कुबूल करेंगे। और जो सजा मिलेगी उसे मज्जे में भोगेंगे। जो किया है सो स्वार्थ के लिए तो नहीं किया है। गलत हो या सही, किया तो है देश के लिए ही। सो देश के लिए मर-मिटने की घड़ी तो आज ही आन पड़ी है। इस में भागने या मुँह छिपाने की क्या बात है? जो कुछ होना हो, हमारे सामने ही हो जाय। हम भागें क्यों?

मिलिटरी ने घुघरी पहुँचते ही आध घंटे के भीतर सारे गाँव क आस-पास घेरा डाल दिया। गाँव को आने-जाने के सारे रास्ते रोक दिये। थाने के पास ही एक बड़ा तम्बू ठोक कर वहाँ डी० आई० जी० साहब ने अपना आसन जमाया, और फौज के जवानों को गाँव के भीतर छोड़ दिया।

फौजी आदमी संगीनें लेकर एक-एक मकान में घुसे और वहाँ के मर्दों को गिरफ्तार कर लाये। जिस किसी ने जरा भी प्रतिकार किया कि संगीन भोंक दी। बहता हुआ खून देख कर फिर औरों का प्रतिकार कम हो जाता। लम्बे-लम्बे बूटो के

साथ वे घरों में घुस जाते, चौका हो या देन-गृह, कहीं नहीं रुकते। एक-एक कमरे को तलाशी लेते, सन्दूक, मिट्टी को नोदें, खलियान, सब जगह की तलाशी ली। जहाँ जो माल जिसके हाथ लगा, उठा लाये। कितने रुपये, कितने गहने गये, इसका कोई लेखा-जोखा नहीं था। मुँह से गाली-गलौज तो चलती ही रहती थी। स्त्रियाँ भी इससे-न्ही बच पाती थी। नौजवानों का खून खौल जाता। भोलानाथ ने कहा—“देख बे सिपाही के बच्चे! जबान सम्हाल कर बोल। आखिर तू फौसी ही देगा न। पर उसके पहले तेरी गत बना के नहीं छोड़ी तो बजरंग बली का चेला नहीं, हाँ!”

सिपाही कुछ सहम तो गया, पर अपने चार साथियों की संगीनों के बल पर उसने भोलानाथ को घेर लिया और उसके दोनों हाथों में हथकड़ियाँ और पैरों में बेडियाँ डाल दीं। वह जब चलते-चलते लड़खड़ाने लगता तो पीछे से जूते की ठोकर मार देते। भोलानाथ की आँखें इस अपमान से खून उगलने लगतीं। पर असीम पाशविक बल के सामने उसको भी झुकना पड़ा। यही बल तो वह बेचारा पहचानता था। और उसकी धारणा थी कि इस बल के आगे किसी का चारा नहीं है।

उस दिन सोलह वर्ष से ऊपर और ४० वर्ष के भीतर के प्रायः सभी पुरुष एक-एक करके गिरफ्तार कर लिये गये। उनकी संख्या १६२ हो गयी। सब को गाँव के काँजी-हाउस में बन्द कर दिया गया और आसपास संगीनों का पहरा बिठा दिया गया।

जब गिरफ्तारियाँ पूरी हो चुकीं और सब शक-शुदा आदमी

काँजी हाउस में इकट्ठे हो गये तो उन सबको दो-दो की कतारों में, दोनों ओर संगीनों के बीच में बाहर निकाला गया। उनसे मिट्टी खुदवायी, ईंटें बनवायीं और संगीनों की देख-रेख में ही उनसे फिर वह थाना बनवाया गया। जिस थाने को उन्होंने अपने ही हाथों जलाया था, उसे फिर से बनाने में हाथ आना-कानी करते तो संगीन की मूठें, जूतों की ठोकें या बैटन की मार खानी पड़ती थी। सब लोग एक हाथ से आँसू पोंछते जाते थे और दूसरे से गारा लगाते जाते थे। काम में कोई आराम नहीं, विराम नहीं। एकाध घंटे को रोटी-चटनी खाने के लिए काम बन्द कर दिया जाता। रोटी-चटनी का इन्तजाम भी गाँवों की दूकानों और खलिहानों के गल्ले को श्रुत कर के ही हुआ।

इस तरह तीन दिन के भीतर ही घुघरी थाने की इमारत फिर खड़ी हो गयी। उसके बाद गाँव की सारी औरतों तथा बच्चे हुए मर्दों का एक जुलूम निकलवाया गया। देख-रेख फिर उन्हीं संगीनों की। उसकी पहली कतार के आदमियों के हाथ में यूनिजन जैक दिया गया। वह जुलूम इतना शांत, इतना मौन, इतना मायूस था, जैसे मुर्दे चल रहे हों। जो आवाज आती थी, वह सिर्फ़ थी सिपाहियों के बूटों की, और कभी जब उनकी संगीनें आपस में टकरा जातीं तो उनकी झकार की।

जुलूस में मुख्यतः स्त्रियाँ थीं। उनके चेहरें उदास थे। उनके दिल बैठे थे। हाथ पैर मशीन की तरह काम कर रहे थे।

जब जुलूस थाने पर पहुँचा तो काँजी हाउस का फाटक खोल कर उसमें बन्द लोगों को भी उस जुलूस में शामिल कर लिया गया। वे लोग सब के आगे खड़े कर दिये गये।

मुखिया रामनाथ को, जो तीन दिन के अथक परिश्रम और दुख और अपमान के कारण हड्डी-पसली का ढाँचा मात्र रह गया था, एक पुलिस आफ़सर ने ललकार कर आगे बुलाया। रामनाथ इन तीन दिनों में ऐसा सूख गया, ऐसा सूख गया कि उसके शरीर से एक बूँद खून निकालने के लिए एक इंच धाव करना पड़े। उसकी हालत देख कर तो उसकी पत्नी रामेश्वरी, जो जुलूस में थी, फफ़क-फफ़क कर रोने लगी। उसकी देखा-देखी और स्त्रियाँ भी रोने लगीं।

डी० आई० जी० साहब ने पास के हिन्दुस्तानी आफ़सर को इशारा किया। उसने रामनाथ से पूछा—

“क्या तेरा ही नाम रामनाथ है ?”

“हाँ !”

“उस दिन जुलूस की मुखियागिरी तूने ही की थी ?”

“हाँ !”

“थाने पर तिरंगा झंडा तूने ही चढ़ाया था ?”

“हाँ !”

“तो ले, आज अपने ही हाथों यह सरकारी झंडा इस थाने पर चढ़ा।”

रामनाथ ठिठका—उसका हाथ आगे नहीं बढ़ा। देखते-देखते उसके गाल पर ऐसी सख्त चपत पड़ी कि गाल लाल हो गया और उसका सिर चकरा गया। बड़ी मुश्किल से वह अपने को सम्हाल सका।

“चल पकड़ यह झंडा !”—उस आफ़सर ने गरज कर कहा, “देर मत कर !”

ज्वालामुखी

रामनाथ एकदम सुन्न हो गया था, उसकी समझ-बूझ तक जाती रही। वह क्या कर रहा है, क्यों कर रहा है, इसका उसे भान नहीं रहा। भंडे की रस्ती को वह थामे रहा। पीछे से एक घूँसा पड़ा तो रस्ती खिंच गयी। भंडा आधा चढ़ा कि पीछे से फिर एक ठोकर लगी। भंडा पूरा चढ़ गया। पर हवा नहीं थी इसलिए वह फड़फड़ाया नहीं। रामनाथ की आँखें डबडबा आयीं। उसके शरीर में खून ही नहीं बचा था। इसलिए आँखों में वह नहीं उतरा, सिर्फ पानी ही बहा। उसने भंडे की तरफ देखा मात्र, और वह ग़र ख़ा कर धड़ाम से नीचे गिर पड़ा। पत्थर से टकराने के कारण उसका सर फट गया।

जुलूस में से अकस्मात् एक स्त्री की करुण चीख सुनायी दी—
“हाय राम !”



६ अगस्त के बाद पहले सप्ताह-दो-सप्ताह तो सरकार के पैर लड़खड़ा गये थे। जनता के विद्रोह का पूरा-पूरा अन्दाज़ लेने में कुछ समय लगा। वह विस्फोट था ही ऐसा अपूर्व और अनहोना कि उसका अन्दाज़ लगाना सचमुच कठिन था। तूफ़ान का जोर कितना होगा, यह भी पहले से कोई बता सकता है ? पर इसके बाद ही सरकार की संगठित हिंसा ने आन्दोलन को सख्ती और निर्ममता से दबा दिया। जेलें ठसा-ठस भरी थीं। बाहर भी श्मशान जैसी शांति छाने लगी। क्रांति के क्रियाशील कार्यकर्ता तो सब बन्द कर दिये गये थे। उनसे सहानुभूति रखने वाले अब तटस्थ हो गये थे। और जो पहले से तटस्थ थे वे सरकार की तरफ़ झुक गये थे। लड़ाई के काम में मदद करना, बड़े-बड़े ठेके लेना, उससे फ़ायदा उठाना, सरकारी आफ़सरों की खुशामद करके उनकी शाबाशी लेना, यही उनका

काम रह गया था, ताकि दूर से भी कोई उन पर यह शक न कर सके कि आन्दोलन के साथ उनकी कुछ सहानुभूति है। यहाँ तक कि सन् बीस-इक्कीस से जो लोग सफ़ेद टोपी पहनते थे, उन्होंने भी रंगरेज को अठख्ती देकर उसे काला रंगवा लिया। सबसे ज्यादा नैतिक पतन तो व्यवसायी और रोज़गार-धन्वे वालों में हुआ। वे निन्यानवे के फेर में इस तरह पड़े कि गांधी, देश आदि की याद उन्हें अड़चन पैदा करने लगी। फ़ौज की भरती घड़ाघड़ होती जा रही थी। मुद्रा के अत्यधिक चलन के कारण कीमतें बढ़ गयीं। ग़रीब और मध्य वर्ग को दो वक्त का भोजन जुटाने में लेने-के-देने पड़ने लगे, सो सब-के-सब लड़ाई की नौकरियों की तरफ़ बेतहाशा भागने लगे। लड़ाई के कारण यूरुप और एबिसीनिया में तो खून की नदियाँ बह रही थी पर भारत में चाँदी लुट रही थी। उस सफ़ेद रंग की चमचमाती धातु ने काली आत्मा वाले निर्धन, निर्बल, प्रतिकार-हीन भारतीय नागरिकों के मन को मोह लिया। और ब्रिटिश सरकार ने भारत और लन्दन की पार्लियामेंट में घोषणा कर दी कि गांधी और अन्य नेताओं के आन्दोलन से युद्ध की सामग्री जुटाने में तथा उसके संचालन में रत्ती भर फ़र्क नहीं पड़ा है। एक गणित लगा कर यह बताया गया कि चालीस करोड़ की जनता में १० करोड़ मुसलमान, १३ करोड़ भारतीय रियासती लोग, ११-१२ करोड़ दलित वर्ग तथा ३० करोड़ हिन्दुओं की जमात हिन्दू-सभा, गांधी के साथ नहीं है। सिर्फ़ जोड़ लगा कर यह नहीं बताया गया कि इस तरह ४० करोड़ जनता में से ६४ करोड़ गांधी के प्रभाव के दायरे से एकदम बाहर कैसे रह गये ? गणित शास्त्र

की तो क्या पर मनुष्य की बलिहारी है जो अत्यन्त अचूक शास्त्र की पीठ पर चढ़ कर भी अपने दिल की बात कह लेता है, कर लेता है ।

पर सत्य यह था कि गांधी जी और राष्ट्रीय नेताओं के जेल में बन्द होने के कारण भारत की आत्मा दुखी थी, अपमानित अनुभव कर रही थी । भारत में इस समय दो शक्तियाँ काम कर रही थीं । एक थी विदेशी सरकार की, और दूसरी थी राष्ट्रीय भारत की । एक सुसंगठित थी, सत्तारूढ़ थी, इसलिए वह यह वातावरण पैदा कर सकती थी कि वही सब कुछ है, उसके बाहर जो है वह कुछ नहीं है । और दूसरी थी बनवास में; लांछन, प्रवचना और पीड़ा ही उसके संगी-साथी थे और सारे भारत की आत्मा, उसका अन्तःकरण उसके साथ था । भगवान रामचन्द्र सिंहासन पर बैठते-बैठते बनवास चले गये, और राज्य मुकुट की जगह काँटों का ताज उनके सिर पर चढ़ा, पर इससे उनका रामत्व नष्ट नहीं हो पाया । राम तो राम ही बने रहे, अयोध्या में हो या पंचवटी में । उसी तरह गांधी जी जेल में थे पर वे जनता के हृदय में वास करते थे । हाँ जनता के शरीर ब्रिटिश शासन की चौखट में बैठ कर यन्त्रवत् काम करते रहते थे, पर उनके दिलों का स्वामी था वह लंगोटिया फुकीर जो आगाखान महल की चार-दिवारी में बन्दी था । भगवान कृष्ण से लेकर तो आज तक बन्दियों की परम्परा बड़ी उज्ज्वल रही है । लोगों ने जिन्हें सूली पर चढ़ाया और यंत्रणाएँ दीं, उन्हीं की बाद में पूजा की, उन पर अर्घ्य चढ़ाया । कालचक्र की इस विराट लीला को समझने वाले

ज्वालामुखी

जानते थे कि अकेले गांधी ने भी यदि ब्रिटिश शासन को हट जाने का आदेश दिया है तो आज नहीं तो कल हटना ही होगा। उसकी तमाम फ़ौजें, संगीनें, मशीनगनें उसे बचा नहीं सकेंगी।

पर अधिकांश के दिलों में मायूसी थी, उदासीनता थी। चौमासे के त्यौहार सूते जाते, क्योंकि ऐसा कोई परिवार नहीं था, जिसका कोई पुत्र या तो जेल या युद्ध क्षेत्र में न गया हो। दोनों की प्रेरणाएँ बिलकुल अलग थीं, विपरीत थीं, पर घर की छियों और बच्चों को उनके वियोग की तीव्रता एक-सी लगती थी। दीवाली में दीप नहीं जलते, मिठाई नहीं बनती। सारे देश में उदासी छाई थी।

ऐसे वातावरण में अभय कुमार ने कहा—“दीनबन्धु, अब बाहर रहने से फ़ायदा ? जो होना था सो तो हो गया। राष्ट्र को जो तेज दिखाना था सो बता दिया। पर अब तो सारा वातावरण हाँ बदल गया है। इसलिए अब गिरफ़्तारी ढालने से फ़ायदा ? और जिस तरह पुलिस का जाल मेरे आसपास फैल रहा है, उससे लगता है यह ज्यादा दिन टल भी नहीं सकेगी।”

“सो तो ठीक है बाबू ! पर जान बूझ कर ओखली में सिर देने से फ़ायदा ? आप अभी बाहर हैं, यही बात आन्दोलन के कार्यकर्ताओं को सम्हाले हुए है। सब अपनी-अपनी जगह दुबके बैठे हैं और मौके की तलाश में हैं कि कब फिर उभड़ पड़ें। पूरब में लड़ाई संगीन होती जा रही है, सुभाष-बाबू की ओर सब की नज़र लगी है। वे जर्मनी या जापान

में हैं। उनकी मुक्ति फ़ौज के हमले के साथ-ही-साथ देश में भी तो कुछ धड़ाका करना होगा।”—दीनबन्धु ने कहा।

दोनों बी० एन० रेलवे की छोटी लाईन के एक छोटे स्टेशन पर बैठे गाड़ी की राह देख रहे थे। प्रातःकाल के चार-साढ़े चार बजे थे। अब भी अँधेरा था। दीनबन्धु की तो पहले ही से डाढ़ी थी। अब अभय कुमार ने भी बढ़ा ली थी। दोनों ने गेरुए वस्त्र पहन लिये थे, इसलिए वे साधु जैसे लगते थे। दीनबन्धु के हाथ में चिमटा था और अभय के हाथ में तूमा। इसी के सहारे वे अब तक पुलिस के पंजे से बच निकले थे। पर प्रतीक्षण उन्हें यह भान हो रहा था कि यह पंजा अब संकरा होता हुआ उनके निकट आता जा रहा है, और शायद उस में से अछूते रहना अब सिर्फ़ चंद दिनों का ही खेल है। क्या वह पंजा उनके गले की फाँसी हो कर ही दम लेगा ?

फाँसी का ध्यान आते ही अभय कुमार के रोंगटे खड़े हो गये और न जाने क्यों उसने एक अजीब थकावट महसूस की, ऐसी थकावट जो उसके जीवन में कभी न आयी थी।

पौ फट रही थी और रात्रि का अधकार धीरे-धीरे अपनी काली चादर समेट रहा था। मुसाफ़िरखाने में अलग बत्ती नहीं थी इसलिए वह अब तक अधकार में ही डूबा था, पर अब वह गहन अँधेरा भी फ़ीका हो रहा था, गल रहा था। प्रकाश की किरणें शनैः-शनैः अपनी माया फैला रही थीं और उन्हीं में अकस्मात् अभय कुमार की नज़र दीवाल पर पड़ी—

“वह देखा दीनबन्धु !”

अभय कुमार ने जिधर इशारा किया गया था, दीन-बन्धु ने उधर देखा, तो वहाँ एक विशाल पोस्टर दिखायी दिया जिसके बीचों-बीच अभय कुमार का एक बड़ा चित्र था। उस पर लिखा था—

‘इनाम ! दस हजार का नकद इनाम !!

गवर्नमेंट इस पोस्टर के द्वारा ऐलान कर रही है कि युनिवर्सिटी का रिसर्च-स्कालर अभय कुमार एक जबर्दस्त बागी है जो पुलिस को चकमा दे कर मुँह छिपाये भाग रहा है। उस पर जनता को भड़काने और उसे राजद्रोह तथा खून-खराबी के कामों के लिए प्रेरित करने का इल्जाम है। गवर्नमेंट के पास इस बात का सबूत है कि घुघरी के अग्नि-कांड और हत्याकांड के लिए वही जिम्मेदार है। उस पर खून, खून के काम में भड़काना और मदद करना, आग लगाना आदि संगीन इल्जाम हैं। गिरफ्तार होते ही उस पर फौरन मुकदमा दायर किया जायगा। कानून और सुरक्षा के लिए वह एक जबर्दस्त खतरा है।

लिहाजा सरकार यह घोषणा करती है कि जो शख्स उसे ज़िन्दा या मृत हालत में सरकार के हवाले करेगा उसे दस हजार रुपये का नकद इनाम दिया जायगा।

सरकार यह भी ऐलान करती है कि चूँकि अभय कुमार कानून की नज़रों में अज्ञात गुनहगार है, आम पब्लिक का फर्ज है कि उसे रोटी-पानी की या दीगर किसी भी प्रकार की कोई मदद न दे। यह भी एक जुर्म है और जो यह जुर्म करेंगे

अनन्त गोपाल शेवडे

वे भी सजा पाने के हकदार होंगे ।’

(सरकारी पुलिस मुहकमे से शाया किया गया)

दीनबन्धु ने इस पोस्टर का एक-एक शब्द पढ़ा और दुबारा पढ़ा । वह सुन्न हो गया । उसकी आँखें भर आयीं और भावी की आशंका से उसका दिल काँप उठा ।

अभय कुमार ने कहा —“देखो तो दीनबन्धु, वह दूकान खुली है या नहीं, चल कर ज़रा चाय पी लें—थोड़ी थकावट तो दूर होगी ।”



उस पोस्टर को देखने के बाद तो अब रेल या मोटर का सफ़र करना भी खतरनाक था। चूँकि वे अब घूमते-फिरते छिंदवाड़ा जिले की सतपुड़ा पर्वत श्रेणियों में आ गये थे, और तामिया के नीचे पाताल-पानी के खड्ड में छिपे थे। अभय कुमार ने कहा—

“दीनबन्धु, अब अपना स्वतन्त्र जीवन समाप्त होने में देर नहीं है। गिरफ्तार होने के बाद एक बार जेल में ठूस दिये गये तो जाने ये पहाड़, ये स्वच्छन्द गाने वाले झरने, यह क्षितिज फिर कभी दिख सकेगा या नहीं। इच्छा होती है कि उस के पहले महादेव के दर्शन कर लूँ। बस वहाँ यदि दो-चार दिन भी शांति से रहने को मिल गया तो मुझे अच्छा लगेगा। उन्हीं से कह आऊँगा कि मेरे पीछे विजया और माँ का रक्षण करें।”

“बात बुरी नहीं है। यहाँ से मुश्किल से ३०-३५ मील का

फ़ासला होगा। जंगल की पगडण्डी से ही यात्रियों के दल के साथ चले चलेंगे। किसी को पता भी नहीं लगेगा।” दीनबन्धु ने कहा।

अभय कुमार कुछ देर के लिए गम्भीर हो गया और बोला—
“क्या यह सम्भव है कि जेल में बन्द होने के पहले एक बार विजया को देख सकूँ ? उसकी बड़ी याद आ रही है दीनबन्धु ! इस पोस्टर की बात तो उसने भी सुनी होगी। भगवान जाने उसकी क्या हालत होगी।”

“आपके घर पर तो कड़ा पहरा होगा बाबू ! वहाँ गये कि गिरफ्तारी से भी नहीं बचोगे और घर के लोगों को नहीं देख पाओगे सो अलग। ऐसा खतरा उठाने से फ़ायदा ?”

“तुम ठीक ही कहते हो दीनबन्धु ! मन में एक कमजोरी आ गयी थी सो तुम से कह दी। पर नहीं, पहले चलो महादेव ही चले। बाद में बचे तो देखा जायगा।”

महादेव पर्वत पंचमढ़ी से लगा हुआ है और शंकर की पिंडी के आकार का युग-युगान्तर से वहाँ बैठा है। पंचमढ़ी से लगभग सात मील के अंतर पर पर्वतमालाओं से घिरी हुई एक सुन्दर गुफा में महादेव जी विराजमान हैं। उस गुफा में एक शीतल जल का झरना है जिसमें चल कर अँधेरे में पिंडी के पास जाना होता है। दर्शन के पहले लोग उस झरने के चैतन्यदायक जल में डुबकी लगाते हैं। वन-जातियों के लिए तो वह स्थान नितान्त पवित्र है ही—वे उसे बड़ा महादेव कहते हैं। पर सारे प्रदेश से दो सौ मील के अंतर से लोग पैदल चल कर महादेव की यात्रा करने आते हैं। महाशिवरात्रि को वहाँ एक बहुत बड़ा

मेला लगता है। स्थान बहुत ही शांत, एकांत और रमणीय है।

दीनबन्धु और अभय कुमार, दोनों ही यात्रियों के एक दल में शामिल हो गये और महादेव की तरफ चल पड़े। यात्रा का पैदल मार्ग बहुत ही सुन्दर है। आधी वर्षा ऋतु समाप्त हो चुकी थी इसलिए सतपुड़ा के जंगल लहलहा रहे थे। भरने, चट्टानों और पथरीली जमीन में कूदते-फोंदते क्रीड़ा करते चले जा रहे थे और अपन-अनुपम संगीत सुनाते जाते थे। कहीं अच्छा दृश्य दिखता तो अभय कुमार अपनी लाठी गड़ाये ठहर जाता और उस सौंदर्य-सुधा का अधीरता से पान करता। उसकी आँखें प्रकृति के इस विलास में न जाने क्या खोज रही थीं। तरह-तरह के विचार उसके दिमाग में उठ रहे थे। न जाने कोई उसके मन से कहता था कि अब दुबारा ये दृश्य वह नहीं देख सकेगा। वह यह भी सोचता कि कितनी सुन्दर और पावन है यह भूमि! इस पर हमारा अधिकार नहीं है, विदेशियों का है। कब वह दिन उदित होगा जब इस पर्वतीय सुषमा पर, हमारी नर्मदा नदी के कलकल प्रवाह पर, गंगा और हिमालय पर, स्वतन्त्रता के सूर्य की किरणें चमक उठेंगी? कब वह दिन आयगा? कब?

जब उसने महादेव की गुफा में वहने वाले शीतल जल में गोता लगाया तो उसने अपार शांति का अनुभव किया। उस जल की स्निग्ध शीतलता ने उसके अन्दर धधकने वाले विचारों और भावनाओं की आग को कुछ ठंडक पहुँचायी। इतने दिनों वह एक अजीब यन्त्रणा से गुजर रहा था। शरीर तो थका ही था, पर दिल भी अब थक रहा था, और एक गहरी वेदना उसके

हृदय को भारी किये हुए थी। घुघरी का अग्निकाण्ड, देश भर में निर्दय और क्रूर दमनचक्र, पुलिस और फ़ौज के जुल्म और ज्यादतियाँ, भारतीय नागरिकों—पुरुषों और स्त्रियों—के निरन्तर अपमान और लांछन, और जनता की असहायता और लाचारी, इन सब से उसके संवेदनशील एवं भावुक हृदय को गहरी ठेस लगी थी। ऐसे वातावरण में जीवन का क्या अर्थ है ? क्या कोई ऐसा मार्ग नहीं है जिससे वह अपने प्राणों की आहुति दे कर भी इस असीम दुःख से अपने देशबन्धुओं को बचा सके ?

महादेव की पिन्डी के पास उसने अपना माथम नवा कर कहा—“हे विश्वेश्वर ! तुम कैलाश पर्वत में बैठे हो, रामेश्वर में भी अपना आसन जमाये हो और देश के मध्य में इस सतपुड़ा के अंचल में भी अपनी धूनी रमाये हो। इस विशाल देश का कोई कोना नहीं है जहाँ तुम्हारी प्रतिष्ठा-प्रस्थापना नहीं है, और तुम्हारी निरन्तर पूजा-अर्चना न होती हो। पर तुम्हें इस बात से क्यों चिढ़ नहीं होती कि जिस पावन भूमि में तुम्हारी इतनी प्रतिष्ठा है उस पर तुम्हारे भक्तों का झंडा नहीं है, विदेशियों का झंडा फहरा रहा है, जो तुम्हें पत्थर समझते हैं और तुम्हारे पूजकों को जानवर। नौ अगस्त से आज तक इस विशाल, पुरातन देश में कौन-कौन सा अत्याचार और जुल्म नहीं हुआ ? तुम्हारे भक्तों का कौन-सा छल नहीं हुआ। जगज्जननी पार्वती की कन्याओं का कौन-सा अपमान नहीं हुआ ? यह सब देख कर तुम्हारा तीसरा नेत्र क्यों नहीं खुलता ? वह किस दिन के लिए तुमने रख छोड़ा है, भोलानाथ

कहीं ऐसा तो नहीं होगा कि देश को जो असीम व्यथा और पीड़ा भोगनी पड़ रही है वह उसकी सहन-शक्ति के बाहर हो जाय और उसके भार के नीचे उसकी कमर ही टूट जाय ? और यदि ऐसा हुआ तो फिर तुम्हारी पूजा करने यहाँ कौन आयागा, बताओ तो ? या फिर कही ऐसा तो नहीं हो गया कि शताब्दियों की अनिर्वन्ध, लांछनारूपद गुलामी में, विदेशी शासन की काली और दूषित छाया में, भारतीय नागरिकों की तरह तुम्हारा भी तेजो-भंग हो गया है ? जागो, जागो हे प्रलयकर ! अपने डमरू की आवाज से पुनः इस देश को जगाओ, और फिर इस में अपने ताम्रडव-नृत्य का आविर्भाव करो ताकि उसकी प्रलयकारी उथल-पुथल में हमारे पाप, हमारी कमजोरी, गुलामी भस्म हो जाय और तुम और तुम्हारे भक्त फिर उस पुराने गौरव को प्राप्त करें जिसका इतिहास साक्षी रहा है ।”

पता नहीं भगवान महादेव ने यह सब सुना या नहीं । सुना हो तो उन्होंने उत्तर में क्या कहा, कौन सा आश्वासन दिया, यह भी ज्ञात नहीं । पर जो कुछ कहना था वह कह चुकने के बाद अभय कुमार का मन एकदम शांत हो गया । लाठी उठा कर बोला—

“चलो दीनबन्धु, अपनी यह यात्रा तो सफल हो गयी । अब सीधे घर चलें । जो होगा सो होगा ।”

दीनबन्धु को अभय ने सीधे घर रवाना कर दिया । उस पर पुलिस की उतनी कड़ी निगरानी नहीं थी । जेलें ठसाठस भर गयी थीं और प्रायः सभी प्रमुख कार्यकर्ता गिरफ्तार हो ही चुके थे । इसलिए सरकार अब कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारी के बारे में ज़रा शिथिल हो गयी थी । पर जिन खास-खास लोगों पर उसकी आँख थी, उन पर तो वह ऐसी घात लगाये बैठी थी कि वे नज़र में पड़ भर जायें, उन्हें निगल ही लेगी । इसलिए दीनबन्धु तो बिना विशेष तकलीफ़ के सकुशल शहर लौट आये । अपने घर जाने के पहले वे अभय के यहाँ गये । उस समय रात के ग्यारह बजे थे । उनकी धीमी पुकार सुनते ही अभय की माँ फौरन हड़बड़ा कर उठ बैठी—

“कौन है ?”

“मैं हूँ दीनबन्धु, माँ ।”

“आओ बेटा, मेरा अभय कहाँ है ? जब से गया है मन में चैन नहीं। यह भी पता नहीं कि जेल में है या बाहर। कहीं गोली तो नहीं लग गयी।”

“नहीं मों, अभी तक तो वह सुरक्षित है। पर आगे की कौन कहे ?”

“ठाकुर जी की जय हो। मेरा अभय मुझे एक बार आँखों से दिख जाय, मैं सत्सुनारायण की पूजा करूँगी।”

“वह घर की तरफ़ आने ही वाला है। महादेव के दर्शन कर लौट रहा है। डेढ़-दो सौ मील का सफ़र है, चार-छः दिन तो लग ही जायेंगे।”

इसी बीच विजया भी उठ कर आयी। दीनबन्धु ने देखा इन छः हफ़्तों में ही वह सूख कर काँटा हो गयी थी। उसकी सूरत देखते ही दीनबन्धु का दिल धक हो गया और आँसू छलछला आये। अपनी भावना के आवेग को रोक कर उसने बताया कि अभय कुमार ने साधू का मेष धर लिया है और वह अकेला पैदल मार्ग से रवाना हो गया है, क्योंकि पुलिस उसकी टोह में है।

“हाँ बेटा, मैंने तो सुना है कि पुलिस ने उससे नाम के परचे जहाँ-तहाँ चिपका दिये हैं। अपने घर के सामने भी दो चिपका गयी है। बीसों बार पुलिस घर आयी—‘अभय कहाँ है ? बताओ, नहीं तो तुम भी जेल में बन्द कर दी जाओगी। ऐसा कैसे हो सकता है कि वह तुम्हें खबर न मेजे, पाँच-सात बार तलाशी ली कि कहीं उसकी कोई चिठी-पत्री मिले और उसके ठिकाने का पता लगे। मैं तो आँखों में प्राण लिये उसकी राह

अनन्त गोपाल शेवडे

देख रही हूँ दीनबन्धु । मेरा सोने जैसा लड़का है, कहीं पुलिस के हाथ में पड़ गया तो जाने वे उसकी क्या गत बनायेंगे । उसको गोली से मार देने की बात परचे में छपी है, तो दिखता है वे उसका खून पीकर ही रहेंगे । मेरे अन्तर्यामी ठाकुर ! तुम्हीं मेरी बेटी के सौभाग्य की रक्षा करो ।” —माँ ने हँचे कंठ से कहा ।

दीनबन्धु के दिल में भी ऐसा ही खौफ समाया था सो वह माँ को सान्त्वना कैसे दे ? पर हाँ, समझाने के लिए कह दिया—

“नहीं माँ, क्यों नाहक बुरा सोचती हो ? उसकी जान को कुछ नहीं होगा—हाँ जेल से अब वह नहीं बच सकता । हो सकता है वहीं अब पाँच-सात वर्ष उसे सड़ना पड़े ।”

“उसकी तो चिन्ता नहीं है, दीनबन्धु ! उसके लिए तो अब मेरा मन तैयार है, पर परचे में लिखा है कि उसने गिरफ्तारी में अड़ंगा डाला तो उसे गोली मार दी जायगी—इसी से घबड़ा गयी हूँ !”

“वह अड़ंगा क्यों डालेगा माँ ? वह तो गांधी महात्मा का भक्त है । उसे भरोसा हो जाय कि अब बाहर रहने से कोई फायदा नहीं और जेल जाना ही धर्म है तो वह सीधा उठ कर थाने चला जायगा और अपने को पुलिस को सौंप देगा । वह क्यों अड़ंगा डालेगा ? जेल से घबड़ाता तो है नहीं ।”

“अब जाकर मेरा जी हल्का हुआ दीनबन्धु ! इस डेढ़ महीने में कोई टोह-खबर नहीं मिली, और अफवाहें भयंकर से भयंकर सुनीं, इसलिए बहुत घबरा गयी थी । पर अब तुम आ

ज्वालामुखी

गये बेटा, सब कुछ मालूम हो गया और मन शांत हो गया । जाओ बेटा, घर जाओ, तुम्हारी लक्ष्मी भी विजया की तरह पलक-पाँवड़े बिछाये तुम्हारी बाट जोह रही होगी । पर ज़रा सम्हल के जाना । आसपास खुफ़िया बैठी है ।”

विजया ने इस वार्तालाप में कोई हिस्सा नहीं लिया, पर माँ के आनन्द की हिस्सेदार वह स्वयं बन गयी थी । उसने दीनबन्धु के चरणों में जिस श्रद्धा के साथ सिर मुका कर प्रणाम किया, वही बताती थी कि वह उसके प्रति कितनी कृतज्ञ है ।



अभय कुमार महादेव की पहाड़ी से उतरने लगा तब अँधेरा होने लगा था। यों भी उसके प्रवास का समय रात का ही रहता था, पर इस सुनसान, अनजान जंगल में रात कहाँ काटे, कैसे काटे ? जंगली जानवरों का डर भी वहाँ काफ़ी है। किसी ने अपने भक्षण की सामग्री उसे बना लिया तो ? मरने का उसे डर नहीं, पर इस तरह बिना किसी कार्य या कारण के बिना किसी व्यक्तिगत या समाजिक लाभ के अज्ञात-वस्था में चुपचाप मर जाने से फ़ायदा ? भगवान महादेव की उसने शरण ली है तो अब वे ही पार लगायेंगे।

पता नहीं वह अमावस्या की रात थी या क्या—इतना घटाटोप अँधेरा था कि एक कदम भी चलना मुश्किल। कब पगडंडी छूट जाय इसका भरोसा नहीं और वह छूटी कि सीधे यमराज के घर पहुँचने में देर नहीं। भगवान ही मालिक है।

वह घबरा गया। पसीना-पसीना हो गया। पैर लड़खड़ाने लगे और वह दीन और असहाय होकर एक पत्थर पर बैठ गया। मुँह से निकला—‘हे राम !’

“घबराओ मत बच्चे ।”—अँधेरे को चीरती हुई एक ममत्वभरी आवाज आयी। अभय कुमार को लगा कि सममुच भगवान ही दर्शन देने उतर आये। आनन्द के कारण उसकी घिन्धी बँध गयी। जब्त में उसने सिर्फ़ एक पत्थर पर लाठी मार कर आवाज की।

“घबराओ मत बेटा ! मैं भी आदमी हूँ और पास ही एक कुटिया में रहता हूँ। आओ, तुम मेरे पीछे चले आओ और वहीं रात बिताओ ।”—अभय ने सुना।

अभय को बड़ा धीरज हुआ, बड़ा आश्वासन मिला। वह निश्चिन्त होकर उस अदृश्य व्यक्ति के खड़ाऊँ की आवाज के सहारे उसके पीछे हो लिया।

दोनों लगभग दस मिनट इसी प्रकार चलते रहे। कोई किसी से कुछ न बोला और अकस्मात् वह अज्ञात व्यक्ति रुक गया और बोला—“ठहरो ! मेरी कुटिया आ गयी। मैं अन्दर जाकर दिया जलाता हूँ ।”

अँधेरे को देखते-देखते अभय कुछ अभ्यस्त-सा हो गया था। उसे कुछ सूझने भी लगा था। उसने देखा, सामने एक फूस की कुटिया है जिसका दरवाजा खुला है। थोड़ी देर में मिट्टी का दिया जला, जो उस अन्धकार में बिजली की चका-चौंध जैसा लगा। उसी में उसने उस व्यक्ति को पहली बार देखा ! अरे, वह तो साधू हैं, जिनकी डाढ़ी पेट तक लम्बी थी

और जटाएँ कमर तक ! उम्र होगी सत्तर-अस्सी बरस । इस निर्जन, एकान्त, बियाबान जङ्गल में अकेले रहते हैं—यह सब के बस की बात नहीं । साँप-बिच्छू, शेर-चीते, भूत-प्रेत—इनकी क्या कमी है इस घनघोर जंगल में, फिर भी वे यहाँ आनन्द से रहते हैं । उनके पास जरूर कोई शक्ति होगी, सिद्धि होगी ।

“मैं तो अँधेरे में ही रह लेता हूँ, पछ आज तुम्हारे लिए न जाने कितने दिनों के बाद यह दीप जलाया है । तुम्हें अँधेरे में तकलीफ होगी ।”—स्वामी जी ने कहा ।

“आप मुझे मिल गये स्वामी जी, मैं धन्य हो गया । नहीं तो पता नहीं आज मेरी क्या गत होती ?”

“इसमें धन्य होने की क्या बात है बेटा ! मैंने देख लिया था कि तुम दूर महादेव पहाड़ से उतर रहे हो और इसी रास्ते आओगे ! तुम्हारा साहस देख कर मैं अचरज में पड़ गया—अँधेरे के बाद इस रास्ते से कोई नहीं जाता । तुम घबरा न जाओ इसलिए मैं तो तुम्हारी प्रतीक्षा करता खड़ा था ।

और अकस्मात् उनका ध्यान अभय के चेहरे पर, विशेषतः उसकी काली डाढ़ी पर गया जिसे देख कर वे बोले—

“इतनी कच्ची उम्र में संसार छोड़ दिया बेटा ! क्या बहुत बड़ा दुःख है ?”

स्वामी जी के स्नेहपूर्ण व्यवहार से अभय को विश्वास हो गया कि उन पर भरोसा किया जा सकता है । वे किसी के लेने-देने में नहीं हैं, और उनके सामने हृदय खोल कर रख देने से अकल्याण नहीं होगा । होगा तो लाभ ही ।

“नहीं स्वामी जी, संसार नहीं छोड़ा है। दुख है, पर व्यक्तिगत नहीं सामाजिक है। देश पर इतनी विपत्ति पड़ी है, इतना अपमान और तिरस्कार सहना पड़ रहा है कि आजकल के वातावरण में किसी स्वाभिमानी व्यक्ति का रहना कठिन है। अंग्रेजी राज गरीब, असहाय, निरपराध जनता पर इतना जुल्म ढा रहा है कि छाती फट जाती है। उसी का दुख है महाराज !”

“क्यों ?”

“महात्मा गांधी ने स्वतंत्रता का आन्दोलन छेड़ दिया है। आन्दोलन क्या, वह एक क्रांति है, जो सारे भारत को कँपा रही है। उस को कुचल डालने के लिए ही विदेशी शासन पागल कुत्ते की तरह आमादा है। अत्याचारों की कोई सीमा नहीं, जनता त्रस्त हो गयी है।”

“समझ गया। सन् १८५७ में यही हुआ था—बल्कि इससे भी भयंकर। अब सन् बयालीस में फिर वही हो रहा है। इसमें घबराने की क्या बात है बेटा ! स्वतंत्रता देवी को रक्त का अर्घ्य चढ़ाये बिना वे कैसे मानेंगी ? ऐसे देखते, सहज-सहज थोड़े ही आ जायेंगी। दृढ़ बने रहो और अपना कर्तव्य करते रहो—वे आये बिना नहीं रहेंगी, इसका विश्वास रखो।”

अभय कुमार को सन् १८५७ की बात सुन कर बड़ा आश्चर्य हुआ। स्वामी जी को पुराना राष्ट्रीय इतिहास कैसे मालूम ? उसने पूछा—

“सन् सत्तावन में क्या हुआ यह सब आपको मालूम होगा महाराज !”

“मैं स्वयं तो उस समय नहीं था। मेरे गुरु जी थे जो इसी जगह रहते थे। बीस वर्ष पहले ही उन्होंने समाधि ली। जब सत्तावन का ग़दर हुआ तब मेरे गुरु जी यहीं रहते थे। उन्होंने उस ज़माने को देखा था। उन्हीं की ज़बानी उस ग़दर का बहुत कुछ हाल मुझे मालूम हुआ। नागपुर पर अंग्रेज़ों का आक्रमण होने पर अण्णासाहब भोंसला भागा तो इसी कुटिया में गुरु जी के पास कुछ महीने रहा। बाद में वह चित्रकूट की तरफ़ चला गया। मेरे गुरु जी ने तो भौंसी की रानी लक्ष्मीबाई को भी देखा था—बद्रीनारायण की यात्रा से लौट रहे थे तब! उस ग़दर को कुचलने के लिए अंग्रेज़ों ने कुछ उठा नहीं रखा था। ग़नीमत थी कि उनके पैर उखड़ते-उखड़ते फिर ज़म गये। देश का भोग्य पूरा नहीं हुआ था इसलिए रानी को भी आत्म-त्याग करना पड़ा तथा हजारों-लाखों भारतीयों को भी वह तो एक यज्ञ है जिसकी पूर्णाहुति करने के पहले कई बार अपनी आहुति देनी पड़ती है। आज देश फिर आहुत देने को आतुर है। कोई भी बलिदान वृथा नहीं जाता। इस सब का फल अवश्य मिलेगा। विधि के विधान को कोई मेट नहीं सकता।”

“क्या सचमुच ऐसा होगा, बाबा? या आप मुझे सिर्फ़ दिलासा देने के लिए यह कह रहे हैं?”

“नहीं बेटा! झूठा दिलासा देने से मुझे क्या फ़ायदा? हम लोग तो सन्यासी ठहरे। किसी के लेने में नहीं, देने में नहीं। रानी के सरदारों से भी गुरु जी ने कहा था कि तुम आहुति अवश्य दो, देनी ही होगी, पर पूर्णाहुति के लिए अभी देर है। रानी की मृत्यु के बाद जो निराशा और पराजय

की भावना फैली, उसके कारण तो कई विद्रोही हिमालय में चले गये। उनमें से कुछ लोग तुम्हें आज भी वहाँ तपस्या करते हुए मिलेंगे।”—स्वामी जी ने कहा।

“पर उन्होंने संसार क्यों छोड़ दिया महाराज—रण क्षेत्र क्यों छोड़ दिया ?”

“बेटा, मैं उनकी बात समझ सकता हूँ। वे गये तो निराश होकर, इस में शक नहीं। पर वहाँ जाकर उनकी वृत्ति बदल गयी। तुम लोग देश के राजनैतिक उद्धार के लिए प्रयत्नशील हो। हम लोग उसकी आध्यात्मिक उन्नति के लिए प्रयत्नशील हैं। तुम सम्मत् हो कि राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद तुम्हारे सब प्रश्न हल हो जायेंगे, पर हम ऐसा नहीं मानते। हमारी धारणा है कि जब तक इस विशाल और सुसंस्कृत देश में आध्यात्मिक मूल्यों की प्रस्थापना नहीं होती तब तक यहाँ सुख शांति नहीं हो सकती—और तभी तक दुनिया में भी अमन-चैन नहीं हो सकता। भारत की मूल प्रकृति अध्यात्मा की है। उसके विपरीत जाकर जो कोई इस देश का निर्माण करने का प्रयत्न करेगा वह असफल होगा। गंगा उलटी नहीं बह सकती और न हिमालय हिम हीन ही हो सकता है।”

“तो क्या बाबा ! हमारा राजनैतिक क्रांति का मार्ग बेकार है ?”

“नहीं बेटा, मेरा यह मतलब नहीं है। राजनैतिक स्वातंत्र्य से आध्यात्मिक जागृति और उद्धार का मार्ग प्रशस्त होगा इसलिए वह बेकार कैसे होगा ? मेरा सिर्फ यही कहना है कि वह एक साधन मात्र हैं, साध्य नहीं है। वह मंजिल पर पहुँचने

की एक सीढ़ी है, और आवश्यक सीढ़ी है, पर वही अन्तिम मंजिल नहीं है। इतनी बात हम स्पष्ट समझ लें तो हमें निराशा नहीं होगी, सत्य-सत्य की तरह ही देखेगा, स्वप्न की तरह नहीं। स्वतंत्रता-प्राप्ति भारत के महत्कार्य का अन्त नहीं, प्रारम्भ है।”

“यह सब तो सुदूर भविष्य की बात है, बाबा ! आज तो ऐसा लगता है कि सरकार के क्रूर दमन के कारण हमारी स्वतंत्रता भी हम से दुरा गयी है। जो विफलता और नैतिक पुतन समाज में दिखता है उससे तो लगता है कि हम दस-बीस बरस शायद फिर न उठ सके।”

“पागल हो बेटा ! काल-चक्र बड़ी तेजी से घूम रहा है। वह दिन दूर नहीं जब अंग्रेजों का सूरज इस देश में अस्त हो जायगा। उसकी जितनी भी हिंसा-विभीषिका दिखायी देती है, वह लौ के बुझने के पहले का प्रकाश है। यदि केवल अंग्रेजी साम्राज्य के अंत होने की बात से ही तुम्हें सुख होगा तो लो मैं कहे देता हूँ कि वह अब चंद दिनों का ही खेल है। स्वामी रामतीर्थ ने भविष्य वाणी की थी कि भारत बीसवीं शताब्दि के मध्य तक स्वतंत्र होगा। पर उसका स्वर्ण-युग और दस-बीस बरस के बाद शुरू होगा। मेरी धारणा है कि सन् १८५७ की तरह सन् १९५७ भी एक चिरस्मरणीय वर्ष होगा, फिर देखो प्रभु की क्या इच्छा होती है।”

अभय कुमार को यह सुन कर बड़ी शांति मिली। उनकी भविष्यवाणी सच निकलेगी या नहीं यह तो वह नहीं जानता था, पर जो बात वे कह रहे थे, वह उसे बड़ी समझदारी की

जान पड़ी । उसने उसके दिमाग को बहुत दूर तक सोचने के लिए मजबूर किया । थोड़ी देर मौन रह कर अभय बोला—

“सुदूर भविष्य में क्या होगा यह तो अंतर्दामी ही जानें, बाबा ! पर जैसा कि आप कहते हैं, हमारी राजनैतिक स्वतंत्रता दूर नहीं है, तो फिर निराशा और विफलता का कोई कारण नहीं दिखता । जहाँ तक मेरे जैसे युवकों का सवाल है बाबा, हम तो अपना सब कुछ स्वतंत्रता की बाजी पर लगा चुके हैं । हम स्वतंत्र हो गये तो हम अपने आप धन्य हो जायेंगे । फिर यह तो आने वाली पीढ़ी का काम है कि वह उस स्वतंत्रता का क्या करे, और स्वतंत्र भारत का नव-निर्माण कैसे करे ? हमारा तो कर्तव्य है केवल स्वतंत्रता के लिए आहुति देना । हमारे प्राणों के अर्घ्यदान से भी यदि यह ज्वाला जल उठे तो हमारे अहोभाग्य हैं । आज तो हमारा इतना ही ध्येय है । इसके बाद कल क्या होगा, इसकी चिन्ता करना हमारा काम नहीं है ।”

“तुमने बहुत अच्छी बात कही है बेटा ! बड़ी समझदारी की बात है । तुम तो मन्दिर के पाये के पत्थर हो । तुम अगर मिट्टी में न गड़ो, न मरो-मिटो, तो यह मन्दिर की भव्य इमारत कैसे खड़ी होगी और उस पर सुवर्ण कलश कैसे चढ़ेगा ? अपने आपको मिटा देना, खपा देना, यही तुम्हारा काम है । सम्भव है तुम्हारे आत्मोत्सर्ग पर कोई आँसू भी न बहाये । पाये के पत्थर का कोई लेखा-जोखा नहीं रखता, कोई इतिहास नहीं लिखता, पर उस पत्थर के बिना वह मन्दिर खड़ा नहीं हो सकता, वही उसका प्राण है । इसलिए मेरे बच्चे, तुम तो रानी लक्ष्मीबाई

अनन्त गोपाल शेषदे

से लेकर, आज तक जो शहीद हुए हैं उनकी तरह पाया बनाने में पत्थर की तरह काम आओगे, पर तुम पत्थर नहीं, देवता हो। मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ”—और ऐसा कह कर सचमुच उस बूढ़े साधू ने गदगद होकर अभय कुमार के सामने जमीन पर अपना माथा टेक दिया।

अभय कुमार यह देख कर स्तंभित रह गया। अपने आपको बड़ा लज्जित अनुभव करने लगा। बोला—

“यह आप क्या कर रहे हैं स्वामी जी? आप इतने बुजुर्ग गुरुजन, और मैं छोटा सा बालक! मैं तो आप से इसी आशीर्वाद की भिक्षा माँगता हूँ कि जिस मार्ग पर मैं आज चल रहा हूँ उस पर दृढ़ रहूँ। आग, आँधी या तूफान—जो कुछ भी हो उसमें मैं अन्त तक अडिग रहूँ।”

“ऐसा ही होगा, मेरे बेटे!” स्वामी जी ने कहा, “तुम बहुत बड़ा भाग्य लेकर आये हो।”



जहाँ जंगल ही जंगल होता, वहाँ अभय कुमार दिन भर चलता और रात को कहीं बसेरा करता। पर मैदान और बस्तियों का प्रदेश आ जाता तो वह दिन में कहीं किसी मंदिर या धर्मशाला में छिपा पड़ा रहता और फिर रात में चलता। उसका अब एक ही ध्येय रह गया था कि किसी तरह एक बार घर पहुँचे और माँ तथा विजया को देख ले। उन्हें एक बार भी आँखों में भर सके तो फिर जेल या अन्य किसी भी भावी को सहन करने के लिए वह खशी-खुशी तैयार हो जायगा। उनसे भेंट के लिए एक अजीब तड़पन, अजीब बेचैनी उसके दिल में छायी हुई थी। चलते-फिरते, दिमाग में यही बात उठती कि वह उन्हें कब देखे, कब देखे ? यों उनसे विदा हुए डेढ़ महीने से कुछ ही ज्यादा हुआ था—ठीक पचास दिन ! पर इन पचास दिनों में जैसे पचास वर्षों का अनुभव ठूँस कर भरा था। क्या-क्या नहीं

हुआ इन पचास दिनों में ? इतना उत्कट जीवन, जिसके क्षण-क्षण में गहरा अनुभव भरा था, और प्रत्येक अनुभव के आघात प्रत्याघात से उसके व्यक्तित्व का रोम-रोम विकम्पित होता था, ऐसा उसने कभी नहीं देखा था । यह सारा अनुभव जड़ से हिला देने वाला था । स्वार्थ और त्याग, आदर्श और जड़ता, तेजस्विता और कायरता, मानवता और पशुता, दया और क्रूरता, नैतिक उत्थान और पतन, ये सब साकार होकर उसे दर्शन दे चुके थे । विष और अमृत को उगलने वाले इस महान समुद्र मन्थन को देख कर वह पूरी तरह हिल उठा था । विश्व का ऐसा विराट स्वरूप उसने कभी नहीं देखा था, और पहले यदि कोई उसका वर्णन करता तो वह उस पर विश्वास नहीं कर सकता था । यह सब देखने और भोग चुकने के बाद उसके सामने यही प्रश्न उठता कि काल-पुरुष की इस महायात्रा में, मानव के उत्थान और पतन की इस बेला में, जो प्रलय-कम्प हो रहे हैं उनमें वह अकेला कहाँ खड़ा है, क्या कर सकता है ? भाग्य के इस विराट नाटक में उसकी कितनी-सी भूमिका है—उसे कौन पूछता है ? वह अपने आप में कुछ नहीं है । वह जो करता-कराता-सान्नायर आ रहा है, वह किसी अगम्य शक्ति के प्रभाव के कारण है । तूफान के पंजे में जकड़े गये क्रुद्ध समुद्र की लहरों पर तिनका भी कभी अपना मार्ग स्वयं निर्धारित कर सकता है ? उसके हाथ में इसके सिवा और कुछ नहीं है कि वह निरिच्छ और लाचार होकर उसी ओर बहता जाय जहाँ हवा का झोका उसे ले जाता है । वहाँ जाना उसे पसन्द हो या न हो । उसकी इच्छा-अनिच्छा का आखिर मूल्य ही क्या है ?

इसलिए अभय ने अपनी नाव अब धारा में छोड़ दी है और डाँड़ चलाना बन्द कर दिया है। डाँड़ चलाने से कुछ होता-जाता नहीं। नाव का खेवनहार कोई और है। उसके मन में क्या है, यह उसे ज्ञात नहीं। और उसकी इच्छा के आगे श्रद्धा से, शांति से सिर झुकाने के सिवा उसके हाथ में और कुछ नहीं है।

बस, एक ही इच्छा है, एक ही अदम्य ईप्सा। एक बार मौँ के पैरों पर अपने अशुओं का अर्घ्य चढ़ा दे और विजया को अपनी छाती से लगा कर उसके आँसुओं को अपने हाथों से पोंछ सके। ईश्वर उस पर इतनी कृपा कर दे तो वह कृतकृत्य हो उठेगा।

इन्हीं विचारी के चक्र के साथ-ही-साथ उसके कदम उठते जाते थे और जैसे-जैसे घर पास आता जाता, उनकी गति बढ़ती जाती। आज खतरा उठा कर भी वह दिन भर चला। रुकना उसकी जान पर आता था। पैर चलते-चलते थक गये थे, फट गये थे। शरीर में भी दर्द होता था। कभी-कभी दिन-दिन भर भूखा भी रहना पड़ता। कहीं कुछ न मिला तो कुएँ का पानी पी कर ही समय गुज़ार लेता। पर वह रुकना नहीं चाहता था। न जाने क्यों उसे लगता था कि अब उसके पास ज्यादा समय नहीं है। एक ही धुन, एक ही आस उसके दिल पर छायी थी— जल्दी से जल्दी घर पहुँचना। उसमें क्या खतरा है, क्या नहीं है, यह सोचने के लिए उसका मन तैयार नहीं है। इसी में रात हो गयी और वह एक तहसील के गाँव में पहुँचा, जो उसके शहर से चौबीस मील की दूरी पर था। उसे लगा कि आज यदि वह यहाँ नहीं ठहरेगा तो रास्ते में ही थक कर गिर पड़ेगा और

मर जायगा । अपने प्रियजनों को देखे बगैर वह मरना भी नहीं चाहता था । चलते चलते वह थक कर चूर हो गया था । अभी एक दिन का सफ़र और बाकी था । उसके लिए उसे विश्राम करना जरूरी था । इसलिए सोचा कि आज इसी गाँव में बसेरा कर ले ।

गाँव के बाहर ही जिस मकान में उसे पहले प्रकाश दिखा वहीं वह घुस पड़ा और दरवाज़े पर खड़ा-खड़ा ही बोला—

“ओम भवति भिक्षां देहि !

—माँ, भिक्षा मिलेगी ?”

एक ही आवाज में दरवाज़ा खुला और एक संभ्रान्त दिखायी दी । आयु होगी पच्चीस-छब्बीस वर्ष ! वह एक सादी सफ़ेद साड़ी पहने हुए थी, जिसमें वह बड़ी सौम्य और भली लग रही थी । उसने देखा—

सामने हाथ में तूमा लिये, धूल-धूसरित, क्लान्त, एक तरुण योगी खड़ा है । उसके भव्य किन्तु सात्विक व्यक्तित्व से उसने तुरन्त जान लिया कि यह कोई भौंदू नहीं, सचमुच का साधू है । इतनी कच्ची उम्र में उसने संसार त्याग दिया, यह देख कर उसका हृदय द्रवित हो गया । बोली—

“आइए, पधारिए बाबा ! मेरे अहोभाग्य जो घर बैठे आप जैसे महात्मा के दर्शन हुए । बोलिए, क्या आज्ञा है ?”

“आज्ञा कुछ नहीं है माई ! सिर्फ़ जरा-सी रोटी का टुकड़ा और रात भर का ठिकाना चाहिए, मकान का एक ऐसा कोना मिल जाय जहाँ मैं एकान्त में भजन-पूजन कर सकूँ तो बड़ी कृपा होगी ।”

“हाँ, हाँ महाराज बड़े शौक से ! सारा घर आपका ही है । क्या भजन-पूजन मैं भी सुन-देख सकती हूँ ।”

“माई, मैं तो मूक मानस-पूजा ही करता हूँ, जहाँ प्रकाश की भी जरूरत नहीं होती । हम रमते जोगियों का तो यही मार्ग है ।”

“जैसी आपकी इच्छा हो बाबा—आइए, मेरे साथ—”

वह मकान बड़ा नहीं था । न उसमें बाल-बच्चों के अस्तित्व के कोई चिन्ह ही दिखायी दिये । हाँ, एक कमरे के सामने से वह गुजरता तो पुलिस की वर्दी देख कर वह सकते में आ गया—अरे, मैं तो शेर की माँद में ही आ फँसा । उसे लगा कि फौरन भाग जाना चाहिए । पर कैसे भागे ? भागेगा तो और शक नहीं होगा ? फिर यह माई तो बड़ी साध्वी मालूम पड़ती है । अब आ गया हूँ तो प्रसंग तो निभाना ही होगा । पर वह एकदम सचेत हो गया ।

उसे अटारी का एक कमरा दे दिया गया । वहीं उसने आसन जमाया । वह खी पानी का घड़ा और लोटा रखते हुए बोली—“आप थोड़ी देर आराम कीजिए बाबा जी । मैं अभी साग-पूड़ी उतार लेती हूँ । तब तक मेरे पति भी क्लब से आ जाते हैं ।”

“स्वामी क्या करते हैं, माई ?”

“पुलिस में दरोगा हैं, बाबा जी ।”

“ऐसा !”—अकस्मात् अभय के मुँह से निकल गया । उसे लगा कि उसके स्वर की चिता कहीं उस नारी के ध्यान में तो नहीं आयी ?

“हाँ बाबा, वस घर में हमी दोनों हैं । कोई बच्चा नहीं है । मैंने बड़ी मानताएँ बोलीं, व्रत-उपवास रखे, पर अभी तक भगवान् ने मेरी बिनती नहीं सुनी । आप जैसे महात्माओं का आशीर्वाद हो तो वे जरूर कभी-न-कभी सुन ही लेंगे । इसलिए मेरे दरवाजे से कभी कोई सन्यासी खाली हाथ नहीं जाता । न जाने किस रूप में प्रभु दर्शन दे दें ।”

तुम जैसी साध्वी स्त्रियों को हम क्या आशीर्वाद देंगे, माँ ? पर हाँ, ईश्वर से जरूर प्रार्थना कर सकते हैं कि वह तुम्हारी इच्छा पूरी करे ।”

वह स्त्री नमस्कार करके नीचे चली गयी और अपने काम में लग गयी । आध-पौन घंटे में उसके पति क्लब से आये और सन्यासी को बुला कर दोनों को उस स्त्री ने प्रेम से खाना खिलाया । अभय को दो एक बार शक हुआ कि कहीं उसका पति उसे घूर-घूर कर तो नहीं देख रहा है ?

पुलिस के दरोगा साहब के लिए यह कोई नयी बात नहीं थी । वे पत्नी का स्वभाव जानते थे और उसका पूजा-पाठ या नेम-धर्म में किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुँचाते थे । यह अक्सर होता कि वे जब घर आते तो कोई-न-कोई ब्राह्मण-अतिथि या साधु भोजन के लिए मौजूद रहता । यदि उनकी पत्नी को इसी में सन्तोष, समाधान, आनन्द मिलता है तो यही सही । वे क्यों उसके आड़े आयें ? उनकी इस समझदारी और उदारता के पोछे एक रहस्य था । उन्हें इस बात का बड़ा दुःख था कि उनके कोई सन्तान नहीं थी । उनकी अपेक्षा उनकी पत्नी को इसका बड़ा दुःख था । वह अपना दुःख चुपचाप, मौन हो कर

बर्दाश्त कर लिया करती थी, जैसा कि इस देश की स्त्रियाँ कर लिया करती हैं। पर वह दुःख जितना अव्यक्त था उतना ही गहरा था। कभी एकाध गहरे निःश्वास में ही वह व्यक्त हो जाता तो हो जाता।

दरोगा साहब ने बहुत कुछ कह-सुन कर पत्नी को इस बात के लिए राजी कर लिया कि वे दोनों डाक्टरी जाँच करा लें। उनकी पत्नी तो पहले इस बात पर राजी नहीं हुई। बोली, “संतान होना न होना तो भगवान की कृपा पर अवलम्बित है। मेरे पिछले जनम का कोई पाप या अपराध होगा जो अब तक मेरी गोद सूनी है। यह तो व्रत और तपस्या से ही दूर हो सकता है, इसमें डाक्टर-वाकटर क्या कर सकते हैं?” पर जब पति ने जोर दिया तो वह उनके साथ शहर चली गयी। पति का मन दुखाना उसकी जान पर आता था। डाक्टरी जाँच-रिपोर्ट जब दरोगा साहब को मालूम हुई तो उनका दिल छोटा हो गया। उसमें निकला कि पत्नी का स्वास्थ्य तो बिल्कुल ठीक है, पर दोष है स्वयं दरोगा साहब के ही स्वास्थ्य में। पर यह बात उन्होंने पत्नी को नहीं बतायी। सिर्फ यही कहा कि डाक्टर तो कुछ नहीं बता सके।

“यह तो मैं पहले ही से कह रही थी”— दरोगा की पत्नी बोली, “नाहक रुपया-पैसा बर्बाद करने से फायदा?”

इस घटना का नतीजा यह हुआ कि अपनी पत्नी के सामने दरोगा साहब अपने आपको नैतिक रूप से नीचा पाते। इसका परिमार्जन उन्होंने इसी तरह किया कि पत्नी के पूजा-पाठ में उन्होंने पूरी आज्ञा दी दे रखी थी। उसके चरित्र पर उन्हें पूरा

भरोसा था। इसलिए, यदि इन्हीं व्रत और आरती-वन्दन में उसका मन रमा रहता हो और उसे मानसिक शांति मिलती हो तो क्या बुरा है ?

दरोगा साहब ब्राह्मण थे और इस पूजा-पाठ के कारण उनकी पत्नी की बड़ी मान्यता थी। अड़ोस-पड़ोस की स्त्रियाँ उनके यहाँ आतीं। उनसे तीरथ-प्रसाद ले आतीं, उनका बड़ा आदर करतीं। इस वातावरण के कारण उनके पति भी उनसे थोड़ा दबते थे।

भोजन होने के बाद जब दरोगा साहब अपने सोने के कमरे में गये तो पत्नी से बोले—

“इस साधू का चेहरा तो अभय कुमार के चेहरे से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। कहीं यही तो वह नहीं हैं ?”

“अभय कुमार कौन ?”—पत्नी ने पूछा।

“अरे, वही प्रसिद्ध क्रांतिकारी जिसकी गिरफ्तारी के लिए सरकार ने दस हजार का इनाम घोषित किया है। तुमने उस पोस्टर में उसकी तस्वीर नहीं देखी ?”

पत्नी को बात याद आ गयी और यह भी ठीक लगा कि दोनों में साम्य है। हो सकता है कि साधू के भेष में वही क्रांतिकारी भागता फिरता हो। ऐसे किस्से उसने बहुत पहले किताब में पढ़े थे।

“होगा भी तो हमें इससे क्या ?” पत्नी ने कहा।

“उसको गिरफ्तार कर लिया तो मुझे दस हजार का इनाम मिलेगा और तरक्की जरूर मिलेगी। सर्किली तो कहीं नहीं गयी।”

“गिरफ्तार ? और सो भी अपने घर आये हुए अतिथि को ? छिः छिः, मेरे रहते हुए यह नहीं हो सकता ।” पत्नी ज़रा कड़क कर बोली ।

“पर इसकी गिरफ्तारी नहीं की तो जानती हो क्या होगा ? एक क्रांतिकारी को आश्रय देने के कारण मेरी नौकरी तो जायगी ही और जेल में जाना पड़ेगा सो अलग ।”

“जेल में ? अरे बाप रे !” पत्नी यह सुन कर घबरा गयी । इस विचित्र अतिथि के सत्कार के लिए उसके पति को इतनी महँगी कीमत देनी पड़ेगी, इसकी उसे कोई कल्पना नहीं थी । वह एक भीषण धर्म-संकट में पड़ गयी ।

एक ओर तो उसका मन अपने अतिथि-सत्कार की परम्परा से मुँह मोड़ने के लिए बगावत करता था । बचपन से ही वह “अतिथि देवो भव !” के सिद्धान्त को जपते-रटते और उस पर आचरण करती चली आ रही थी, और आज उस अतिथि के साथ ही वह विश्वासघात होने दे, सो भी उसी की छत्र-छाया के नीचे ?... असम्भव है ! भगवान इस अपराध के लिए कभी क्षमा नहीं करेंगे । इस तरह गत जन्म का क्षीण-पुण्य कमाना तो दूर रहा, इस जन्म का नया पाप और सिर चढ़ेगा जिसका परिमार्जन तो जन्म-जन्मान्तर में भी नहीं हो सकेगा । फिर अपनी गोद भरना तो दूर ही रहा । नहीं, यह कदापि सम्भव नहीं है ।

पर दूसरी ओर पति के पेश किये हुये कानूनी पेंच से भी वह इन्कार नहीं कर सकती । पति की नौकरी छूट जाय और उसे जेल जाना पड़े तो इस बदनामी को वह कैसे सहन करेगी ? पति

की कीर्ति और सुख का नाश कितनी भयंकर अभक्ति है पातिव्रत्य की कितनी अवहेलना है ?

“तुम्हीं बताओ भगवन् कि अब मैं क्या करूँ ? तुम्हीं मुझे रास्ता दिखाओ, अनार्यों के नाथ ! इधर कुश्रों है और उधर खाई ! कहाँ जाऊँ, कैसे जाऊँ—बताओ तो ।” वह मन-ही-मन रुझाँसी होकर बोली ।

दरोगा साहब ने देख लिया कि उनकी गोली जगह पर लगी । नौकरी छूटने या जेल के डर की अपेक्षा उन पर इस समय दस हजार की चकमक और सर्किल-इन्स्पेक्टरी की चकाचौंध ही हावी थी । पत्नी के सामने उन्होंने जो जाल फेंका, उसमें वह फँस गयी, यह वे जानते थे । इसी को तो कहते हैं पुलिस का दिमाग ! आखिर अभय कुमार आज नहीं तो कल जरूर गिरफ्तार होगा । उसका श्रेय कोई-न-कोई तो लेगा ही । फिर मैं ही उसे क्यों न ले लूँ ? लोग कहते हैं कि लक्ष्मी आती है तो स्वयं घर चल कर । अभय कुमार भी उसी तरह आया है । यदि किसी से मैं कहूँ कि मैं क्लब से घर लौटा तो इस मशहूर क्रांतिकारी को घर में बैठा पाया, तो कोई इस पर विश्वास नहीं करेगा । इस विचित्र घटना में तो मुझे भगवान का ही हाथ दिखता है । पत्नी की तपस्या अभय कुमार को मेरे घर खींच लायी । मेरा भाग्य अब उसे मेरे हाथ से गिरफ्तार करायेगा । पत्नी सचमुच हर मानी में सहधर्मिणी है । इस घर चल कर आये हुए प्रसाद को मैं ठुकरा दूँ तो प्रारब्ध मुझ पर हँसेगा नहीं ? ऐसी सुवर्ण-सन्धि बार-बार नहीं आती । इसका मैं लाभ न उठाऊँ तो ईश्वर के दरबार में दोषी न बनूँगा ?

दरोगा साहब के व्यक्तित्व में नौकरी के कारण पुलिस की वृत्ति और पत्नी के कारण ईश्वर की आस्था के तत्व मिले-जुले थे। दोनों ही साथ-साथ तभी जाग्रत होते जब उनका निपट स्वार्थ उलझा होता। जब ऐसा महत्व का प्रसंग आ जाता है, और गोरख-धन्धा खड़ा हो जाता है तो उसमें से मार्ग निकालने के लिए दरोगा साहब ने वही किया जो हमेशा किया करते थे—लोटा उठा कर, पाखाना चले गये। इसमें उन्हें आध-पौन घंटा जरूर लग जाता था। पर वहाँ से वे लौटते तो अपनी बड़ी-से-बड़ी समस्या का, सही हो या ग़लत, हल जरूर निकाल लाते।

ज्यों ही पति ने पाखाने का दरवाज़ा बन्द किया, पत्नी दबे पाँव उठी और अभय कुमार के कमरे में जाकर बाली—“बाबा जी, खामोश रहो, हल्ला-गुल्ला मत करो नहीं तो संकट में पड़ जाओगे। तुम कौन हो यह मैं नहीं जानती और न जानना ही चाहती हूँ। पर यदि तुम क्रांतिकारी अभय कुमार हो तो फौरन अपना तूमा उठा कर यहाँ से चलते बनो। एक मिनट की भी देर की तो तुम्हारी खैरियत नहीं—तुम्हारी गिरफ्तारी की तैयारी हो रही है। तुम मेरे अतिथि-देवता हो, पर इस समय मैं तुम्हारी सबसे बड़ी पूजा इसी तरह कर सकती हूँ कि तुमसे यहाँ से फौरन निकल जाने को कहूँ। यही मेरा धर्म है। मेरी अभद्रता के लिए क्षमा करो बाबा। और यदि तुम अभय कुमार नहीं हो, और सचमुच सन्यासी हो तो फिर यहीं जितने दिन चाहो पड़े रहो, यह घर तुम्हारा ही है”—ऐसा कह कर वह जैसे आधी थी वैसे चली गयी।

अनन्त गोपाल शेवड़े

अभय कुमार ने अपनी तूमा और लाठी उठायी और उसी क्षण हल्के पैरों घर के बाहर निकल गया । दरोगा की पत्नी ने धीमे से दरवाजा लगाया और चुपचाप राम का नाम लेकर अपने बिस्तर पर लेट गयी ।

उधर दरोगा साहब अपनी समस्या का हल निकालने में भिड़े हुए थे । इसमें देर इसलिए हो रही थी कि उनका मन उड़-उड़ कर पहले दस हजार नक़द और सर्किल-इन्सपेक्टरी के हवाई किले बनाने में मशगूल हो जाया करता था । क़िला जरा बड़ा था इसलिए उसके बनाने में देर लगना स्वाभाविक था ।



जब दरोगा साहब को मालूम हुआ कि चिड़िया हाथ से उड़ गयी तो वे बहुत झल्लाये, बहुत भड़के। गनीमत यही थी कि पत्नी पर उनका किसी प्रकार ज़रा भी शक नहीं गया। वे बोले—“ये क्रांतिकारी बड़े धूर्त होते हैं। जब मैं घर आया तभी बच्चू ने भाँप लिया कि मैं पुलिस का आफ़सर हूँ। यहाँ हम लोग सोने आये नहीं कि वह चम्पत हुआ। पर जायगा कहाँ? नागपुर की तरफ़ जा रहा होगा तो वहाँ पुलिस का ऐसा चक्रव्यूह बैठा रखा है कि म्यां उसमें से भाग नहीं सकते। बड़ा साधू बनता है!”

दरोगा साहब ने एक मिनट की भी देर नहीं की। ड्रेस चढ़ाई और मोटर साइकिल लेकर सीधे नागपुर पहुँचे—अपने अधिकारियों के पास घटना की रिपोर्ट करने। नतीजा यह हुआ कि अभय कुमार के मकान के आस-पास पुलिस की निगरानी

और घेरा अधिक मजबूत हो गया। घुघरी कांड को बीते दो हफ्ते हो चुके थे। वहाँ की जनता को उभाड़ने वाला, असली नेता अब तक नहीं पकड़ा गया था इसमें पुलिस की तौहीन थी। दिल्ली को जो साप्ताहिक रिपोर्टें जाती थीं, उनमें दो बार यह लिखना पड़ता था कि अभय कुमार को गिरफ्तार करने के प्रयत्न अभी जारी हैं। दो-एक दिन में वह यदि गिरफ्तार नहीं होता तो फिर यही बात तीसरी बार लिखनी पड़ती और गवर्नर साहब का खयाल था कि इसमें उनकी नाक कट जायगी। वे हर दिन पुलिस मुहकमे को खटखटाते और अभय कुमार की हलचलों की रिपोर्टें मँगाते ? पर जब तक वह महादेव और सतपुड़ा के जंगलों में घूम रहा था ये रिपोर्टें नदारद थीं। इससे सरकार ने यह अन्दाज़ कर लिया था कि यह शख्स निहायत खतरनाक है और इसके पकड़े जाने में कोई लापरवाही न हो। जब दरोगा साहब ने मोटर साइकिल पर आकर अभय कुमार के बारे में ताज़ी-से-ताज़ी रिपोर्ट दी तो राजधानी के पुलिस विभाग में हलचल मच गयी। फ़ौरन गवर्नर साहब को इसकी इत्तला कर दी गयी, नागपुर शहर के आस-पास ५० मील की त्रिज्या तक पुलिस को आगाह कर दिया गया। उम्मीद थी कि वह रात के समय घर पहुँचेगा इसलिए रात का पहरा बहुत सख्त कर दिया गया।

अभय कुमार को पता नहीं था कि उसके स्वागत की इतनी जंगी तैयारी हो रही है। इतना शाही स्वागत, इतना इन्तज़ाम उसके लिए हो रहा है, यह उसे मालूम पड़ता तो अपने महत्व के बारे में खयाल जरा और बढ़ जाता। आदमी अक्सर अपने

आप को कम देखता है। पर जब उसे पता चलता है कि उसके दुश्मन उसके लिए कितनी उठा-पटक कर रहे हैं, उसे कितना अधिक महत्व दे रहे हैं तो उसका भी खयाल अपने बारे में बड़ा हो जाता है। पर अभय को इन सब बातों की परवाह नहीं थी। उसका मन तो यही गवाही देता कि स्वच्छन्द विचरण के उसके दिन समाप्त हो रहे हैं। जेल के लोहे के विशाल फाटक उसे निगल लें, उसके पहले वह एक बार अपने प्रियजनों को जी भर कर देख लेना चाहता है। इतना यदि हो तो भविष्य में कुछ भी हो जाय, वह मजे से बर्दाश्त कर लेगा। क्या भगवान उसकी इतनी इच्छा भी पूरी नहीं करेंगे ?

मध्य-रात्रि के कुछ देर बाद ही उसने दरोगा साहब का घर छोड़ा और सीधा रेल की छोटी लाइन के किनारे-किनारे नागपुर की तरफ बढ़ चला। पक्की सड़क उसने छोड़ दी क्योंकि वह जानता था कि उसी पर पुलिस की मोटरें आया-जाया करती है। जब सड़क और रेलवे लाइन पास-पास आ जाया करतो तो वह दोनों को छोड़ कर दूर खेत में चला जाता। कृष्ण पक्ष की अँधेरी रात थी और रास्ता नहीं सूझता था। पर वह अब रात में पैदल चलने का आदी हो गया था इसलिए पहले जैसी तकलीफ नहीं होती थी। पैरों में जूते नहीं थे। खेतों के डंठल और मेंडों के काँटे चुभते। कहीं-कहीं कीचड़ में फँस जाता। पैरों से खून निकलने लगता। कभी-कभी तो लड़खड़ा कर गिर पड़ता, लाठी भी हाथ से छूट जाती। काँटों में उलझ कर उसकी कफ़नी भी फट जाती। पर इन सब बातों की उसे परवाह नहीं थी। जैसे वे सब किसी और आदमी पर बीत रही हों। उसकी आँखों

के सामने अब केवल माँ और विजया की सजल मूर्ति ही दिखायी देती। कर्णा और वेदना की साक्षात् प्रतिमाएँ !

इन दो स्त्रियों ने उसे कितना प्रेम, कितना ममत्व दिया था। और उसके लिए उन्हें कितना सहन करना पड़ा। उनका यही दुर्भाग्य था कि वे एक गुलाम देश में पैदा हुईं और उनके जीवन की डोर ऐसे व्यक्ति से बँधी जो उस गुलामी को तहस-नहस करने के लिए अपना सब कुछ दे देने को नैयार हो। किन्तु इस हत-भाग्य देश में उनके जैसी स्त्रियाँ वे अकेली नहीं हैं। इन डेढ़-दो सौ वर्षों की गुलामी के काल में इस देश में कितने हुतात्मा पैदा हुए, कितने शहीद ! मंगल पाण्डे, रानी लक्ष्मीबाई, ताँतिया टोपे से लेकर चाफेकर, खुदीराम बोस, चन्द्रशेखर आज़ाद, रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकुल्लाह, जतीनदास, भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु तक देश के लिए सिर कटवाने वालों की जैसे उज्ज्वल परम्परा ही कायम हो गयी हो। उनके मार्ग अलग-अलग हों, पर ध्येय एक ही था ! एक ही धुन, एक ही मस्ती, एक ही दीवानापन ! क्या उनके घर की स्त्रियाँ बिलख-बिलख कर नहीं रोयी हैं ? क्या उन्हीं के आँसुओं के जल से भारत की कर्णाद्र नदियों में समय-समय पर बाढ़ें नहीं आयी हैं ! उनके असीम, अनिवर्चनीय दुःख की कल्पना कौन कर सकता है ? वे प्रातः स्मरणीया, पूजनीया स्त्रियाँ, जिनके पुरुषों ने अपने आत्म-बलिदान से, अपने शरीर के तरुण रक्त से स्वतन्त्रता देवी के चरणों में अभिषेक किया—उन्हीं की उदात्त परम्परा में, उन्हीं की देदीप्यमान पंक्ति में माँ और विजया, तुम दोनों ही बैठने वाली हो ! तुम्हारे इस परम सौभाग्य पर, अपने

ज्वालामुखी

हृदय के इन अविरत अनन्त आँसुओं के बावजूद, ईर्ष्या करने से
मैं अपने आपको कैसे रोक सकता हूँ ?



दरोगा साहब जब मोटर साइकिल पर बैठ कर नागपुर के लिए रवाना हो गये तो उनकी पत्नी झटपट उठ कर हाथ-मुँह धोकर, अपने ठाकुर जी के पास गयीं और धरती पर अपना सिर नमा कर, हाथ जोड़ कर बोलीं—“आज तुमने मेरे घर को कलंक से बचा लिया भगवान् ! जो अतिथि मेरे आश्रय में आया था वह यदि मेरे ही यहाँ हत्यारों के हाथ में सौंप दिया जाता तो मैं कहीं की नहीं रह जाती। मुझे तो फिर आपके सामने पत्थर पर सिर फोड़ कर मर जाने के सिवा और कुछ नहीं बचता। और यह भी तुम्हारी कैसी लीला है कि इस निरपराध निर्मल तरुण तपस्वी के पीछे पुलिस इस तरह ऐसे पड़ी है, जैसे वह एक खूँवार जानवर हो और उसकी जान लिये बगैर शांति नहीं हो सकती। उसका दोष ही क्या है जो वह अपने ही घर में पराया, अपने ही देश में बागी, अपने ही देशवासियों

ज्वालामुखी

द्वारा पिछाया जाकर दर-दर भटक रहा है। यही न कि वह चाहता है कि उसकी मातृभूमि स्वतन्त्र हो, उस पर से विदेशी राज हट जाय ताकि इस देश के लोग इज्जत-आबरू के साथ अपने घर के मालिक बन कर रह सकें, और उनके पेट को खाना, तन को कपड़ा और सिर पर छप्पर मिल सके ! गांधी महात्मा भला इससे अधिक और क्या चाहते हैं ? और इस देश में ऐसा अभागा कौन है जो यह नहीं चाहता ! फिर ऐसा क्यों होता है कि इस कोमल तरुण के पीछे ही सरकार हाथ धोकर पड़ी है और बाकी हम सब आराम और चैन की जिन्दगी काट रहे हैं ? यह कैसी पहेली है भगवन ! कैसी विडम्बना !

दरोगा की पत्नी ने अपनी रुद्राक्ष की माला निकाली और वह अभयकुमार की सुरक्षा के लिए जप करने लगी। उस समय रात के ढाई बजे थे।



दोपहर के डेढ़-दो बजे थे । उस समय वातावरण जरा शांत रहता है । लोग अपने काम-काज में लगे रहते हैं और जिन्हें काम-काज नहीं होता वे घर में आराम करते पड़े रहते हैं । अभयकुमार की माँ तथा विजया भोजन करने के बाद विश्राम कर रही थीं । माँ की आँखें बन्द थीं, पर नींद नहीं लगी थी । इतने में बाहर से आवाज आयी—

“साधू को भिक्षा मिलेगी माँ !”

आवाज सुनते ही माँ चौक पड़ीं । यह आवाज परिचित-सी है या यह केवल उनका भ्रम है ? वे हड़बड़ा कर उठ बैठीं और बाहर की तरफ भागीं । देखा—

सामने फटे और मैले कपड़े पहने तूमा लिये एक साधू खड़ा है और उसकी आँखों से पानी बह रहा है ।

“कौन अभय ?”

“हाँ माँ, पर इस समय कुछ मन बोलो। मुझे अन्दर आने दो। बाहर शायद खुफिया खड़ी है—”

ज्योंही अभयकुमार भीतर घुसा, माँ ने दरवाजा बन्द कर दिया और अभय को छाती से लगा लिया। दोनों के हृदय का आनन्द या दुःख, जो भो हो, पानी बनकर भर-भर बहने लगा। विजया भी दौड़े-दौड़े आयी। दृश्य देख कर वह भी गदगद हो गयी। अभय ने उसे भी अपने पास खींच लिया।

तीनों व्यक्ति कुछ न बोले। भावनाओं के आवेग के कारण उनका कण्ठ रुँध गया। पर तीनों के हृदय में आनन्द की एक अद्भुत दीप्ति, एक अपूर्व समाधान और शांति, एक सौम्य आभा जगमगा रही थी।

इतने में बाहर सीटी की कर्कश आवाज़ सुनायी पड़ी।

“पुलिस !” माँ घबड़ा कर बोली, “अब क्या होगा अभय ?”

“अब जो भी हो जाय माँ, उसकी मुझे चिन्ता नहीं है। तुम दोनों को, गिरफ्तार होने के पहले, आँखें भर कर देख लिया—अब मुझे किसी बात की परवाह नहीं है। पुलिस न आती तो शायद मैं स्वयं थाने पर चला जाता—” अभय ने कहा।

“जबर्दस्ती गिरफ्तार होने से फ़ायदा !”

बाहर का काम अब समाप्त हो गया है। गिरफ्तारी टालना चाहूँ तब भी असंभव है। और आखिर मैं गिरफ्तारी बचाने की क्यो कोशिश करूँ ? मैंने ऐसी कोई बात नहीं की जिसकी शर्म लगे। सत्याग्रही तो वही है जो अन्त तक सत्य-पथ

पर चले । जो किया है उसके लिए मैं कोई रियायत नहीं चाहता । जो नहीं किया है उसे इन्कार कर दूँगा । इसके बाद जो नतीजा हो उसे सहर्ष सहन कर लूँगा । ”—अभय ने कहा ।

अभय की दृढ़ता माँ और विजया के लिए भी संक्रामक साबित हुई । चिन्ता का बोझ कुछ कम हुआ ।

इतने में बाहर पुलिस की मोटरों की घरघर सुनायी दी । पोंच-छः लारियों में बन्दूक और संगीन छिये सिपाही आ धमके और मकान के चारों तरफ घेरा डाल दिया । बाहर के दरवाजे पर जोरों की भड़भड़ाहट सुनायी दी ।

अभय ने उठकर स्वयं दरवाजा खोला तो देखा—

हाथ में पिस्तौल लिये डिण्टी साहब उस पर झपट पड़ने के पैतरे में खड़े हैं । अभय को देखते ही वह उस पर लपक ही तो पड़े ।

“इतना सब नाटक करने की क्या जरूरत है ? आप क्या चाहते हैं ? ” अभय ने शांत भाव से कहा ।

“हूँ नाटक ! क्या तुम्हारा ही नाम अभय कुमार है ? ” डिण्टी साहब ने कड़ी आवाज में पूछा ।

“जी हाँ । ”

“तो तुम गिरफ्तार कर लिये गये हो । तुम्हें फौरन हमारे साथ चलना होगा—अब बच कर कहाँ जाओगे ? ”

“बचकर कहीं जाने की बात ही क्या थी ? आप थोड़ी देर न आते तो मैं खुद थाने पर आ जाता ।

“थाने पर आ जाता ! हूँ ! जतल करनेवाले कभी थाने पर जाते हैं ? ” डिण्टी साहब ने अविश्वास के साथ, तिरस्कार करते

हुए कहा, “थाने को आना होता तो जनाब इतने दिन पुलिस को चकमा देकर नहीं भागते फिरते । पर हम भी एक हैं कि तुम पर अपना पंजा डाल ही तो दिया ।”—डिण्टी साहब ने ज़रा अकड़ कर कहा ।

माँ ने विजया को इशारा किया और वह देव-गृह से पूजा की थाली ले आयी । माँ ने डिण्टी साहब से कहा—

“ज़रा एक मिनट ठहर जाइए ! मैं इसे कुंकुम तो लगा दूँ—”

माँ ने अभय के हाथ पर दही रक्खा । उसे कुंकुम लगा कर, नीरांजन जला कर उसकी आरती की और उसके सिर पर अक्षत फेंकी । अभय ने झुक कर माँ के पैर छू लिये । माँ का हृदय द्रवित हो कर जैसे आँसुओं के रूप में आँखों में उतर आया । बची हुई अक्षत के कणों को अभय के पीछे खड़े हुए तीन-चार पुलिस अफसरों के सिर पर फेंकती हुई बोली—

“तुम भी मेरे देशवासी हो । ईश्वर तुम्हारा भी मङ्गल करे—”

आशीर्वाद की इस अमृत-वर्षा के आगे पुलिस वाले भी लजा गये । उनकी सख्ती कम हो गयी । अब कुछ अदब के साथ बोले—

“चलिए साहब ! देर हो रही है ।”

अभय कुमार ने चलने के पहले विजया की तरफ देखा ।

वह करुणा की मूर्ति बनी, सिमटी सी एक कोने में गुमसुम खड़ी थी । अपने समस्त प्राणों को आँखों में संचित करके वह अपने प्राणेश्वर को देख रही थी । उसकी आँखें मानों यही कह

अनन्त गोपाल शेवड़े

रही थीं कि इस बार जितना देख सकूँ, देख लूँ । फिर जाने कब देख सकूँगी ?

अभय उस मूर्ति की आभा अन्त तक नहीं भूल सका ।

अभय कुमार जब मोटर में बैठा तो उसके मन में एक विचित्र प्रकार का समाधान था । विषाद हट गया था—एक अपूर्व उल्लास ने उसकी जगह ले ली थी । अपने प्रियजनों को देखने की उसकी दुर्दम अच्छा पूरी हो गयी थी और अब वह भावी का मुकाबला करने के लिए हर तरह से तैयार था ।

मोटर की घर-घर शुरू हुई, उसी समय बादलों में भी कुछ गड़गड़ाहट हुई । काले मेघ घिर आये और कुछ बूँदा-बोंदी भी हुई । अभय को लगा कि उसके अन्तर के दाह को तृप्ति करने के लिए ही मानो उनका आगमन हुआ है ।



अभय कुमार की गिरफ्तारी का समाचार फ़ौरन आई० जी० साहब ने गवर्नमेंट हाउस में पहुँचाया । सारे समाचार पत्रों को तत्काल खबर दी गयी, जिन्होंने दूसरे दिन बड़े-बड़े हेडिंगों में छापा—“भयंकर क्रान्तिकारी की गिरफ्तारी !”—“अपने घर में प्रवेश करते ही पुलिस का फौलादी पंजा !” “धुधरी काण्ड का नेता गिरफ्तार—पुलिस की सुनैदी ! पुलिस का बाँका चक्र-व्यूह !”—आदि आदि । उन दिनों पुलिस का असर सब क्षेत्रों पर था—अखबारों पर भी जबर्दस्त सेन्सरशिप लगी हुई थी । ऐसी खबरें तो पुलिस के नुब्रते नज़र से ही दी जातीं । पुलिस के तार चारों तरफ़ गये । सब बड़े-बड़े ज़िला साहबों को भी सूचना दे दी गयी । आज हुकूमत ने एक बहुत बड़ी विजय पायी थी । उसी की शोहरत का नशा उन पर छाया हुआ था ।

अभय की गिरफ्तारी का माँ पर बुरा असर पड़ा, क्योंकि वह खून के मामले में पकड़ा गया था। उन्हें एक धक्का-सा लगा। आन्दोलन शुरू होने के प्रारम्भ में ही सबके साथ उसकी गिरफ्तारी हो जाती तो उन्हें इतना हर्गिज न अखरता। पर पुलिस के पोस्टरों में जो बातें लिखी गयी थीं और उसकी गिरफ्तारी के लिए सारी पुलिस की मशीनरी जिस तरह भाग-दौड़ कर रही थी, उसे देखते हुए उसका दिल आशंका से भर गया। लक्षण अच्छे नहीं दिखायी पड़ते ! उसका मन भीतर-ही-भीतर कहता था कि कोई अनहोनी घटना होने वाली है। माँ ने बिस्तर पकड़ लिया और लेटे-लेटे तुलसी माला लिये जप-प्रार्थना किया करती।

विजया भी अब मौन सी हो गयी। वह जो कुछ भोगती मन-ही-मन, चुपचाप ! माँ और विजया के बीच में बातचीत

ज्वालामुखी

कम होती थी। पर वे एक दूसरे का दुख जितना पहचानती थीं, उतना कोई नहीं पहचानता था।

दीनबन्धु का उनके यहाँ नियमित रूप से आना-जाना होता। शांता तो जब से खाप्री के स्टेशन पर अभय से बिदा हुई थी तब से बराबर विजया के यहाँ आया करती। वह उनके परिवार का एक अंग बन गयी थी। उसके गुण नाम के ही अनुसार थे। वह आती तो सचमुच् घर में बड़ी शांति, बड़ी राहत हो जाती। अभय कुमार के लिए उसके मन में जो अपार श्रद्धा थी, वह अभय के प्रियजनों की अकृत्रिम सेवा में व्यक्त होती।



अभय को सीताबल्डी के पुलिस थाने में बन्द कर दिया गया। वह एक गन्दी हवालात थी जहाँ पेशाब की बदबू फैली हुई थी। सोने के लिए एक टाट-पट्टी और काला कम्बल दे दिये गये।

ज्योंही हवालात का दरवाजा बन्द हुआ और उसमें बड़े-बड़े ताले डाल कर सिपाही ज़रा हट गये तो अभय उसी कमरे में घुटने टेक कर प्रार्थना करने के लिए बैठ गया और ज़मीन पर माथा टेक कर बोला—‘हे मातृभूमि ! यह जो कुछ है सो तेरी ही सेवा में अर्पण है। मुझे शक्ति दो माँ, कि भविष्य में मुझे जो भी भोगना पड़े, उसे मैं सहन कर सकूँ। मेरे प्राणों की आहुति देकर भी यदि तेरी मुक्ति हो सके तो उसके लिए भी तेरा यह बालक तैयार है।’

इसके बाद उस अँधेरी, गन्दी, बदबूदार जगह में भी वह

इस तरह सोया जैसे सौदागर घोड़े बेच कर सोते हैं। पाँच मिनट के भीतर ही वह खुराँटे लेने लगा। संतरी भी देख कर दङ्ग रह गये। क़तल के मामले में गिरफ़्तार-शुदा मुलज़िम को इतना बेलाग उन्होंने कभी नहीं देखा।

सुबह जब आठ बजे तक भी वह नहीं उठा तो हवालात के दरवाज़े की लोहे की छड़ों में से लम्बा बाँस डाल कर उसे कोच कर उठाया गया। और जब उसे प्रातः कर्मादि के लिए दोनों हाथों में हथकड़ियाँ डाल कर बाहर निकाला गया तो सूरज के प्रकाश की चकाचौंध के कारण उसने फ़ौरन आँखें मूँद लीं। अब वह अँधेरे का आदी हो गया था। अँबेरा ही उसका सगा-संगी था। प्रकाश से वह अपनी दोस्ती खो बैठा था।

ग्यारह बजे के करीब फिर बन्दूकों और संगीनों के पहरे में काली मोटर लारी में बिठा कर उसे सेन्ट्रल जेल पहुँचाया गया। जब फाटक पर उसकी 'आमद' लिखी गयी, नाम, हुलिया, शरीर पर के निशान आदि दर्ज हुए और जेल का फाटक उसे अन्दर समा कर फिर बन्द हुआ तो उसके मन में यह विचार आये बिना नहीं रहा कि जाने यह फाटक उसे बाहर निकालने के लिए कभी खुलेगा या नहीं? एक ज्ञात और परिचित दुनिया से वह एक अज्ञात और अपरिचित लोक में प्रवेश कर रहा था। वहाँ क्या है, क्या नहीं है, वहाँ से कोई लौट कर आता है या नहीं, यह उसे कुछ नहीं मालूम था।

उसे एक दीवाल, दूसरी दीवाल, तीसरी दीवाल लाँघ कर फाँसी घर के गुनहवाने में लाकर बन्द कर दिया गया। हवालात की गन्दी, काली कोठरी के मुकाबले में उसे यह राज-महल

अनन्त गोपाल शेवडे

जैसा स्वच्छ और सुन्दर मालूम हुआ। लोहे के सीकचों में से उसने घूर कर देखा तो आसपास फूलों के हरे पौधे लहलहाते दिखायी दिये। उन्हें देख कर वह मुसकरा दिया और फिर लम्बे पाँव तान कर सो गया तो छत्तीस घण्टे तक नहीं उठा। बीच में एकाध बार पानी पीने के लिए उठा सो घड़ा भर गटगट पीकर फिर सो रहा। शरीर तथा मन इतना थका था, और इस छोटी सी कोठरी में संतरियों के सतत पहरे में वह अपने आपको इतना सुरक्षित पा रहा था कि खूब निश्चित होकर सोया। ऐसा सोया, ऐसा सोया कि जैसे आनन्द की तूर्य-समाधि में लीन हो गया हो। जेलर और सुपरिंटेण्डेंट आये, डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट, जी० आई० जी०, आई० जी०, आदि बड़े-बड़े कर्मचारी आये और उसे देख गये। पर उसे इन सबकी कोई खबर नहीं थी। गवर्नर साहब की पत्नी ने भी जेल में एक भेंट देकर इस प्रसिद्ध क्रान्तिकारी को देखने की इच्छा की लेकिन गवर्नर साहब ने उसे टाल दिया। सब उसे देखने आते जैसे वह कोई अजायब घर का प्राणी हो पर उसे इस सब कुतुहल और कोलाहल का कोई पता नहीं। वह तो अपनी निद्रा में तल्लीन था। उसके स्वस्थ, गठीले, गोरे शरीर पर काली डाढ़ी बड़ी भली लगती थी। जेल के पहरेदार वार्डर बोले कि कोई स्वराजी महात्मा जेल में आया है। एक ने तो आसपास देख कर यह भरोसा करके कि उसे कोई नहीं देख रहा है, उसके गुनहखाने के फाटक पर जमीन को हाथ लगा कर दंडवत भी कर डाला।

जिस समय अभय गिरफ्तार हुआ, उस समय भी राज-बन्दियों को समाचार पत्र नहीं दिये जाते थे, पर छिपा-चोरी शक्कर की पुड़िया में बँधा एकाध अखबार आ ही जाता, जिसे सारे राजबन्दी इतनी छान-बीन के साथ पढ़ते जैसे वह प्रेम पत्र हो। उस समय जेल के नियम बहुत सख्त और कड़े थे। पर उन्हें भंग करने में जेल के वार्डर और कर्मचारी ही अधिक मदद किया करते थे। एक तो उन्हें राजबन्दियों के साथ सहानुभूति थी। दूसरे कई राजबन्दी बड़े प्रभावशाली और धनिक थे, जिनकी थोड़ी-बहुत सेवा कर दी तो मेवा भी मिल जाता था। जो जितना धनिक, उसे उतनी ही अधिक सेवा की जरूरत। उसका शरीर तो जेल में रहता, पर मन तो संसार और घर-गृहस्थी में इतना उलझा हुआ होता था कि पद-पद पर उसे बाहरी जीवन की याद आती और कष्ट होता। इसलिए

छोटी-मोटी बातों में भी उसे जब तक बाहर के समाचार नहीं मिलते तब तक दिल शांत नहीं होता। ऐसे लोगों की चिन्ही-चपाती बराबर चला करती और इस प्रकार विशेष डाक का संचालन काफ़ी महँगा पड़ता। पर ऐसे लोगों के लिए पैसा कोई चीज़ नहीं थी। उन्हें रह-रह कर यही रंज होता था कि बाहर काला-बाज़ार और व्यापार में तो इस समय लक्ष्मी बह रही है। उन्हें यदि इस समय छोड़ दिया जाय तो वे देखते-देखते लाखों के आसामी हो जायँ और आन्दोलन को हजारों रुपयों से मदद करें। उनका सारा ध्यान यह जानने में खर्च होता था कि लड़ाई कब बन्द होगा और समझौता कब होगा। उनकी रिहाई का भविष्य बता-बता कर तो उनके राजबन्दी दोस्त हर दो-चार दिन में हलुआ-पूड़ी की दावत पर हाथ मारते। गेहूँ के साथ धुन भी पिस जाता है, उसी के अनुसार सच्चे देश भक्तों के साथ यह नकली माल भी आ गया था। जब तक ये जेल में रहे, ऐसे अटपटाए ऐसे अकबकाए कि कहीं बेचैनी से प्राण न निकल जायँ यह डर लगता था। पर जब खुदा-न-खास्ता सही-सलामत रह कर बाहर निकले तो सबसे सफ़ेद खद्दर इन्हीं के बदन पर रहता। इस्त्री की हुई सफ़ेद टोपी इस टेढ़े लहजे से लगाते कि सारी क्रान्ति इन्हीं के बल पर चली हो। चाहे-अनचाहे जेल जाने का जो 'पराक्रम' उनके हाथ से हो गया था, उसमें उनकी इच्छा-शक्ति की बजाय पुलिस की ज़रूरत से ज्यादा सतर्कता और सनक जिम्मेदार थी। ऐसे महानुभाव, जेल में रहे तो क्या और बाहर रहे तो क्या? उनका जो भी कुछ बनता बिगड़ता हो, पर देश या क्रान्ति का

क्या बनता बिगड़ता था ! यदि अन्दर नहीं आते तो शृंखला की एक भी कड़ी कमजोर नहीं हो पाती । उनकी दुर्बलता ही सोंकल की दुर्बलता बन जाती ।

और अब छूटे तो ऐसे लगता, जान बची लाखों पाये । ओफ़, बच गये, बिलकुल बाल-बाल बच गये ! अब जनाब जबर्दस्ती लादे गये इस त्याग की वो कीमत वसूल करते, वो वसूल करते कि सच्चे क्रान्तिकारियों का तेज भी फीका पड़ जाता । खाली ढोल ही तो सबसे अधिक आवाज करता है ।

पर इसके विपरीत ऐसे कई युवक कार्यकर्ता थे जिन्होंने आगा देखा न पीछा, और क्रान्ति में कूद पड़े । उनके पास हिसाब नाम की कोई चीज़ नहीं है । प्रेम के साम्राज्य में भी लाभ-हानि का क्या लेखा-जोखा ? फिर वह प्रेम व्यक्ति-व्यक्ति के बीच हो, या व्यक्ति का देश, धर्म या ईश्वर के प्रति हो । प्रणय के राज्य में जो विचरण करते हैं वे कभी गणित लगाते हैं ? यदि भाँसी की रानी हिसाब लगाती तो वह अंग्रेज़ी हुकूमत की आश्रित हो कर, जैसा कि अन्य रजवाड़े हो गये थे, मज़े में राज करती, और सुख और चैन से जिन्दगी बिताती । हिसाब की होली करके ही वह जीवन की होली कर सकी । मीराबाई राज-पाट छोड़ कर अपने प्यारे गिरिधर नागर के पीछे दीवानी बन कर भटकती रही तो उसके पीछे गणित की कौन सी प्रेरणा थी ? सुकरात यदि अपनी आत्मा को खामोश रख कर अपने पतित युग के तर्क को मान लेता तो उसे जहर का प्याला क्यों पीना पड़ता ? ईसा यदि अपने क्षणिक—एवं भौतिक सुख का जमा-खर्च गिनता तो सुली पर क्यों टँगता ? समय के कालीन पर जिनके पद-

चिन्ह उभरे हैं, और इतिहास जिनकी चर्चा करने में गौरव अनुभव करता है, उन्होंने जीवन के साथ कभी खाता-बही नहीं खोली। उनकी एक उदात्त प्रेरणा आत्मा की एक अमिट पुकार, उनके दृष्ट का अज्ञात आह्वान उनके लिए काफ़ी था। उसी के आमन्त्रण पर वे इस शरीर-रूपी जीवन में आये और धूमकेतू की तरह क्षण भर के लिए ही चमक कर, अपनी दिव्य ज्योति से सारे विश्व को जगमगा कर, चले गये। उनकी स्मृति विश्व को शताब्दियों तक आशा और चैतन्य देती रही और देती रहेगी। वे एक आग लेकर आये थे और अपने शरीर को ही उस आग में लगाकर चले गये। वे मर कर भी अमर हो गये। उनकी परम्परा दुनिया से उठी नहीं है, इसीलिए दुनिया भी टिकी है, नहीं तो कब का प्रलय हो जाता।

ऐसे दिव्य धूमकेतुओं की प्रेरणा ही अगस्त-क्रांति के कितने ही युवकों को अनुप्राणित किये हुए थी। उनमें ऐसे लोग थे जिनका रोज़मर्रा की राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं था। वे विद्यार्थी थे, अध्यापक थे, छोटे-मोटे व्यवसायों में काम करने वाले दीनबन्धु की तरह, रोज़गारी थे, साधारण कार्यकर्ता थे, जो स्वयं-सेवकों की श्रेणी के निकट और नेताओं की श्रेणी से दूर थे। ऐसे लोगों में अधिकांश महिलाएँ थीं। उनकी भक्ति, सच्चाई और तेजस्विता अत्यन्त निर्मल थी, पवित्र थी। बड़े-बूढ़े नेता लोग इन्हें सलाह देते थे कि भाई वक्त बड़ा बुरा है, सोच समझकर और सम्हलकर काम करो। पर उनका प्यारा गीत होता—

सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।

देखना है जोर कितना बाजुएँ कातिल में है।

उम्र के बड़े, सयाने, समझदार लोग उनसे कहते—“पागल ! कच्ची उम्र है, इसलिए ऐसा करते हैं । ज़रा बड़े हुए और समझ पायी कि हम जैसा ही करने लगेंगे ।”

ज्यों ही अभयकुमार को गिरफ्तार करके लाया गया, उसकी खबर सारे जेल में फैल गयी । भिन्न-भिन्न वर्गों को मिलाकर, उस समय सेन्ट्रल जेल में बारह सौ राजबन्दी थे । सारी जेल क़रीब-क़रीब उन्हीं से भरी पड़ी थी । उनके लिए जगह की आवश्यकता के कारण कई लम्बी मियाद वाले अपराधी (क्रिमिनल्स) छोड़ दिये गये थे । ‘ए क्लास’ के राजबन्दियों की बैरक फौसी घर से लगी हुई थी । पर उन दोनों के बीच इतनी उँची दीवारें थीं कि बड़ी मुश्किल से यहाँ की आवाज़ वहाँ सुनायी पड़ती । हाँ, राजबन्दियों की सायंकाल और प्रातःकाल की प्रार्थना के स्वर अभयकुमार को अवश्य सुनायी देते, और सायंकाल की प्रार्थना की अपेक्षा प्रातः-काल की प्रार्थना अधिक स्पष्ट, अधिक हृद्य, अधिक मंगलमय लगती । उन दिनों संत विनोबा उन्ही जेल में थे । उनके संचालन में की गयी प्रार्थना से अभयकुमार के दिल को बड़ी शांति मिलती, बड़ा समाधान प्राप्त होता ।

उसकी गिरफ्तारी के तीसरे दिन ही एक फटा-गला परचा किसी वार्डर ने लाकर उसके हाथ में दिया जिसमें पैंसिल से लिखा था—

हे वीर-शिरोमणि ! हम आपका श्रद्धापूर्वक स्वागत करते हैं । आपके त्याग और तपस्या के हम कायल हैं । आपके सुख-दुख में हम सदैव आपके साथ हैं । आपकी महानता के लिए

अनन्त गोपाल शेवड़े

हम आपको आदर पूर्वक नमस्कार करते हैं—

हम हैं—

सेन्ट्रल जेल के राजबन्दी !”

कागज़ के इस छोटे से खूँके को पढ़कर अभयकुमार को बड़ा सुख मिला । उसे लगा कि वह अकेला नहीं है । अकेलेपन की भावना ही मनुष्य को कमज़ोर बना देती हैं । उसकी ओर न जाने कितनी अज्ञात आँखें लगी हुई हैं । न जाने कितने अज्ञात हृदयों की स्नेहभावना और आशीर्वाद उसके साथ हैं । इतनी बड़ी निधि पाकर, मानव-मन का यह अतुल वैभव पाकर वह क्यों न आनन्द और उल्लास से फले-फूले ! उसकी मस्ती देखकर वार्डर और जेल के अधिकारी दंग रह जाते थे ।



जेल में दाखिल होने के सात दिन के भीतर ही अभयकुमार के खिलाफ चालान पेश कर दिया गया और मुकदमा शुरू हुआ। एक विशेष सरकारी गजट द्वारा श्री० चौधरी महाशय, स्पेशल मैजिस्ट्रेट नियुक्त किये गये। इन्हीं के बच्चों को वह पढ़ाया करता था। जेल के भीतर ही एक कमरे में अदालत भरा करती थी। पुलिस सरकारी वकील, उनके गवाह आदि बिलकुल तैयार थे। नाटक के अगले सब अंकों की तैयारी पहले से ही कर ली गयी थी। बस पहले ही अंक की यानी अभय की गिरफ्तारी की देर थी। वह जब तक नहीं हुई थी तब तक पर्दा उठ भी नहीं सकता था। पर उसके गिरफ्तार होने के एक हफ्ते भर के भीतर ही खेल शुरू हो गया।

अभयकुमार के खिलाफ जो चालान पेश किया गया, उसमें उस पर बहुत ही संगीन इलजाम लगाये गये थे। घुघरी

के सर्किल इन्स्पेक्टर लाला बापूराम और मुन्शी मुन्नु खाँ की हत्या का तथा अज्ञान जनता को उसके लिए भड़काने का जुर्म तो उस पर था ही। पर उसके बम्बई से लौटने के बाद तथा कार्य-क्रम के परचों को बाँटने के बाद जितनी हिंसा की घटनाएँ हुई, उन सबको जिम्मेदारी उस पर थोपी गयी थी। जब तक जनता जाहिल है, समझती-बूझती नहीं तो उसे भड़काने वाले नेता का अपराध और भी संगीन हो जाता है। इनमें से एक भी जुर्म साबित हो गया तो फाँसी की सजा पक्की थी। पर यहाँ तो इस तरह के तीन-चार जुर्म थे। जिनमें हरेक में फाँसी की सजा दी जा सकती थी। इसलिए मुकदमे को पहले से ही एक सनसनीदार गम्भीर स्वरूप प्राप्त हो गया था। यह तो निश्चित सा जान पड़ता था कि इस या उस दफ्ता के मुताबिक अन्तिम दण्ड ही दिया जायगा।

मुकदमा पेश होते ही सारे शहर और प्रदेश में सनसनी मच गयी। अभियुक्त का कानूनी बचाव करने के लिए वकीलों की बड़ी-बड़ी कमेटियाँ बनीं। फ़ण्ड खोला गया जिसमें बड़े-बड़े गुप्त दान दिये गये। वकील-बैरिस्टर्स में अभयकुमार का वकालतनामा पाने की होड़ लगने लगी। बड़ी दौड़-धूप शुरू हो गयी। पर इस सब का अभयकुमार पर कोई असर नहीं पड़ा। उसने बचाव का वकील देने से ही इनकार कर दिया। वह वृत्ति से सत्याग्रही था। निश्चय था कि जो सत्य है, वही वह कहेगा, और जो सत्य नहीं है, उसे इनकार कर देगा। इसके बाद जो फैसला हो सो हो। जो उसने किया था, उसके लिए बचाव देने की उसकी इच्छा नहीं थी। जो नहीं किया है, उसके

लिए बचाव की जरूरत नहीं थी। फिर इसमें वकीलों की क्या जरूरत है ?

वकीलों ने कहा, “आपको कानूनी किताबों और तरीकों का ज्ञान नहीं है, इसलिए हो सकता है कि मुकदमा बिगड़ जाय। और चूँकि इसमें प्राण-दण्ड की सजा तक हो सकती है, सावधानी लेना हर तरह आवश्यक है। हम आप से कोई फीस थोड़े ही लेंगे ! सारा खर्च बचाव फण्ड में से होगा।”

अभयकुमार ने कहा, “कानून की किताबें क्या हैं ? सत्य तक पहुँचने का ही तो मार्ग बताती हैं। सत्य की उपासना किताबें पढ़ कर नहीं होती। यह तो न्यायालय का कर्तव्य और धर्म है कि वह घटनाओं की छान-बीन करके स्वयं सत्य की आत्मा के पास पहुँचे,—इसमें मैं मदद भी करूँगा।”

“पर साहब, आप तो जानते हैं कि यह पोलिटिकल मामला है। अंग्रेजी राज्य से ही आपने लोहा लिया है। अदालत भी उन्हीं की है। और बातों में वे न्याय-प्रिय भले ही हों, पर सियासी मामलों में तो उनकी साम्राज्यवादी नीति पहले आती है न्याय बाद में। और आप तो जानते हैं कि जर्मनों की बममारी और लड़ाई की मुसीबतों के कारण उनको खयाल है कि भारत के नेताओं ने उनकी पीठ में खंजर भोंका है, उनका मूड और बैलेन्स बिगड़ गया है। इसीलिए कानूनी मदद की सिफ़रिश कर रहा हूँ,” बैरिस्टर साहब ने कहा।

“मैं आपकी भावना की कद्र करता हूँ बैरिस्टर साहब ! मैं मानता हूँ कि आप मेरे ही हित में सलाह दे रहे हैं। कानूनी मदद पर आपका इतना भरोसा है, वह भी गौरवास्पद है,

अनन्त गोपाल शेवडे

आपके धन्वे के अनुकूल है। पर आप ही बताइए कि इतनी बड़ी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पृष्ठभूमि पर यह मुकद्मा चलेगा तो उसके आगे कानून की किताबों की भला क्या चलेगी? मैंने जो कुछ किया है, कानूनी किताबों को पढ़ कर नहीं किया है, स्वयं अपनी प्रेरणा से किया है। जो मुझे सत्य लगा, शिव लगा और सुन्दर लगा, उसी की मैंने उपासना की है। ऐसी प्रेरणा पुस्तकों से नहीं मिला करती, प्रत्यक्ष जीवन से ही मिलती है। इसलिए और किसी समय में, और किसी मामले में आपकी किताबे धन्वन्तरि का चमत्कार दिखा सकती हों, पर इस मामले में कतई नहीं। आप मुझे माफ़ कीजिए और मुझे अपने भाग्य पर ही छोड़ दीजिए। आप गुरुजन हैं, मुझसे विद्वान हैं—यही आशीर्वाद दीजिए कि मैं सत्य के पथ पर अन्त तक अडिग बना रहूँ।”

“—बैरिस्टर साहब ने अपने काले कोट की जेब से सफ़ेद रुमाल निकाला और पसीना पोछकर किताब बन्द कर दी। ऐसा मुजरिम, ऐसा मवक्किल उन्होंने कभी देखा नहीं था। सिर्फ़ इतना ही कहा—“जो आपकी मर्जी!”

अभय ने बचाव नहीं दिया, इस कारण मुकदमे की खबर सारे देश में फैल गयी। अब तक चूंकि आन्दोलन की स्थिति काबू में आ गयी थी, अखबारों के बंधन शिथिल कर दिये गये थे और सारे राजबन्दियों को भी जेलों में अखबार मिलने लगे थे। इस मुकदमे की कार्रवाई आगाखाँ के महल में तथा अहमदनगर के किले में भी पढ़ी जाने लगी। अभयकुमार ने कानूनी सलाह लेने से इनकार करते हुए जो तर्क उपस्थित किया था, उसकी भी समाचार पत्रों में बड़ी चर्चा हुई। लोगों ने कहा, वाकई यह मुकदमा तो कुछ अजीब-सा, असाधारण-सा जान पड़ता है।

अदालत बराबर ठीक साढ़े दस बजे से शाम के साढ़े चार बजे तक बैठती। बीच में आध घंटे के लिए चाय-पानी के लिए उठती। अभयकुमार के दोनों हाथों में हथकड़ियाँ रहतीं और दो सिपाही उन्हें यामे रहते। उसने डाढ़ी अभी नहीं कटवायी

थी। उसकी पोषाक थी, शुभ्र खदर का कुर्ता और धोती, जो वह लुंगी की तरह लपेट कर पहनता था। अदालत के कटघरे में आता तो एकदम सन्नाटा छा जाता। उसके चेहरे पर परम निर्भयता, आत्मा विश्वास, निश्चितता और शांति के भाव दृष्टि गोचर होते। उस के इस आकर्षक, प्रभावशाली व्यक्तित्व के सामने अदालत फीकी पड़ जाती।

मुकदमे के समय केवल कानूनी बचाव समिति की ओर से चार वकील और स्थानीय दैनिक अखबारों के रिपोर्टर हाजिर रहा करते। अभयकुमार के परिवार के लोगों ने हाजिर रहने की इजाजत माँगी सो नामंजूर कर दी गयी। अभय ने सोचा, कुछ बुरा नहीं हुआ।

लगातार दस दिन में सरकार की ओर से सतहत्तर गवाह पेश हुए। उन का नाम-गाम लेकर तो पूरी जन्मपत्री लिखी जाती थी। उन्हें सिखाने पढ़ाने में पुलिस ने बड़ी मेहनत की थी। यह मुकदमा गिरने न पाये, इस के लिए सारे मुहकमे ने एड़ी-चोटी का पसीना एक कर दिया था। अभयकुमार की ओर से 'क्रास' करने वाला कोई नहीं था इसलिए गवाहियाँ उम्मीद से जल्दी खत्म हो गयीं। प्रत्येक गवाह के बयान के बाद अदालत अभय से पूछती—

“तुम इस गवाह से कुछ पूछना चाहते हो ?”

“जी नहीं ! ये सब तो आपकी जानकारी के लिए कह रहे हैं। आप ही इस का सत्यासत्य जानने को यदि इन से कुछ पूछना चाहते हैं तो पूछें। मुझे जो कहना है, वह तो अन्त में ही कहूँगा।”

ज्वालामुखी

अदालत ने कभी जब रस्मी तौर पर कुछ सवाल किये तो किये, वरना सारी गवाहियाँ बिना किसी खटके या बाधा के समाप्त हो गयी। उनके खत्म होते ही अभियुक्त के बयान के लिए पाँच दिन बाद की तारीख दी गयी। उस के पहले अदालत ने पूछा कि अपना बयान लिखने के लिए कागज, कलम, स्याही या कुछ किताबों की जरूरत हो तो वे दी जा सकती हैं। उस ने कहा कि धूर से मुझे गीता, रामायण और गांधी ज की आत्म कथा मँगा दो जाय।

अदालत ने फौरन एक सब-इन्सपेक्टर को उस के घर भेज ये किताबें मँगवाकर उस के 'सेल' में पहुँचवा दीं।

निश्चित समय पर अभियुक्त के बयान के लिए अदालत शुरू हुई। सर्वत्र इस बात की बड़ी उत्सुकता थी कि अभियुक्त अपने बयान में क्या कहेगा ? वकीलों की मदद उस ने ली नहीं, कानून वह जानता नहीं। कहीं ऐसा न हो कि अज्ञान के कारण एकाध ऐसी बात कह दे जो उस के गले की फाँसी बन जाय। जब उसका बयान शुरू हुआ तो अदालत में सन्नाटा था। कोई जरा गहरी साँस ले ले तो वह भी सुनायी पड़े। घड़ी की टिक-टिक बहुत ही व्यवस्थित और स्पष्ट सुनायी देती थी, जो इस बात का स्मरण करा रही थी कि समय पल-पल, क्षण-क्षण बीतता जाता है।

अभियुक्त अभयकुमार से नाम-गाँव आदि प्रश्न पूछे गये—

“पेशा क्या है ?”

“यूनिवर्सिटी में रिसर्च स्कॉलर हूँ।”

“जीविका का साधन ?”

“कुछ ट्यूशन करता हूँ। कुछ माँ भी यहाँ-वहाँ काम-काज जुटा लेती है।”

“इस आन्दोलन में भाग लिया था ?”

“जी हाँ !”

“किसी राजनैतिक दल के सदस्य हो ?”

“जी नहीं”

“तो फिर इस आन्दोलन में क्यों कूद पड़े ?”

“यह आन्दोलन तो किसी राजनैतिक दल-विशेष का नहीं है—यह तो जनता की क्रांति है। जनता के सर्वमान्य नेता महात्मा गांधी ने इस का नेतृत्व किया। उन्होंने राजाओं, विद्यार्थियों, सरकारी कर्मचारियों आदि सब को आवाहन किया कि वे इस में शरीक हों। मेरी धारणा है कि प्रत्येक देशभक्त भारतीय का कर्तव्य है कि वह इस में शरीक हो। इसीलिए मैं इसमें कूद पड़ा।”

“यदि गांधी जी ने इस का नेतृत्व किया है तो इस में हिंसा कैसे आ गयी ? वे तो अहिंसा के हिमायती हैं न ?”

“हाँ, गांधी जी ने कभी किसी से हिंसा की बात नहीं की। हिंसा को वह कमजोरों का शस्त्र मानते हैं। वे कमजोर नहीं हैं। वे क्यों एक लचर हथियार का सहारा ले ?”

“तो फिर यह हिंसा कैसे हुई ?”

“देश में ब्रिटिश सरकार ने जो क्रूर हिंसा का वातावरण पैदा कर रखवा था, उसी की यह प्रतिक्रिया थी।”

“इस का मतलब ?”

“यही कि लड़ाई स्वयं विश्व-व्यापी हिंसा का अवतार है। इसके इन्तजाम के लिए भारत में जो प्रयत्न हो रहे थे, वे सब हिंसा से भरे थे क्योंकि सत्ता और धन के आधार पर वे किये जा रहे थे, जनता का मन उस के साथ नहीं था। जनता उस के नीचे दब रही थी, दब कर पिसी जा रही थी। दुनिया में इस लड़ाई के कारण एक बड़ी क्रांति हो रही थी, बड़े-बड़े साम्राज्य बन-बिगड़ रहे थे, लेकिन उसमें भारतीय जन कुछ भी हाथ नहीं बँटा सकते थे। वे लाचारी की हालत में पटक दिये गये थे। राष्ट्रीय भारत की आत्मा यह गला-घोंट बर्दाश्त नहीं कर सकती थी। इस विस्फोटक स्थिति में सारे भारत को डाल देने की जिम्मेदारी ब्रिटिश शासन की थी।”

“पर इस से इस मुकदमे का क्या सम्बन्ध ?”

“इस से आप को इस क्रांति की पृष्ठभूमि समझ में आ जायेगी और तभी आप यथार्थ में न्याय-अन्याय का निर्णय कर सकेंगे। अभियुक्त के नाते मेरा यह अधिकार है कि मैं यह सब आप के सामने रखूँ। उसे स्वीकार करना या न करना आप का काम है। मैं आशा करता हूँ कि मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ, वह कहने की आप सुविधा देंगे।

“सो तो ठीक है। वह सुविधा आप को अवश्य मिलेगी।”

“धन्यवाद!—तो मैं यह कह रहा था कि ब्रिटिश शासन ने इस देश का वातावरण ही ऐसा अस्वाभाविक, अप्राकृतिक, अमानुषी और हिंसामय बना दिया था कि देश में जो हिंसा फट पड़ी, उस से भी अधिक क्यों नहीं हुई, इसी का आश्चर्य है। अंग्रेज चाहते तो वे उसे रोक सकते थे।

“अंग्रेजों ने घोषणा की थी कि वे स्वतंत्रता और प्रजातन्त्र के लिए लड़ाई लड़ रहे हैं। भारत के नेताओं ने कहा—“भारत की स्वतंत्रता तो तुम बिना किसी लड़ाई के दे सकते हो—वह तुम्हारे हाथ की बात है। तभी दुनिया विश्वास करेगी कि यथार्थ में तुम्हारे वचन और कर्म में सामंजस्य है। यदि ऐसा कर दो तो भारत तुम्हारे साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर लड़ेगा और इस लड़ाई में तुम्हारा पलड़ा भारी हो जायगा। पर अंग्रेजों ने बात मानी नहीं। इस का भितलब यही था कि नीयत साफ़ नहीं थी। कहते एक हो, करते कुछ दूसरा ही हो। आज जब तुम गले तक मुसीबत में डूबे हो तब तुम्हारे मुँह से राम नहीं निकलता तो कल तुम यदि खुदा-न-खास्त इस से बच निकले तो क्या करोगे ? इसका अर्थ यही था कि लड़ाई के जो तुम्हारे ध्येय और वादे हैं, वे सब झूठे हैं, बेकार हैं। उन पर भरोसा ही क्यों किया जाय ?”

“यह परिस्थिति असह्य थी और इसे फ़ौरन बदलना जरूरी था। रुकना मुश्किल था। और कोई रुकना चाहता तो रुक जाता, पर गांधी जी रुकने को तैयार नहीं थे। वे रुक नहीं सकते थे। दुनिया में चारों तरफ़ हिंसा की विभीषिका फैली हुई थी। बड़े विराट-रूप में नर-संहार और ध्वंस हो रहा था। उनकी धारणा थी कि इस तरह तो दुनिया और मानवता अपने आप ही चौपट हो जायगी। उसे चौपट होने का कोई कारण नहीं है, जब कि ईश्वर ने उन्हें अहिंसा का मार्ग दिखा दिया है। अहिंसा के पुजारी के नाते वे केवल भारत वर्ष के ही सेवक नहीं, सारे विश्व के, सारी मानवता के सेवक हैं। उन्होंने कहा कि यही तो मेरी परीक्षा का समय है। जब चारों तरफ़ हिंसा की

आग भड़क उठी हो, अहिंसा की बाज़ी लगाने का वही तो क्षण है। उन्होंने बम्बई के भाषण में ही कहा था कि यदि मैं यह बाज़ी न लगाऊँ तो ईश्वर मुझे तमाचा मारेगा और कहेगा कि पागल मैंने तुम्हें अहिंसा का एक हीरा दिया, उसका तूने समय पर ठीक से उपयोग नहीं किया। तो वे अपने ईश्वर की नज़रों में गिरना नहीं चाहते थे। प्राणों का होम करके भी वे अहिंसा की बाज़ी जरूर लगाते। उनके जीवन का वही एक मात्र संपूर्ण धर्म बन गया। वे तो केवल भारत को ही नहीं, सारी दुनिया को बचाना चाहते थे न !

“कोई सवाल कर सकता है कि यदि वे अहिंसा के इतने बड़े पुजारी थे तो फिर यही भारत में इतनी हिंसा क्यों हुई ? जब हुई तो उन्होंने आन्दोलन क्यों नहीं वापस लिया, जैसा कि चौरी-चोरा के वक्त किया था ? यह उन्होंने अब तक नहीं किया तो क्या इस हिंसा की जिम्मेदारी उन पर नहीं आती ?

“पर यह धारणा ही ग़लत है, तर्क ही दोषपूर्ण है। इस हिंसा की जिम्मेदारी गांधी जी पर कैसे आ सकती है ? सवेरे से शाम तक, चौबीस घंटे, हिंसा की बात तो करे ब्रिटिश शासन, हिंसा वह भड़काये, द्वेष और संघर्ष का वातावरण वह निर्माण करे और जिम्मेदारी हो गांधी जी पर ? यह भी कोई इन्साफ़ है ? हाँ, गांधी जी की जिम्मेदारी तब होती, जब उनकी सलाह ब्रिटिश सरकार सोलहो आने मान लेती और उस पर अमल करती। तब तो सारे देश को भी वे सम्हाल लेते। दक्षिण अफ्रीका में तो रंगरूटों की भरती उन्होंने की। लेकिन क्या नतीजा हुआ ? धोखा, और धोखे को छोड़ कर और कुछ नहीं। ऐसी परिस्थिति

में उन पर क्या जिम्मेदारो आती है ? ग़नीमत समझिए कि उनकी अहिंसा के कारण इस से अधिक व्यापक और विस्फोटक हिंसा नहीं हुई। आपने तो इस के लिए कुछ उठा नहीं रक्खा था।”

“ऑर्डर ! ऑर्डर ! अदालत पर आप इस तरह के ‘रिमार्क’ नहीं ‘पास’ कर सकते।”

“जी नहीं, अदालत के बारे में कोई भी बात कहने का मेरा मन्तव्य नहीं था। मैं तो केवल ब्रिटिश सरकार को लक्ष्य में रख कर यह कह रहा था—‘आप’ का मतलब है ‘सरकार’।”

“अच्छा—” ऐसा कह कर मैजिस्ट्रेट साहब लिखने में भिड़ गये। यों यह सब वार्तालाप होता जाता और वे लिखते जाते। इस में बहुत वक़्त लग गया। पुलिस वाले कहते, आखिर इन सब बातों से यहाँ क्या सरोकार ? उन में से दो-चार लोगों ने जम्हाइयाँ लीं। वे भी अदालत में मौजूद हैं, यह बताने के लिए उन में से किसी एक के हाथ की हथकड़ी बज उठी।

एकदम अदालत ने पूछा—

“इस आन्दोलन में हिस्सा लेने में तुम्हारा क्या ध्येय था ?”

“अपने देश की आज़ादी !”

“आज़ादी का मतलब ?”

“विदेशी शासन से पूर्णतः मुक्ति !”

“यानी तुम अँग्रेज़ी शासन हटाना चाहते थे ?”

“अवश्य !”

पुलिस वाले हिस्से में से फिर हथकड़ी बजने की आवाज़ आयी। मतलब यह कि अब अभियुक्त पकड़ में आ रहा है। उन की

दिलचस्पी फ़ौरन जाग उठी ।

“किसी भी मार्ग से ?”

“स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए कोई भी मार्ग अख्तियार किया जाय, उचित है—”

“हिंसा का भी ?”

“जी हाँ, अनिवार्य हो जाय तो हिंसा का भी ! क्या अमेरिका हिंसा से स्वतंत्र नहीं हुआ ? क्या आयरलैंड भी सशस्त्र विद्रोह करके ही स्वतंत्र नहीं हुआ ? आज इन्हीं देशों के स्वतंत्र भंडे को ब्रिटिश गवर्नमेण्ट आदर पूर्वक मंजूर नहीं करती ? गुलामी से तो हिंसा ही भली ।”

“मतलब यह कि तुम हिंसा में विश्वास करते हो ?”

“कतई नहीं । मैंने जो कहा उस का यह मतलब हरिगंज नहीं निकलता । मेरा तो यही कहना था कि अमरीका और आयरलैंड यदि हिंसा के रास्ते स्वतंत्र हुए तो उस में कोई दोष नहीं है—

“पर इसका मतलब तो यही हुआ न कि भारत भी यदि स्वतंत्रता के लिए हिंसा का उपयोग करे तो दोष नहीं है ?”

पर भारत को अमरीका और आयरलैंड का तरीका अख्तियार करने की जरूरत ! उसके पास तो गाँधी है । अमरीका और आयरलैंड के पास तो गाँधी नहीं था । और गाँधी का मार्ग हिंसा के मार्ग से हजार गुना ज्यादा कारगर और सशक्त है, ऐसी मेरी धारणा है ।”

“ओह यह बात है !”—अदालत ने कहा ।

पुलिस के दो-एक दारोगा जो अब तक खड़े थे, खिड़की

की चाँखट पर बैठ गये ।

“गाँधी जी के दर्शन में पूरी आस्था है—और मेरा यह संपूर्ण विश्वास है कि अहिंसा के मार्ग से ही भारत शीघ्र और पूर्णतया सफल हो सकता है । भारत की विशिष्ट जीवन-प्रणाली, दार्शनिक परम्परा और अध्यात्मिक वृत्ति में तो अहिंसा जो चमत्कार दिखा सकती है, वह हिंसा के वश का नहीं हिंसा की प्रतिक्रिया अधिकाधिक हिंसा, और उस की प्रतिक्रिया अधिकतम हिंसा—इस दुष्चक्र से मानव की मुक्ति नहीं । क्रोध का प्रतिकार अक्रोध से हो, द्वेष का प्रतिकार प्रेम से हो, और हिंसा का प्रतिकार अहिंसा से हो तो वह दुष्चक्र भंग हो जाता है और मानव उस में से मुक्त हो जाता है । वह उस में से मुक्त हुआ कि उस की उन्नति का द्वार खुल गया ही समझिए । मानव के प्रश्नों का हल निकालने में हिंसा बेकार और निकम्मी साबित हुई—अहिंसा पूर्णतः समर्थ और उपयोगी है । ऐसी अद्भुत पारस हाथ में लग जाने के बाद काले-कलूटे पत्थर की तरफ हम क्यों जायँ ? जी नहीं, भारत को हिंसा का मार्ग अखितयार करने की कोई जरूरत नहीं—”

अदालत लिखती जा रही थी । पुलिस वालों ने सोचा, यार गाड़ी तो गलत पटरी पर जा रही है उन की बैचैनी उनके जूतों की टापों की आवाज़ से दिखायी देती थी जो पत्थर के फर्श पर रगड़ने के कारण निकल रही थी ।

अदालत ने पूछा—

“तुम बम्बई कांग्रेस के अधिवेशन में शरीक होने गये थे ?”

“जी हाँ ।”

“फिर ?”

“फिर क्या ?”

“यानी वहाँ के नेताओं के भाषण सुने ?”

“जी हाँ, उसी के लिए तो गया था ?”

“नेताओं की गिरफ्तारी के बाद वहाँ मारकाट मची, लूट-खसोट हुई, आग-लूट लगी, यह जानते हो ?

“जी हाँ, कुछ-कुछ सुना था ?”

“यह सब देखा नहीं ?”

“सब कैसे देखता ? बम्बई इतना बड़ा शहर है, वहाँ सब स्थानों पर एक ही समय एक आदमी कैसे हाज़िर रह सकता था ?”

“फिर तुम्हें इसका कैसे पता चला ?”

“अखबारों से, लोगों के कहने-सुनने से ।”

“वहाँ से तुम कुछ परचे लाये थे ?”

“जी हाँ ।”

“कहाँ लाये ?”

“यहीं नागपुर !”

“उनका क्या किया ?”

“बँटवा दिया ?”

“अच्छा S S ! कहाँ ?”

“दूर दूर तक ।”

“घुघरी में भी परचे पहुँचे थे ?”

“हो सकता है ?”

“क्यों, तुम्हें निश्चित नहीं मालूम ? तुम उस अग्नि-काण्ड

और हत्या की घटना के दिन घुबरी में थे ।”

“था, पर घटना के पहले मैं वहाँ से चला गया था ?”

“लोगों को भड़का कर ?”

“जी नहीं, शांत करके ।”

“इसका मतलब ?”

“यही कि आमगाँव में फागू को गोली लगने से तथा बाबा मानवदास की गिरफ्तारी के कारण जनता भड़की हुई थी उस समय तो घुबरी में कुछ भी हो जाता । पर मैंने वहाँ के नेताओं को शांत और अहिंसात्मक बने रहने की सलाह दी और भरोसा है कि उस का उन पर असर भी हुआ ।”

“तुमने वहाँ पचें नहीं बाँटे ?”

“जी नहीं”

“फिर यह लाल-पर्चा वहाँ कैसे पहुँचा ?”

“यह मैं क्या जानूँ ! बम्बई से मैं जो परचे लाया था, वे तो सफ़ेद थे ।”

“पर पुलिस ने तो गवाह पेश किये हैं कि यही परचे बाँटने के लिए तुम घुबरी आये थे ।”

“पुलिस के गवाह झूठे हैं ”

पुलिस के लोग जहाँ बैठे थे, वहाँ कुछ गड़बड़-शड़बड़ होने लगी जैसे वे इस विधान से तिलमिला उठे हों ।

“काहे पर से ?”

“उनके एक गवाह ने यह कहा कि घटना के दिन सुबह, जुलूम निकलने के पहले मैं घुबरी में था । उनके दूसरे गवाह ने कहा कि यह लाल पर्चा घटना के बाद गिरफ्तार-शुदा

अनन्त गोपाल शेवड़े

व्यक्तियों में से किसी की जेब में निकला। पर पुलिस के किसी भी गवाह ने यह नहीं बताया कि यह परचा मेरे पास था और मैंने स्वयं अपने हाथ से इसे किसी को दिया।”

“इसके लिए तुम कोई गवाह पेश करना चाहते हो ?”

“मैं क्यों गवाह पेश करूँ ? इलजाम पुलिस ने लगाया है, गवाह भी उन्हींने पेश किये हैं, इलजाम का सबूत उन्हें ही देना है। अगर वे सही सबूत नहीं देते हैं तो उनका मुकदमा झूठा है।”

पुलिस की हलचलों से मालूम पड़ा कि वह फिर तिलमिला उठी है।

“यदि तुम कोई ऐसे गवाह पेश कर सको कि तुम्हारे पास सफ़ेद परचे ही थे, लाल नहीं थे, और लाल परचे तुमने बाँटे ही नहीं तो तुम्हारे कथन को बल मिल सकता है।”—अदालत ने सलाह दी।

“जो सत्य है, वह अपने आप में संपूर्ण है, वह कोई गवाही नहीं चाहता। जिसे मैं स्वयं सत्य मानता हूँ, और सत्य है ऐसा जानता हूँ, उस के लिए कोई तरफ़दारी करने वाला न मिले, इसलिए वह असत्य नहीं हो जाता है। झूठ के लिए समर्थन की आवश्यकता होती है, छल-कपट और बनावट के बिना वह एक इंच भी आगे नहीं बढ़ सकता। पर सत्य तो सूर्य की तरह स्वयं ही प्रकाशमान है। उसे उद्भासित करने के लिए किसी मोमबत्ती की जरूरत नहीं होती।”

“यदि तुमने लाल परचे नहीं बाँटे तो घुघरी की जनता क्यों उभड़ी ?”

“इस का कारण है अगले दिन निरपराध किसान फागू की गोली से हत्या, बाबा मानवदास जैसे निर्मल साधू की गिरफ्तारी, और उस दिन सर्किल इन्स्पेक्टर लाला बाबूराम की गोलाबारी जिसके कारण एक स्त्री की मृत्यु हो गयी। भारत में धर्म और नारी की जो प्रतिष्ठा है, उसे तो आप जानते ही हैं। उस क्षेत्र की ठेस भारतीय जनता को गहराई तक व्यथा पहुँचाती है, जिसे वह बर्दाश्त नहीं कर पाती। फागू का तो राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं था। वह तो निर्मल अन्तःकरण वाला सीधा-सादा किसान था। उस को गोली मारकर क्यों उस की वृद्धा दुलिया माँ की गोद सूती कर दी गयी? बाबा मानवदास को उस इलाके की जनता धर्मात्मा मानती है, और उस की पूजा करती है। उन्हें क्यों गिरफ्तार किया गया? नारी को तो अपने देश में साक्षात् भगवती का अवतार माना जाता है। उस पर गोली चला कर उसे दिन-दहाड़े मार देने में पुलिस ने कौन-सा पुरुषार्थ किया? इस वातावरण में जनता भड़क उठे तो इस में जनता का क्या दोष है? सरकार, जिस का फ़र्ज है कि अपना दिमाग ठिकाने रखे, अपना संतुलन खा दे और ग़ैर जिम्मेदारी से अपनी सत्ता का दुरुपयोग करे तो देश में अराजकता फैल सकती है, क्या इतनी सी बात सरकार का नहीं मालूम थी? फिर क्यों यह भद्दी, बेहूदा हरकत की गयी? यदि घुघरी के हत्याकाण्ड के लिए कोई प्रथमतः जिम्मेदार है तो पुलिस—”

“सर, हम इस विधान की सख्त मुखालफ़त करते हैं—”
एक पुलिस अफ़सर ने अदालत से कहा।

“सरासर ग़लत है। सरासर ग़लत है—” और भी दो-एक

अफसर फुसफुसाये ।

“साहब, मुझे ताज्जुब होता है पुलिस की इस गर जिम्मेदाराना कार्रवाई पर । अभियुक्त तो मैं हूँ, पर तिलमिलाते हैं वे, जैसे सचमुच उन के हाथ काले हों । सर, मैं यह जानना चाहता हूँ कि मुझे अभियुक्त के नाते मेरे बचाव में यह सब कहने का हक है या नहीं ? यदि यह हक मुझे नहीं है तो मैं इस कार्रवाई में कोई हिस्सा नहीं लेना चाहता”—ऐसा कह कर अभय कुमार सचमुच नोचे बैठ गया ।

अदालत में सनसनी मच गयी । सरकारी वकील कुड़मुड़ाये । दीगर वकील भी आपस में फुसफुसा कर कहने लगे कि उसे तो यह सब कहने का पूरा-पूरा हक है । प्रेस रिपोर्टर भी कागज़ पेंसिल सम्हाल कर सचेत बैठ गये ।

अदालत ने कहा—

“अभियुक्त को अपने बचाव में सब कुछ कहने का पूरा-पूरा हक है । उस के विधानों की छान बीन करना और उन्हें मानना न मानना यह अदालत का काम है । पर अभियुक्त को अपने बयान से रोकना नहीं जा सकता—”

“धन्यवाद !”—अभय कुमार ने कहा —“यदि मुझे कहने का पूरा हक है तो मैं यह कहना चाहता हूँ कि धुधरी हत्या-काण्ड की जिम्मेदारो पुलिस की है, मेरी नहीं । और यदि किसी को इस के लिए फाँसी लगनी है तो पुलिस को लगनी चाहिए या उन्हें जो राजधानी में बैठे-बैठे उन्हें आदेश देते हैं—मुझे नहीं ।”

अभय कुमार के इस विधान से अदालत में फिर सन्नाटा

छा गया। पुलिस अफ़मरों के मुँह तमतमा कर लाल हो गये। वे अभय कुमार की तरफ़ इस तरह देख रहे थे कि यदि वह अदालत के बाहर कहीं मिल जाता तो उस की चटनी बना देते। संवाद दाताओं ने उसके मुँह से निकले हुए एक-एक शब्द को जैसा-का-नैसा लिख लिया।

“पर इलज़ाम तो तुम पर है, मुकदमा तुम्हारे खिलाफ़ दायर हुआ,—पुलिस के खिलाफ़ नहीं। फिर इन बातों को यहाँ कहने से फ़ायदा ? मैं तो—” अदालत ने कहा।

“सर, यह मैं जानता हूँ कि मुक़दमा मुझ पर ही चल रहा है, पुलिस पर नहीं। पर मामला क़तल का है। क़तल में उस के पीछे क्या उत्तेजना (provocation) थी, यह जानना ज़रूरी है, और उसके लिए वॉन जिम्मेदार है, यह कहना ज़रूरी था। इसी लिए मैंने पुलिस की बात कही। सच्चा न्याय देने के लिए तो यह सारा सत्य सामने आना आवश्यक है। इलज़ाम यह है कि मैंने पुलिस के दो कर्मचारियों की हत्या स्वयं की या करवाई। यह हत्या किसी ने भी की हो, पुलिस के भड़काने के बाद हुई। पर पुलिस को ऐसा कौन सा कारण था, जो उन्होंने निरपराध जनता के, जिनमें एक स्त्री भी थी, गोली चला कर उनकी निर्मम हत्या कर डाली ? यदि सही-सही सौ फ़ी सदी इन्साफ़ होना हो तो मेरे साथ-ही-साथ उन पर भी मुक़दमा चलना चाहिए।”

पुलिस के कोने में से एक आवाज आयी—‘हूँ!’ जैसे यह कैसी वाहियात बात कर रहा था। मैजिस्ट्रेट साहब ने भी कुछ अड़चन, कुछ अटपटापन महसूस किया। बोले—

“अब समय काफ़ी हो गया है। बाकी का बयान कल लिया

अनन्त गोपाल शैवडे

जायगा । तब तक के लिए मुकदमा मुत्तबी ।”

अभय कुमार अपने ‘सेल’ में जाने के लिए निकला । जब तक वह आँखों से ओभल नहीं हो गया, पुलिस के लोग उसे घूरते रहे ।

शाम को पुलिस की एक खुफ़िया रिपोर्ट सरकार के पास पहुँच गयी कि चूँकि मुलज़िम अभय कुमार मैजिस्ट्रेट चौधरी साहब के बच्चों को पढ़ाया करता था, उस के साथ रियायत हो रही है और पुलिस की शान-शौकत तथा इज़्ज़त पर बट्टा लग रहा है । लिहाजा दरखास्त है कि मुनासिब कार्रवाई की जाय ।

उस दिन चौधरी मैजिस्ट्रेट घर लौटे तो आते ही उनकी पत्नी ने पूछा—

“मास्टर जी ने कैसा बयान दिया ?”

“ठीक तो मालूम पड़ता है, पर पुलिस वाले नाराज़ हैं, क्योंकि उस ने कुछ ऐसी बातें कहीं जिसमें वे चिढ़ गये हैं।”

“तो उनके चिढ़ने से क्या होता है ? “फैसला तो आप को लिखना है।”

“नहीं, पुलिसवाले चिढ़ जाये तो जाने क्या कर सकते हैं। आजकल तो सरकार में उन्हीं का जोर है।”

“होगा। वे चाहें तो किसी को गोली मार दे, पर आप तो मैजिस्ट्रेट हैं, आप तो निर्दोष को फाँसी नहीं लगा सकते।”

चौधरी साहब चुप रह गये तो फौरन चौधरानी जी बोली—

“क्यों, चुप क्यों हो ? क्या मास्टर जी के खिलाफ कोई सबूत मिला है ।”

“नहीं, सबूत अब तक तो नहीं मिला है, आगे पुलिस वाले कुछ पेश कर दें तो बात अलग है ।”

“फिर भी फाँसी क्यों दी जानी चाहिए । जिसे मैंने बच्चे सरीखा मान लिया उसे आप के हाथ से फाँसी लगे, यह कैसे हो सकता है ? क्या बड़े को या महेन्द्र को आप फाँसी का हुक्म दे सकते हैं ?”

“यह सब क्या कह रही हो घर वाली ? ऐसी बुरी बान मुँह से क्यों निकाल रही हो !”

“मैं बता देना चाहती हूँ कि अपने जीते जी आप के हाथ से ऐसा अधर्म नहीं होने दूँगी जिसका प्रायश्चित्त जीवन भर करने से भी पूरा न हो । हाँ, उस का कुसूर आप को पट जाय और दिल से आपको उस पर भरोसा हो और उस के ठीक-ठीक सबूत मिल जायँ तो बात अलग है । पर कच्चे मामले में आप ने फाँसी दी तो मुझे बर्दाश्त नहीं होगा, यह मैं साफ़-साफ़ कहे देती हूँ । बेचारा कोमल गऊ सा लड़का, और उसे कसाई की तरह सूली पर चढ़ा दो, यह नहीं हो सकता । मैं अपने ठाकुर जी को क्या जवाब दूँगी, बताओ तो ? साहब को खुश करना है तो पाँच-सात बरस की जेल दे देना, पर उस का घर बेमतलब उजाड़ने का आप को क्या अधिकार ? ऐसी नौकरी को आग लगे जिस में अपनी आत्मा भी मारनी पड़े—”

चौधरानी जी का यह रौद्र रूप देख कर मैजिस्ट्रेट साहब

को लगा जैसे उन में चण्डी का संचार हो गया हो। वे अपनी पत्नी को खूब जानते थे। आज चौबीस-पच्चीस बरस का उन का साथ है, सौ में से निन्यानबे मामलों में चौधरानी जी अपने पति के मामलों में हस्तक्षेप नहीं करती थीं। पुराने ढंग की पति-परायणा स्त्रियों में, जो पूजा-पाठ करके धर्म-भाव से अपनी गृहस्थी चलाती हैं, उनकी गणना होती थी। पढ़ने के नाम पर वही मोटे अक्षरों में छपे सटीक गीता-रामायण और भागवत जैसे दो-चार ग्रंथ। अखबार और दूसरी किताबें पढ़ने में न उनकी रुचि थी, और न उनके पास समय। उनकी पीठ पीछे उनके पति क्या करते थे क्या न करते थे, इस की ओर उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया। निष्ठा से उनकी सेवा करना, जहाँ तक संभव हो उन्हें अधिक से अधिक आरा देना, यही उनकी कोशिश रहती थी। दोनों में कभी किसी बात का लड़ाई-झगड़ा या मत-भेद होते किसी ने नहीं सुना था। बेचारी चौधरानी जी अधिकांश मामलों में अपना कोई मत ही नहीं रखती थी, सो उसके भेद का सवाल ही नहीं उठता था। पर हाँ, एकाध मामला कभी ऐसा आ पड़ता जिस में उन की धार्मिक भावना को ठेस लगती तो फिर वे अपने पति से भी इतनी उग्रता से लड़ बैठतीं कि उस बात के आगे मैजिस्ट्रेट साहब को भी झुकना पड़ता। अपनी पत्नी के इस स्वरूप से वे घबड़ाते थे। क्योंकि वे जानते थे कि इन बातों में वे इतनी दृढ़ हैं कि तुल पड़े तो अपने मन की-सी करा कर ही छोड़ें।

अभय कुमार के मामले को लेकर ऐसी ही बात चल पड़ी है। इसी से चौधरी जी बड़े बेचैन थे। जिस दिन इस मुकदमे को चलाने के लिए उन्हें स्पेशल मैजिस्ट्रेट के पद पर अपनी

नियुक्ति का हुक्म मिला था, उसी दिन उनके तथा उन की पत्नी के बीच तनातनी हो गयी। उन की पत्नी ने बहुत कोशिश की कि या तो यह मुकदमा किसी दूसरे मैजिस्ट्रेट के पास चला जाय या चौधरी जी लम्बी छुट्टी लेकर बाहर चले जायँ। और यदि उन्हें मुकदमा चलाना ही है तो वे वादा करें कि अपनी आत्मा के विरुद्ध काम नहीं करेंगे। चौधरी साहब ने सोचा कि पहले दो सुझावों के लिए उन्होंने कोशिश की तो सरकार कहेगी, वे कायर हैं, जिम्मेदारी से मुँह मोड़ते हैं, जो आज़कल के वातावरण में गभीर गुनाह हो जाता है। इसलिए तीसरे प्रस्ताव को मानना ही उन्हें ज्यादा मुनासिब लगा। इस के स्वीकार में भी उन्हें कुछ भिन्नक घबड़ाहट तो हो रही थी पर चूँकि तीनों में वही प्रमाणतः ज्यादा सुरक्षित था इसलिए वह उन्होंने मान लिया था। तभी से रोज चौधरानी जी उस से मुकदमे का हाल पूछती और अपनी स्वस्थ साधारण बुद्धि से उस का मर्म समझ लेती।

आज चौधरी साहब से अभय के बयान का हाल सुन कर चौधरानी जी का मन प्रसन्न हो गया। उन्हें लगा कि ठाकुर जी उन की टेक निभा लेंगे। उनकी प्रसन्नता देख कर चौधरी जी भी खुश हो गये। चौधरानी जी ने रौताइन को बुलाकर कहा—

“अरी देख तो, कढ़ाई चढ़ाकर थोड़ी पूड़ियाँ उतार लेना—साहब थक कर आये हैं। धो भी आज ताजा ही आया है—”

चौधरी जी मन-ही-मन मुसकराये—साहब तो थक कर पहले भी कई बार आये थे और धो भी ताजा कई बार आया है, पर हर बार पूड़ियाँ तो नहीं बनीं।

रात को साढ़े नौ बजे के करीब जब खा-पीकर तथा अपने

ज्वालामुखी

दैनिक कार्यक्रम से निवृत्त हो कर चौधरी साहब सोने की तैयारी में लगे थे कि एक चपरासी ने आकर कहा—

“बड़े साहब ने अभी सलाम भेजा है, हुजूर !”



रात को ११ बजे के करीब जब चौधरी साहब घर लौटे तो उन का रूप-रङ्ग देख कर चौधरानी जी घबड़ा गयीं। पसीने से तर थे और उन के चेहरे पर हवाइयों उड़ रही थीं। आते ही उन्होंने जल्दी-जल्दी कोट-पतलून-टाई आदि उतारी और फ़ौरन शौच को चले गये। ऐसे गुम-सुम कि वे सोचने लगीं—आखिर बात क्या है ?

चौधरी जी जब सोने के लिए पलंग पर लेटे तो चौधरानी जी ने वही सवाल पूछा—“बात क्या है ?”

पहले तो चौधरी जी ने यह कह कर बात टालने की कोशिश की कि वह मरकाररी मामला है और गुप्त रखना जरूरी है इसलिए नहीं बता सकते। चौधरानी जी ने कहा—“मुझ से क्या मामला गुप्त है ? मैं क्या किसी से कहने जाती हूँ ? मुझे तो आप की हालत देख कर ही चिन्ता होती है, नहीं तो मैं

पूछती भी नहीं। हो सकता है कुछ सलाह भी दे सकूँ। अकेले ही मन-ही-मन कुड़ते रहोगे तो ज्यादा दुख पाओगे।—और ऐसा कह कर वे अपने पति का सिर दबाने बैठ गयीं।

थोड़ी-बहुत आनाकानी करने पर उन्होंने उड़ते-उड़ते बताया कि अभय के मुकदमे को लेकर पुलिस ने उन के खिलाफ शिकायत की है कि वे मुलजिम को बहुत बड़ी छूट देते हैं और ऐसी कई बातें कहने का मौका देते हैं जिस का प्रत्यक्ष बुम से सम्बन्ध नहीं है और जो अखबारों में छपने पर सरकार की पोलीशन को धक्का पहुँचायेगी। गरजे कि मैजिस्ट्रेट चौधरी में कार्य-कुशलता नहीं है। सरकार के पास यह भी रिपोर्ट है। कि अभय कुमार आन्दोलन के पहले चौधरी साहब के बच्चों को ट्यूशन करता था और उसी के प्रभाव में आ कर उनके दो-एक लड़कों ने जुलूम में भी हिस्सा लिया था। सरकार यह हर्गिज उम्मीद नहीं करती कि उनके वफ़ादार नौकरों के घर में ही बगावत के कारनामे हों। लिहाजा सरकार मैजिस्ट्रेट से पूरी-पूरी वफ़ादारों का इकरार चाहती है। सरकार पर इस वक़्त लड़ाई और बलबे के कारण बहुत बड़ा भार पड़ रहा है और वह इस बात की जाँच कर रही है कि उस के सरकारी नौकर इस आड़े वक़्त कैसी वफ़ादारी निभाते हैं। वफ़ादारों के लिए तरकियों और खिताबों के दरवाजे खुले पड़े हैं। जिन्होंने कमजोरी दिखायी उन्हें बरखास्त करके नमकहरामी के लिए गिरफ़्तार करने का भी सरकार को हक़ है। बगावत करने वालों के साथ कोई रियायत नहीं की जाय, पूरी-पूरी सख़्ती बरनी जाय, और ग़द्दारों के सामने ऐसी भयंकर भिसाल पेश की

जाय ताकि फिर दुबारा सरकार की मुखालफत करने की किसी में हिम्मत न हो। समझे ?

यह 'समझे' ? शब्द मेज पर बड़ी जोर से मूठ पटक कर समझाया गया जिससे मेज भी थर्रा उठी और उस पर पड़ा हुआ काला पिस्तौल भी। उसके साथ-ही-साथ मैजिस्ट्रेट साहब का दिल भी।

और अगर चौधरी मैजिस्ट्रेट इस दबत कुछ भी हिचकिचाहट या कमजोरी दिखाते हैं तो प्रौरन उनके खिलाफ़ डिपार्ट्-मेण्टल इनक्वायरी का हुक्म निकाला जायगा—समझे ?

फिर वही जोरदार मूठ पटकना और तयोरियाँ चढ़ा-चढ़ा कर गरजना !

आखिर जल कर साहब बोले—“मैं आप का विचार अभी इसी क्षण चाहता हूँ। आप सोच लीजिए—मैं ज़रा अन्दर से आता हूँ।” और फिर जोर से पुकार कर कहा—“अर्दली। साहब यहाँ बैठे हैं, देखना।”

साहब भीतर गये और एक पेग चढ़ा कर तथा कुछ देर आराम करके लौटे। उन का लाल चेहरा पहले से भी अधिक लाल हो गया था।

“फिर क्या तय किया ?”—साहब ने पूछा।

“सर, मैं तो सरकारी नौकर हूँ। जब तक नौकरी करूँगा, सरकार का हुक्म मानना मेरा फ़र्ज है। वह मैं पूरी तरह अदा करूँगा।”

“शाबाश !” साहब ने पीठ ठोक कर कहा।” मैंने पुलिस को यही बता दिया था कि चौधरी के बारे में आप फ़िर

न करे ।” और इस बार साहब ऐसे मुसकरा रहे थे जैसे भोम के देवता हो ।

इस के बाद साहब ने दो-चार मिनट बड़ी मीठी-मीठी बातें की जिस के दौरान में यह बताया कि एक जिले की जगह खाली हो रही है और वहाँ किसी सुयोग्य हिन्दुस्तानी को चार्ज देने की बात चल रही है । यदि चौधरी साहब इस मुकदमे से जल्दी निपट जायँ तो संभव है उन्हीं की सिफारिश हो, क्योंकि उनका ‘कॉन्फ़िडेन्शियल’ वैसे बुरा नहीं है । बस, अभय की ट्यूशन और उन के लड़कों का जुलूस में शामिल होना, ये दो ही बातें उनके खिलाफ़ हैं, पर चौधरी साहब यदि ठीक सहयोग दे तो ये भी समझाल ली जा सकती हैं ।

चौधरी साहब बड़े साहब के बंगले से निकलने लगे तो फिर साहब ने याद दिलायी

“I hope you understand the situation

“Yes sir !” चौधरी साहब ने अटेन्शन होकर जवाब दिया ।

चौधरी साहब घर के लिए साइकिल पर रवाना हुए तो उनकी आँखों के सामने तारे नाचने लगे । बदली की रात थी और आसमान के तारे झिमे हुए थे । पर इस से कोई अड़चन नहीं हुई । उन तारों की जगमगाहट से ही जैसे चौधरी साहब की आँखें धुँधला गयीं और बदन पसीना पसीना हो गया ।

अभय कुमार उस दिन का अपना बयान देकर जब 'सेल' में लौटा तो उस का मन प्रसन्न था। ऐसी प्रसन्नता उसने कई महीनों में नहीं पायी थी। आज कई दिनो से उसके मन में जो बातें भरी पड़ी थीं, जो अन्दर-ही-अन्दर घुट रही थीं और जिनको व्यक्त करने का, बाहर फेंक कर अलग कर देने का कोई मौका नहीं था, वे सब वह कह सका था, इसलिए उसका भार हल्का हो गया। जैसे बड़ा भारी वजन उसकी छाती से उठ गया हो। जब चारों तरफ़ मय, भूठ और लोभ का वातावरण फैल जाता है, नैतिकता का हास हो जाता है, तब सत्य की आवाज़ उस समय के नक्कारखाने में तूती की आवाज़ भले ही साबित हो और उसका सुनने वाला न मिले फिर भी एक समय आता है जब नक्कारों की अल्प-जीवि ध्वनि शांत हो जाती है और सत्य के संगीत के स्वर, समय का बल पा

कर अधिकाधिक मधुर, अधिकाधिक व्यापक और अधिकाधिक बुलन्द हो जाते हैं । जब दो हजार वर्ष पूर्व ईसा को जेरुसलम के पास वीरान और निर्जन स्थान में सूली पर टाँग दिया गया था तब उनकी यह आर्त पुकार “हे प्रभू ! मेरे प्रभू । तूने मुझे क्यों भुला दिया ?...” उस समय सिवा भगवान के शायद और किसी ने न सुनी हो । और सुनी हो तो वहाँ के भाड-भाँखर और चढ़ानों ने । पर आज वही पुकार समय के बादलों पर चढ़कर सारे विश्व में फैल गयी है और ईसाई धर्म को मानने वाले करोड़ों स्त्री-पुरुषों के लिए चिर-वेदना की अमर-वाणी बन बैठी है ।

इसलिए, जब वह हँसता-खेलता अपने ‘सेल’ में आया तो पास की कोठरी के एक कैदी ने, जिस की फाँसी की मुआफ़ी की अपील अभी नहीं हुई थी, पूछा—

“क्यों मैय्या ? छूट गये ?”

“नहीं भाई छूटा तो नहीं हूँ, पर दिल का बहुत भारी बोझ उतर गया ।”

वह कैदी कुछ न समझ पाया, पर अभय कुमार का आनन्द भी उसे थोड़ा सा स्पर्श किये बिना नहीं रहा ।

अपने सेल में आकर जब वह सोया और बाहर ताला पड़ गया तो उसे लगा कि इस पचास-साठ फ़ुट की छोटी सी जगह का अब वह स्वयं मालिक है और उसके एकान्त को अब कोई भंग नहीं कर सकता । आखिर मनुष्य का सुख काहे पर अवलम्बित है ? बड़े-बड़े मकानों में अट्टालिकाओं में, मोटर-गाड़ी या घन-दौलत में ? हर्गिज नहीं । वह तो उसकी वृत्ति पर, मन का

समाधान पर अवलम्बित हैं। मनुष्य इस दुनिया में आता है तो माँ के गर्भ को छः-सात इंच की जगह ही उसके लिए काफ़ी होती है। और जब वह मरता है तो छः-सात फुट के गढ़े से ज्यादा वह ले भी नहीं सकता। और यदि वह हिन्दू है तो फिर उसके शरीर की राख ही बन जाती है जो मिट्टी में मिलकर मिट्टी हो बन जाता है। जीवन की सारी दौड़-धूप, सारा संवर्ष इस छः-सात इंच की छोटी सी जगह को छः-सात फुट तक बड़ी कर लेने के लिए है। और यहाँ इस सेल में तो उसे पचास-साठ फुट की भूमि प्राप्त है, जिस पर उसका एक-छत्र अधिकार है। फिर उसे किस बात का शोक होना चाहिए, क्यों शिकायत होनी चाहिए ?

और यह जेल ? ये पथरीली दीवारें और लोहे के काले सीखचे ! बाहर से बड़े भयंकर, बड़े डरावने लगते हैं, पर भीतर इन में कितनी ममता, कितना अपनापन भरा है। भगवान् कृष्ण को तो उन्होंने जन्म दिया। दुनिया के बड़े-बड़े धमात्माओं, देशभक्तों, सत्य के लिए लड़ने वाले वीर सैनिकों को तो उन्होंने प्रश्रय दिया न। उस काल के समाज और शासन को जब दुर्जनों ने हथिया लिया तो सज्जनों को किसने सहारा दिया ? समस्त मानव जाति के जागरण, उत्थान और क्रांति को जन्म देने वाली जेल ! तुम माँ जैसी आश्रय दायिनी हो, शांति-सांत्वना देने वाली दयामयी हो ! तुमने यदि मुझे अपने आंचल में आश्रय न दिया होता तो आज मैं भी वन-वीरानों में एक शापित जानवर की तरह दर-दर भटकता रहता जिसके खून के प्यासे हत्यारे उस पर छुला दिये गये थे। इन सतत व्याधि-बाणों

ज्वालामुखी

से तो तुम्हीं ने मेरी रक्षा की है । तुम्हीं मेरे लिए अब मङ्गल
मन्दिर बन गयी हो, यह मैं कैसे भूल सकता हूँ ?



दूसरे दिन सुबह अखबारों में अभय कुमार के बयान के समाचार बड़े विस्तार के साथ छपे । उसकी निर्भीकता, स्पष्ट-वादिता, स्वच्छ और सुलभी हुई विचार-शैली की चारों तरफ़ बड़ी प्रशंसा हुई । जेल के राज-बन्दियों में एक नयी लहर, एक नया जोश और उत्साह का वातावरण फैल गया । उनमें से एक इतना वीर और निडर निकला, यह देखकर उनकी छाती फूली नहीं समाती थी । बाहर भी जनता पर इस कार्रवाई का बहुत अच्छा असर पड़ा । गांधी जी ने मिट्टी के आदमियों को भी वीर पुरुष बना दिया, उसका यह उदाहरण था ।

पर दूसरे दिन से अदालत का रुख बहुत कड़ा हो गया । पुलिस का पहरा और देख-रेख भी सख्त हो गयी । एक दिन के भीतर ही अभियुक्त का बयान समाप्त कर दिया गया, जिसमें उसने अपने बेगुनाह होने का ऐलान किया था । और कम

ज्वालामुखी

से-कम अदालत के रिकार्ड पर यह बात आ गयी कि घुघरी के हत्याकांड की सीधी और प्रत्यक्ष जिम्मेदारी अभय कुमार पर ही आ जाती है और इसलिए उसे फांसी दी जानी चाहिए ।

और एक शुक्रवार को ११ बजे सुबह, अदालत शुरू होते ही स्पेशल मैजिस्ट्रेट श्री० चौधरी ने, खून और बलवा करने, उमाङ्गने आदि के इत्तजाम में अभय कुमार की फांसी की सजा सुना ही दी । उसी वक्त पीछे से लोहे की खनखनाहट हुई और अभय कुमार के पैरों में बेड़ियाँ डाल दी गयी । इसके बाद मैजिस्ट्रेट साहब अभियुक्त की आँख से आँख न मिला सके । सीधे उठकर पुलिस की नीली मोटर में बैठकर एर चले गये और अपने सोने के कमरे में जाकर अन्दर से दरवाजा बन्द करके पलंग पर लेट गये ।

चौधरानी जी को जब यह मालूम हुआ तब वे पूजाघर में बैठी थीं । वहीं बैठी रहीं जैसे अहिल्या को शाप देकर पत्थर बना दिया गया हो ।

अन्तर केवल इतना ही था कि उनकी आँखों से भर-भर पानी बह रहा था । उन्होंने सुबह से कुछ खाया नहीं था । अब पानी पीना भी छोड़ दिया ।

अभय कुमार यह सज़ा सुनकर सन्न रह गया । वह इसलिए नहीं कि मौत अब उसके सामने आ खड़ी है, बल्कि इसलिए कि यह सज़ा उसके लिए सर्वथा अनपेक्षित थी । यों इस आन्दोलन में दो-चार प्रसंग ऐसे आये जब उसके जीवन और मृत्यु के बीच की रेखा अत्यन्त क्षीण हो उठी थी । एकाध बार तो गोली लगते-लगते बची । जब उसने ६ अगस्त के बाद बम्बई और अन्यत्र उभड़े 'हुए ज्वालामुखी का स्फोट देखा तो वह समझ गया कि प्राणों का मोल देने को तैयारी उसे रखनी चाहिए, नहीं तो क्रांति से मीलों दूर अलग खड़े रहना चाहिए । क्रांति से अलग वह नहीं रह सकता था । उसका दिल ही उसकी गवाही नहीं देता था । इसलिए उसके मन में इस बात की दुविधा भी नहीं रही थी कि अन्तिम त्याग की तैयारी उसे रखनी चाहिए । उसका मन इसके लिए तैयार भी था । यह क्रांति

जनता की क्रांति है ! इसमें मनुष्य का हिसाब-किताब नहीं चलेगा । मैं इससे इतनी ही दूरी तक जाऊँगा, आगे नहीं जाऊँगा, यह नहीं हो सकता । यह तो बाढ़ है, महापूर है । इसमें कूदना या न कूदना, यह निर्णय तो मनुष्य कर सकता है । न कूदे तो उस पर कोई ज़बर्दस्ती नहीं है । पर कूदने के बाद वह भँवर में उलझकर रसातल को जाता है या किसी अदृश्य चट्टान से टकराकर चूर-चूर हो जाता है, यह कोई नहीं कह सकता और न कोई इसे रोक ही सकता है । जिसमें यह श्रद्धा हो कि यह वैतरिणी है, इस हतभागी, शृंखलाबद्ध मातृभूमि की दासता को पार कर, स्वतन्त्रता और आत्म-सम्मान के स्वर्ग को जाने का यही एक मात्र मार्ग है, वही इसमें कूदे । इसमें तो कबीर की तरह जो अपना घर फूँकने के लिए तैयार हो, वही जा सकता है । इसलिए अभय ने जब उस अँधेरी बरसाती सन्ध्या को, दीनबन्धु के साथ, अपनी माँ और पत्नी से बिदा ली थी तो यह विचार उसके दिमाग में आये बिना नहीं रहा कि संभवतः यह अन्तिम यात्रा है जिसमें लौटना न होगा । उसके बाद भी दो-चार बार उसके मन ने उससे कहा कि भाई, अब इस संसार की माया-ममता छोड़ और अपना डेरा समेटने की तैयारी कर । तूने जिस तरह इस आन्दोलन में मनसा-वाचा-कर्मणा योग दिया है, उसी तरह तुझे यज्ञ की सफल समाप्ति के लिए अपने प्राणों की पूर्णाहुति भी देनी होगी । इसके लिए वह तैयार भी था । पर उसने यह कभी नहीं सोचा था कि जिस रूप में यह सजा उसके सामने आयी है, उस तरह उसे मरना होगा । खून ! खून का इलज़ाम ! और उसके लिए फाँसी !

असली बात तो यह थी कि गांधी-तत्व पर सम्पूर्ण आस्था, सम्पूर्ण निष्ठा होने के कारण स्वप्न में भी किसी छिउटी को दुखा पाना उसके लिए असम्भव था। गांधी जी के जीवन-दर्शन के बारे में उसे ज़रा-सी भी शंका नहीं थी, कोई असमंजस नहीं था। ऐसी कोई बात नहीं थी जो प्रश्न चिह्न बन कर उसके सामने खड़ी हो। यों उसने ऐसा भी कोई निश्चय नहीं किया था कि वह इस दर्शन के प्रचार में या उसकी सेवा में ही अपना जीवन लगा देगा। राजनीति से उसका कोई सम्बन्ध नहीं था और न इस आन्दोलन के बाद वह उसमें कोई दिलचस्पी ही लेना चाहता था। वह तो प्रमुखतः विद्यार्थी था। ज्ञानार्जन में, अध्ययन-अध्यापन में उसकी विशेष रुचि थी और वही उसका जीवन-कार्य था, ऐसा वह मानता था। पर इन सब से पहले वह एक सुशिक्षित, सुसंस्कृति भारतीय युवक था, एक मानव था। उसकी भारतीयता और मानवता यह गवारा नहीं करती थी कि वह इस विशाल, महिमामय देश की गुलामी एक क्षण के लिए भी बर्दाश्त करे। भारत के दास्य-विमोचन का सबसे सरल सबसे सुन्दर, सबसे सीधा रास्ता गांधी जी ने ही बताया था ऐसी उसकी धारणा थी। गांधीजी के 'भारत छोड़ो' नारे ने उसका मन आकर्षित किया। उसी में वह बम्बई चला गया। वहाँ उसने गाँधी जी द्वारा विद्यार्थियों के लिए किया गया आवाहन स्वयं कानों से सुना। उसको स्वीकार करने की उसने उसी क्षण मन में ठान ली। और जब गांधीजी ने अपने अन्तिम भाषण में 'करेंगे या मरेंगे' की घोषणा की तो उसके दिल ने भी कहा—'करेंगे या मरेंगे' ! वह जानता था कि ये सिर्फ नारे

नहीं हैं जिनका मिट्टू की तरह घोष करके क्षणिक जोश बढ़ाया जाय। ये अगारे हैं जो मौत से खेलने का निमन्त्रण देने आये हैं। जो हथेली पर सिर रखकर चलने को तैयार है वही इस खेल में शामिल हो। और वह स्वयं, अर्भय कुमार, यह सब सोच-विचार कर ही उसमें शामिल हुआ था। इसका उसे कोई रंज नहीं था, पश्चाताप नहीं था। पर उस पर खून का, नर-हत्या का इलजाम लगाकर फांसी दी जायगी, यह उसने कभी नहीं सोचा था। मरने के हजार रास्ते हैं जिनसे मरा जा सकता है। फांसी पर चढ़कर भी मरा जा सकता है। किसी भी देश-भक्त के लिए वह गौरव की ही वस्तु है। पर भूठे इलजाम पर उसे फांसी की सजा होगी; यह उसने कभी नहीं सोचा था। सत्य तो यह था कि घुघरी जाने का निश्चय उसने केवल इसीलिए किया था कि वहाँ नर-हत्या न हो। पुलिस के अधिकारियों के साथ हिंसा न हो, पर उसी पर यह इलजाम लगा कि उसीने यह नर-हत्या भड़कायी और इसी के लिए वह घुघरी गया ! सत्य का यह कैसा विपर्यास ! न्याय की यह कैसी बिडम्बना ! जो साम्राज्य इतने भयंकर असत्य के लिए एक निर्दोष आदमी को जान-बूझकर, दिन-दहाड़े फांसी पर लटका सकता है, उसका वर्तमान कैसा भी क्यों न हो, भविष्य सुरक्षित नहीं हो सकता ! और यह दंड भी उन चौवरी मैजिस्ट्रेट के हाथ से मिले, जो स्वभाव से न्याय-प्रिय हैं, जिनके साथ उसके परिवारिक सम्बन्ध थे। इस सम्बन्ध के कारण उसके साथ मुरव्वत की जाय, यह उसका कहना नहीं था। पर उस पर सरासर अन्याय और जुल्म तो न लादा जाय ! वह यदि किसी की हत्या करता तो उसमें जरूर इतनी

हिम्मत थी कि वह उसे कुबूल कर लेता। अपनी जान बचाने के लिए वह असत्य का आश्रय कभी न लेता। अपने किये का फल भोगने से तो किसी का भी छुटकारा नहीं है। पर जो कभी किया न हो, करना तो दूर रहा, जो कभी स्वप्न में भी न सोचा हो, उसका भी फल जबर्दस्ती लादा जाय और वह भी महज इसीलिए कि आपके हाथ में पाशविक सत्ता है, पुलिस आपकी है, अदालत आपकी है, जेल आपकी है, और जल्लाद भी आप के हैं—तो इतने बड़े अन्याय, इतने बड़े असत्य, इतनी बड़ी अनीति के आधार पर आपकी सत्ता कितने दिन टिकी रहेगी ?

उसने मन-ही-मन कहा—पर अमय कुमार ! आज तेरी सुनता कौन है ? सारे विश्व में हिंसा का दावानल जल रहा है। न्याय, सत्य, मानवता का सरे-आम, धड़ाधड़ खून हो रहा है। मनुष्य की मानवता और ईश्वर का ईश्वरत्व कुछ देर के लिए सो गया है और विधाता ने शायद शुद्ध पाशविकता को पूरी छुट्टी दे दी है कि लो, तुम भी अपना खेल जी खोल कर खेल लो,—जितना नीचे उतर सकते हो, उतर जाओ, मन में कोई हविस बाकी न रहे कि हमने आत्म-संहार के लिए कोई भी बात उठा रखी है। ऐसा न हो तो फिर हमारे अगमन की घड़ी कैसे आयगी ? सूर्य को बुलाने के पहले निशा को अत्यन्त गहरी कालिख लगानी होती है। पुनर्जन्म के लिए आदमी को पहले मरना होता है।

इसलिए तुझे तो मरने के लिए ही तैयार रहना होगा। तू तो यों भी मरने के लिए तैयार था। इस घोर अन्याय की

पृष्ठ भूमि पर तो तेरी मृत्यु अब और भी अधिक भव्य हो उठेगी । तू तो केवल एक बार ही मर सकता है । फिर इस तरह क्यों न मरे कि तेरे मरने का पश्चात्ताप तेरे देशवासियों की अपेक्षा तुम्हें फांसी देनेवालों को अधिक हो और उन्हें अनुभव हो कि इस एक फांसी की उन्हें कितनी महँगी कीमत देनी पड़ी । क्योंकि यह ध्रुव सत्य है कि जितना घोर अन्याय, उसका उतना ही घोर प्रारिक्त !

और यकायक जब उसे भान हुआ कि उसकी मृत्यु अकारत नहीं जायगी, बड़े-बड़े फल लायगी तो वह मन-ही-मन बड़ा हर्षित हुआ । इस प्रकार की मृत्यु का सौभाग्य भी कितने कम लोगों को नसीब होता है । ईश्वर भी कितना दयालु है !

और यह सोचकर वह अदालत की तरफ मुड़ा कि उसे हृदय से धन्यवाद दे, पर वहाँ देखा—कि कुर्सी खाली है । उसने वकीलों से, पत्रकारों से प्रेमपूर्वक नमस्कार किया । वे उसके संयम और संतुलन को देखकर दंग रह गये—सचमुच यह एक अजीब वीर-पुरुष है !

और वह अपनी 'सेल' की तरफ जाने के लिए रवाना हुआ । पैर में बेड़ियाँ पड़ी थीं इसलिए चलने में ज़रा तकलीफ़ हो रही थी । पर वह धीरे-धीरे मजे में चल सकता था । हाथ में हथकड़ियाँ थीं । इन सब लौह शृंखलाओं की झन-झन के सुरों में सुर मिलाकर अभय कुमार गुनगुनाने लगा—

“सूली का पथ ही सीखा हूँ,
सुविधा सदा बचाता आया ।
मैं बलिपथ का अंगारा हूँ,

अनन्त गोपाल शेषड़े

जीवन-ज्वाल जगाता आया ।”

जब वह अपने गुनहखाने में पहुँचा तो उसके उसी पड़ोसी साथी ने पूछा—

“क्या हुआ भैया ?”

“फाँसी की सजा हो गयी यार ।”

“बाप रे फाँसी ! तुम तो ऐसे चहक रहे हो जैसे छूट गये ।”

“छूटे नहीं तो और क्या ? अब छूटने में क्या देर है ? अब यहाँ से तो चल दिये—अगली कार स्वतन्त्र भारत में जनम लेंगे ।”

और फिर अभय कुमार गाने लगा—

“इस गुलामी में तो हम को कोई खुशी आयी न नजर
चल दिये सूर-अदम जिन्दाना फैजाबाद से ।



इधर माँ ने जब फाँसी की सज़ा की खबर सुनी तो उन्हें अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ । यह कैसे संभव हो सकता है ? नहीं, किसीने ग़लत सुना होगा । ऐसा भी कभी हो सकता है कि जीते जी किसी आदमी के गले में फंदा डाल कर देखते-देखते उसके प्राण ले लिये जायँ ? जो प्राण मनुष्य दे नहीं सकता, उसे ले जाने का उसे क्या हक है ? यह अधिकार तो परमात्मा को छोड़कर और किसी का नहीं है । फिर उसके अधिकार में देखल देने का मानव को क्या अधिकार है ? क्या यह उसका अहंकार नहीं है ? मनुष्य को क्या हक कि वह और किसी मनुष्य का इन्साफ़ करे ? क्या वह सवज्ञ है जो किसी कर्म या अकर्म की तह में पहुँच सके और उसकी सारी कार्य-कारण मीमांसा को जान सके ? फिर तुम्ही बताओ मेरे ठाकुर कि यह भयंकर काण्ड क्यों हो रहा है मेरे अभ्य का क्या दोष है ? मैं यह मान ही

अनन्त गोपाल शेवडे

नहीं सकती कि वह किसी के बारे में हिंसा के विचार भी मन में ला सकता है, उसके खिलाफ कुछ करना तो दूर रहा। और मान लिया कि उसके हाथ से कुछ दोष हो भी गया हो तो इसमें उसके स्वार्थ की कौनसी बात थी? उसने जो कुछ किया, देश के लिए ही किया, व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं। फिर उसे ऐसी भयंकर सजा क्यों जो उसे प्राण से ही हाथ धोने पड़े? मैंने कौनसा अपराध किया जो बुढ़ापे में मेरी गोद ही सूती हो जाय? मेरी बेटी विजया का वह कौन सा पाप है जो उसे साल भर के भीतर ही वैधव्य का अभिशाप भोगना पड़े और उसके अनागत शिशु को पितृ-विमुखता का? अरे, मैं तो उस दिन की प्रतीक्षा कर रही थी अन्तर्यामी, कि मैं अभय के कंधे पर चढ़कर ही अपनी अंतिम यात्रा करूँ। और यहाँ तुमने यह क्या खेल रच डाला जो अपने जीते जी उसी की यात्रा देखूँ? तुम्हारे ही यहाँ जब न्याय नहीं है, सुनवाई नहीं है तो फिर इस विदेशी शासन को क्या कहूँ जो जान-बूझकर अंधा बन गया है और जिसकी आत्मा की जगह पत्थर बैठा है? अभय, अभय! तेरी यह क्या दशा हो गयी रे।

माँ अपनी भावनाओं का बाँध न समहाल सकीं। आज तक उन्होंने बहुत विवेक से काम लिया, अपने आप को बहुत रोका। खून के आँसू आये, फिर भी उन्हें पी गयीं। आँहें निकलतीं तो वह उन्हें भीतर-ही-भीतर दबा लेतीं ताकि विजया का धीरज न टूटे। पर इसके कारण उनका मन एक अत्यन्त विस्फोट दशा में हो गया था। ज़रा सी भी उत्तेजना मिले और वह फट पड़े। अभय के प्राण-दण्ड के समाचार ने उन्हें आमूलाग्र हिला दिया।

वे अब अपना बाँध न रोक सकीं और बच्चों की तरह बिलख-बिलख कर रोयीं। यहाँ तक कि विजया भी अपना दुःख पीकर उन्हें सांत्वना देने का प्रयत्न करने लगी। पर जब आसमान ही फट पड़ता है तो उसे थोड़ा से जोड़ने से क्या हासिल? इसलिए विजया ने भी माँ को रोने दिया, भरपूर रोने दिया। सोचा कि निकल जाने दो, दुःख की यह बाढ़ निकल जाने दो! नयनों को बरस लेने दो, खूब बरस लेने दो ताकि फिर एक बूँद भी निकलने को न रह जाय। फिर रोते-रोते आँखें ही पथरा जायँ तो यह रुदन ही बन्द हो जाय। घंटे आध घंटे के लिए माँ शांत रहतीं, फिर दुःख का एक आवेग आता और फफक-फफक कर रोने लगतीं। थोड़ी देर में यह बाढ़ भी निकल जाती और वे कुछ देर के लिए फिर स्वस्थ हो जाती। फिर बाढ़ आती...

और इसी प्रकार रात भर यह क्रम चलता रहा।

और विजया? विजया का क्या हाल पूछना है? एक क्षण में जीवन की सारी रुचि, सारा मोह, सारा आकर्षण जाता रहा। मन में एक असीम सूनापन, एक विशाल एवं सर्वव्यापी उदासी, एक अभेद्य जड़ता समा गयी। साँस चलती है क्योंकि वह अब तक रुकी नहीं, वह रुकी नहीं इसीलिए शरीर चलता है। पर जब वह रुक जाय तो कैसा मंगल हो? उसके कुसुम से भी कोमल हृदय रखनेवाले जीवन-साथी को विदेशी शासन की क्रूर हिंसा का शिकार बनना पड़ा, इसका उसे कम संताप नहीं था। यदि देश स्वतंत्र होता तो ऐसी भयंकर घटना कभी नहीं हो पाती, इसका उसे विश्वास था। पर ऐसी घटनाएँ हुए बिना देश स्वतंत्र भी कैसे होगा। जब तक स्वतंत्रता देवी के चरणों पर रक्त का अभिषेक

अनन्त गोपाल शेवड़े

पूरा न चढ़े तब तक उसका आगमन कैसे होगा और इस आभागे देश के युवकों के प्राणों की प्रतिष्ठा कैसे होगी ? आज तो इस आभागे देश के गुलाम नागरिकों के जीवन का कोई मोल नहीं । उनका कोई आदर नहीं, सम्मान नहीं, उनके गुणों की कोई कद्र नहीं, जैसे एक विशाल राहु ने ही सारे देश को भयंकर, विकराल ग्रहण लगा दिया है । भारत के नागरिक यानी मिट्टी के पुतले, काले, निर्जीव, बदसूरत ! उन्हें सजाने के लिए बंगलों में रक्खो तो क्या और ठोकर लगाओ तो क्या ? • उनके बड़े-से-बड़े नेता को, बुद्ध और ईसा की श्रेणी के युग-कर्ता और युग-द्रष्टा गांधी को विदेशी शासन का अदना-से-अदना सिपाही भी जब चाहे तब जेल में ठूस सकता है । वहाँ अभय जैसे विश्व विद्यालय के एक साधारण छात्र की क्या हस्ती है ? उसे गोली से मारा तो क्या, फाँसी से लटकाया तो क्या ? हिन्दुस्तान और इंग्लैंड के बीच में सात-समुन्दर पार एक लहर भी नहीं उठेगी ।



तीसरे दिन जेल में से एक पत्र आया विजया के लिए । प्रब अभय को सारी सुविधाएँ मिल गयी थीं । चूँकि उसके प्राण-का अब निश्चय हो चुका था, एक उसे शाही कैदी की तरह रखा जाता था । वह जो माँगे, उसे मिल सकता था । पर उसे क्या माँगना था ? वह कुछ नहीं चाहता था, केवल वही कि जो शांति उसे प्राप्त हो गयी थी वह अपनी माँ और पत्नी के हृदय में निर्माण कर सके । अपने बारे में उसे कोई चिन्ता नहीं थी । स्वभाव से वह निर्भय था, बहुत समझदार था, इसलिए जो हो रहा था उसे वह पूरा-पूरा समझ रहा था । उसकी एक मात्र साध यही थी कि यही समझ यदि उसकी माँ और पत्नी को हो जाय तो उसका अन्त भी बड़ा सुखद होगा । उसकी जान बच जाय, यह उसकी मंशा नहीं थी, और न माँग ही । जो अवश्यभावी है और जिससे किसी •

अनन्त गोपाल शेवड़े

भी प्रकार से छुटकारा नहीं है, उसका शांत-चित्त से, समाधान और आनन्द के साथ स्वागत किया जाय, यही एक मात्र उसकी इच्छा थी। यदि मन की ऐसी तैयारी हो जाय तो मृत्यु जैसी घटना भी मंगल हो उठेगी। इसीलिए उसने अपनी पत्नी को लिखा—

सेन्द्रल जेल...

प्रिय रानी,

मेरी फाँसी की सजा की बात सुनकर तुम्हें धक्का लमा होगा। मुझे भी लगा था। हम मानव हैं, भय-लोभ और ममता-मोह से भरे हुए। जीवन की आसक्ति छूटती नहीं। इसलिए उसके समाप्त होने का क्षण घोर दुःख देता है। स्वाभाविक है।

पर ज़रा आत्म-निरीक्षण करें और गौर से सोचें तो जो हो रहा है, उसमें क्या बुराई है ?

आखिर जीवन तो क्षण-भंगुर है ही। बड़े-बड़े संत-महात्मा हुए, धर्मावतार और युग-पुरुष हुए, पर कोई भी मृत्यु के आलिंगन से नहीं छूटा। यह शरीर तो मिट्टी का मटका है। एक न एक दिन तो उसे फूटना ही है। सवाल सिर्फ़ समय का है। कोई आगे जाता है, कोई पीछे। पर जाना जरूर है, रुकने का कोई मार्ग नहीं है, ललाट की इस रेखा को कोई नहीं भेट सकता।

और जाना ही है तो फिर इस तरह क्यों न जाया जाय कि मरण दिव्य हो उठे, भव्य हो उठे ! उसका गौरव और महिमा संसार में चमक उठे ! देश के लिए अपने प्राणों का भी बलिदान

करने का अवसर मिले, यह सौभाग्य कितने लोगों को नसीब होता है ? यह तो हमारे धन्य भाग्य कि ईश्वर ने मुझे इसके लिए चुना। ऐसा भाग्य पाने के लिए भी तपस्या करनी पड़ती है रानी ! पूर्व-जन्म के संचित पुण्य के बिना यह संभव नहीं हो सकता।

यों कोई मरना चाहे तो जब चाहे तब मर सकता है। आत्म-हत्या कौन नहीं कर सकता ? अटारी पर से कूद पड़े, रेल के नीचे कट जाय, कुएँ में जान दे दे, ज़हर खा ले, गले में फाँसी लगा ले—मरने के हजार तरीके हैं। पर आत्म-हत्या करने वाले को तो कायर कहते हैं। आत्म-हत्या जीवन में निराशा और विफलता के वातावरण को जन्म देती है।

और यही फाँसी यदि विदेशी शासन के हाथों लगे और वह भी देशभक्ति के 'अपराध' के कारण, तो रानी तुम्हीं बताओ इससे बढ़कर वीर और सुखद मरण और क्या हो सकता है ! अरे, मरना तो सभी को होता है। मैं भी हार्ट फेल से मर सकता था, किसी मोटर के नीचे दबकर मर सकता था। इसके पहले भी मर जाता। पर चिउंटी जैसी इस मृत्यु का क्या मतलब होता, क्या प्रयोजन होता ? दो-चार अड़ोसी-पड़ोसी आते और रोते-गाते, सहानुभूति जताकर चले जाते।

पर अब ? इस प्रकार के मरण के बाद तो तुम एक शहीद की पत्नी कहलाओगी, माँ को एक हुतात्मा की जन्मदात्री कहकर गौरव मिलेगा और मुझे मिलेगी सद्गति। तुम भूल गयी भगवान कृष्ण का आवाहन ?—

“हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं,
जित्वा वा भोक्ष्यसे महीं।

इस प्रकार की सुन्दर, वैभवमयी मृत्यु के बाद स्वर्ग की प्राप्ति कैसे रुक सकती है ?

यह तो समय का खेल है रानी कि जिन्हें अपने तत्वों और आदर्शों के लिए आज फाँसी चढ़ाया जाता है, कल उन्हीं की पूजा होती है। सुकरात को ज़हर का प्याला पीना पड़ा, क्योंकि अपने जमाने के खिलाफ़ उसने बगावत करके लोगों को सच्चे ज्ञान का मार्ग बताया था, पर उस पर इलज़ाम लगाया गया था कि वह नागरिकों को गुमराह करके पत्थर की ओर ले जा रहा है, इसलिए दण्डित होने का अधिकारी है। सुकरात मरकर अमर हो गया और उसे ज़हर देने वालों का नामोनिशां भी दुनिया से उठ गया और उसका बताया हुआ ज्ञान-मार्ग आज भी सर्व-मान्य है। ईसा को भी सत्य का प्रचार करने के लिए सूली पर टाँग दिया गया पर आज वही सूली का चिन्ह दुनिया की प्रायः एक तिहाई जन-संख्या के लिए धर्म-चिन्ह बन गया है। दुनिया का हमेशा यही कायदा रहा है कि उसने अपने संतों से छल किया है और उद्धारकों को पत्थर मारे हैं। पर यही पत्थर आगे चलकर उनके लिए फूल हो जाते हैं।

आदर्श के लिए, सिद्धान्त के लिए अपने जीवन का आत्मोत्सर्ग करने वाले अपने जमाने की बलिष्ठ पाशविक शक्ति के खिलाफ़ विद्रोह करने वाले दिव्य स्त्री-पुरुष हमारे देश में कम नहीं हुए—राणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, गुरु गोविन्द सिंह, महारानी लक्ष्मी बाई और वर्तमान ब्रिटिश कालीन भारत के कितने ही शहीद, जिनकी उज्ज्वल परम्परा ही असंख्य युवकों को स्फूर्ति और प्रेरणा देती रही है।

इन वीर-पुरुषों की उदात्त एवं धन्य परम्परा में बैठने का मुझ जैसे एक साधारण, नादान युवक को अवसर मिला— यह कितने सौभाग्य की बात है, ज़रा सोचो तो । यदि तुम इस पर सही दृष्टिकोण से विचार करो तो देखोगी कि यह क्षण शोक करने का नहीं है, खुशियाँ मनाने का है, रोने का नहीं है, श्रीसत्यनारायण की पूजा करने का है, जिनकी कृपा से ही यह सौभाग्य मुझे मिला । सचमुच, ईश्वर की हम लोगों पर कितनी अनुकम्पा है !

यह सच था कि मेरे अपने भी कुछ सपने थे । सोचा था कि मैं विश्व विद्यालय में डाक्टरेट की उपाधि ले लूँगा, कहीं प्रोफ़ेसर बन जाऊँगा, स्वयं पढ़ूँगा और विद्यार्थियों को पढ़ाऊँगा । ज्ञानार्जन और ज्ञान-प्रसार से बढ़कर मेरे लिये कोई सुख नहीं है । सोचा था कि हम छोटी सी घर-गृहस्थी बसायेंगे, उसकी तुम रानी होगी और माँ देवी । तुम्हारी गोद में बच्चा खेलेंगा और उसकी निर्मल और पावन किलकारियों से हमारा घर मुखरित हो उठेगा । हम दोनों मिलकर माँ की सेवा करेंगे, पूजा करेंगे, ताकि मुझे बनाने के लिए उसने जो असीम कष्ट उठाये हैं, उनका कुछ तो परिमार्जन हो ।

और तुम्हें पाकर तो मेरी रानी, मैं सब कुछ पा गया था । तुम अपने संपन्न चाचा का परिवार छोड़कर आर्या और मुझ जैसे अकिंचन के साथ अपने जीवन की गाँठ बाँध ली । पर मेरी ऊबड़-खाबड़ गृहस्थी में तुमने एक क्षण भी अभाव की भावना न आने दी । तुम आर्या तो ऐसा लगा कि मेरी कुटिया में आनन्द और सुख के सहस्र-सहस्र मंगल-दीप जगमगा उठे ।

अनन्त गोपाल शेवड़े

तुम क्या आयीं मेरे यहाँ साक्षात् लक्ष्मी और अन्नपूर्णा ही अवतरित हुईं ।

तुम्हारी दिव्य प्रीति ने मुझे जो अनुपम अनिवर्चनीय सुख दिया, उसे मैं कदापि नहीं भूल सकता । उत्कट और उदात्त प्रीति मनुष्य के जीवन में इतनी स्फूर्ति और प्रेरणा भर सकती है, इसका मुझे कभी अनुभव ही नहीं था । तुम्हारे इस अलौकिक दिव्य प्रेम के कारण ही मुझे प्रेरणा हुई कि मैं स्वतंत्रता के संग्राम में कूद पड़ूँ । तुम तेजस्विनी हो, स्वाभिमानिनी हो, यह मैं जानता हूँ । एक कायर कर्तृत्वहीन और निकम्मे पुरुष से तुम कदापि प्रेम नहीं कर सकती थीं । जो तुम्हारा आदर नहीं पा सकता, वह तुम्हारा प्रेम भी कदापि नहीं प्राप्त कर सकता, यह मैं बराबर जानता हूँ ।

हमारा प्रेम-जीवन अल्प-जीवि रहा, पर क्या इसी कारण उसके अतुल वैभव और अपरिमित आनन्द में कोई न्यूनता आयगी ? उन दिव्य क्षणों की स्मृति ही हमारा वैभव है, वही अब जीवन के अंत तक हमारा सम्बल है, पाथेय है ।

और क्या वह शिशु जो अपनी प्रीति के प्रतीक के रूप में, तुम्हारी कोख में साँस ले रहा है, ईश्वर का वरदान नहीं है ? वही आ रहा है तुम्हारा जीवन जगमगाने के लिए, जिसे तुम उसके पिता की यह अद्भुत जीवन-कहानी बड़े अभिमान और गर्व के साथ बता सकोगी । यदि मेरे भाग्य में फाँसी न लिखी होती तो तुम्हारे पास उस बच्चे को बताने के लिए क्या रहता ? मैं यदि स्वतंत्रता नहीं देख सका, तो वह बच्चा यदि देख पाये, मेरी आत्मा को अवश्य ही शांति मिलेगी । आखिर स्वतंत्रता

के लिए यह सारी पीढ़ी क्यों लड़ रही है ? इसीलिए न कि आने वाली पीढ़ियाँ तो कम-से-कम गुलामी के अपमान और अभिशप से मुक्त रहें ?

इसलिए रानी, यह समय रोने-पछुताने का नहीं है, दिवाली मनाने का है। मीरा की प्रीति गिरिधर नागर की प्रीति में विलीन हो गयी, ज्योति से ज्योति मिल गयी। तुम्हें स्मरण होगा कि विवाह के अवसर पर तुमने मुझे वर-माला पहनायी थी। तब देखा जाय तो उसमें तथा फाँसी की रस्ती में विशेष अंतर नहीं है। दोनों ही प्रीति के प्रतीक हैं। एक मानव का मानव से मिलन कराती है, दूसरी मानव का परमेश्वर से। दोनों ही मिलन के प्रतीक हैं, एक ही दिव्य शक्ति के दो स्वरूप। एक मानवीय प्रेम की परिपूर्ति करती है, दूसरी देश-प्रेम की। प्रेम का पंथ एक ही है, चाहे यह मानव का प्रेम हो, देश-धर्म का प्रेम हो या ईश्वर का ! तत्त्व सब का एक है, केवल प्रकटीकरण के रूप भिन्न हैं। सच्चा पुरुष वही है जो फाँसी की रस्ती पर भी उसी मस्ती और मौज से झूलें जिस मस्ती से यह प्रीति के आलिंगन में झूपता है, क्योंकि सच्ची प्रीति दिव्यत्व की ओर ले जानेवाली होती है, विलास की ओर नहीं।

यह शरीर मिट्टी का बना हुआ है। इसी देश के अन्न-जल से वह पाला-पोसा गया है। उसी की सेवा में वह समर्पित हो जाय, इससे बढ़कर क्या सुख हो सकता है—

मिट्टी ओढ़ावन, मिट्टी बिछावन,
मिट्टी से मिल जाना होगा।
कर ले सिगार, चतुर अलबेली,
साजन के घर जाना होगा।

अनन्त गोपाल शेषदे

इसलिए विजया ! मैं तुमसे यही आशा करता हूँ कि इस प्रसंग का तुम बड़ी शांति के साथ मुकाबला करो और माँ को भी उसी तरह कराओ। तुम स्वयं वीर हो, वीर-पत्नी हो, मुझे दृढ़ विश्वास है कि तुम्हारे आचरण में ऐसी कोई भी बात नहीं आयगी जो तुम्हारे आत्म-सम्मान और शान के खिलाफ हो। यह पत्र तुम माँ को भी दिखा देना और कहना कि तुम्हारा अमय तुमसे केवल इतनी ही भिन्ना माँगता है कि उसके जन्म के समय तुम जैसी प्रसन्न थीं, उसी तरह तुम उसके मरण के समय भी रहो, क्योंकि तुम्हारे पुत्र का यह मरण मरण नहीं है, अमरत्व की निशानी है। मेरी इच्छा है कि मैं फिर भारत देश में ही जन्म लूँ, इसी माँ को फिर पाऊँ, और वह भारत स्वतंत्र हो। और विजया रानी तुम्हारा और मेरा तो अब जन्म-जन्मांतर का साथ है। वह एक शरीर के छूटने से कैसे छूटेगा ? वह तो आत्मा का मिलन है, शरीर से परे। पुराने वस्त्रों की तरह शरीर को छोड़ दिया जा सकता है, और नये पहने जा सकते हैं, पर इन भिन्न-भिन्न वस्त्रों को धारण करने वाली आत्मा एक है, शाश्वत है, चिरंतन है, अमर है। गीता में तो तुमने पढ़ा ही होगा—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय

नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णानि

अन्यानि संयाति नवानि देही ॥

जिस प्रकार मनुष्य जीर्ण वस्त्रों को छोड़कर नये वस्त्र धारण कर लेता है उसी प्रकार देह धारण करने वाली आत्मा एक

ज्वालामुखी

जीर्ण शरीर को छोड़कर दूसरे नवीन शरीर में प्रवेश कर लेती है ।

तुम समझदार हो, रानी ! गीता हम नित्य पढ़ा करते थे । आज उस पर आचरण करने की घड़ी आ गयी है । आज हमारी परीक्षा का समय है । हमें गीता की लाज रखनी है । मुझे दृढ़ विश्वास है कि हम इस परीक्षा में उत्तीर्ण होंगे ।

यदि तुम और माँ अब मुझसे मिलने आना चाहती हो तो इजाजत मिल सकती है । इसमें कुछ तथ्य समझो तो आ जाना, मुझे आपत्ति नहीं होगी । पर यह सोच लेना कि मिलने के बाद कष्ट न बड़े । वरना उससे कोई लाभ नहीं । माँ को समझालना विजया, और उस अनागत बच्चे को जो तुम्हें नित्य स्मरण दिलाता रहेगा कि मैं तुम्हारा अभिन्न था और सदैव अभिन्न रहूँगा—

अ भ य



अभयकुमार को फाँसी के समाचार ने सारे देश में हलचल मचा दी। जिस तरह मुकदमा चल रहा था, किसको उम्मीद थी कि उसे प्राणदण्ड दिया जायगा। हाँ, सात वर्ष तक की जेल हो सकती थी, यही आम तौर पर खयाल था। इस घटना ने देश को बता दिया कि सरकार प्रतिहिंसा के मार्ग पर डटी हुई है और जनता में दहशत बैठाना चाहती है। बचाव समिति ने बड़ी दौड़-धूप की। फण्ड में धड़ाधड़ रुपये आने लगे। सरकारी नौकरों ने भी गुप्त रूप से उसमें धन दिया। एक अपील की गयी हाई कोर्ट में, वह खारिज हुई। प्रिवी कौंसिल में दूसरी अपील दायर की गयी। दो बार फाँसी की तारीखें निश्चित हुईं और इन अपीलों के कारण दो बार मुलतवी की गयीं। पर जब प्रिवी कौंसिल से भी अपील खारिज हो गयी तब जनता में निराशा फैल गयी। अब केवल बाइसराय के पास

दया की अर्जों भेजना भर बाकी था। अभयकुमार इन सब बातों के खिलाफ़ था। वाइसराय के सामने हाथ पसार कर प्राणों की भीख माँगी जाय, यह उसके स्वाभिमान को बर्दाश्त नहीं था। आखिर जब प्राणों का मोल देना ही है तो उसमें यह कल्मष क्यों लगे ? क्यों न दुनिया जान ले कि भारत के नव-युवक अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए हँसते-खेलते जान दे सकते हैं ? अब चूँकि उसे मरना ही है, तो उस पर एकदम जिम्मेदारी आ गयी है कि उसके मरने पर किसी प्रकार का बट्ठा न लगे। आज वह उन शहीदों की पंक्ति में बैठा है, जिनके वीर-मरण से इतिहास के पन्ने सुवर्ण-प्रभा से चमक उठे हैं। उनकी पुण्य-स्मृति पर वह अब किसी प्रकार का लॉछन नहीं लगाने देगा। मीरा को डसाने के लिए साँप भेजे गये, उसने उनकी शालिग्राम के रूप में पूजा की। राणाजी ने विष का प्याला भेजा तो मीरा ने हँस कर पी लिया। आज उसके सौभाग्य ललाट पर यही लिखा है कि उसके गले में फाँसी की रस्ती पड़ने वाली है तो क्या वह यथार्थ में उसका गलहार नहीं है ? जब उसका मन उस मंगल-वेला की प्रतीक्षा में बैठा है, जब उसे यह घट छोड़कर प्रिय की नगरिया में जाना है तो उसे टालने की, उससे बचने की यह भद्दी और विद्रूपमयी भाग-दौड़ क्यों ?

पर उसका मन कहता था कि इस दौड़-धूप का कोई नतीजा नहीं होगा। जो अपने प्राणों का मूल्य बहुत आँकते हैं वे ही उन्हें बचाने के लिए ज़मीन-आसमान के कुलाबे एक करते हैं। उसका विश्वास था कि गांधी जी को यह सब बात नहीं भायेगी, उसका मन शांत था, बिलकुल नैयार था। और जब उसे

विजया का पत्र मिला जिसमें लिखा था कि उसके पत्र के कारण उसे तथा माँ को बड़ी शांति मिली और उनका मन भी अब तैयार हो गया है, तो उसे अत्यन्त आनन्द हुआ। इससे बढ़कर वह और क्या माँग सकता था ? अब वह पूर्णतः एकाग्र अपने परमेश्वर से मिलने की तैयारी में लग गया। खूब डटकर भजन करता, गीता रामायण पढ़ता। एक अजीब मस्ती उस पर छायी हुई थी। धरती का मोह उसे कम होने लगा। ऐसे लगता कि वह वायु के पंखों पर उड़कर आकाश में विचरण कर रहा है। अब उसके मन में कोई इच्छा या वासना नहीं बच रही थी। स्वभाव से बड़ा विवेकी और सतोषी था, इसलिए उसने जीवन में जो कुछ पाया, बहुत पाया, यही उसे लगता था। अच्छी माता मिली, अच्छी पत्नी मिली। चंद दिनों के लिए ही क्यों न हो, उसकी कुटिया में स्वर्ग उतर आया। उसका घर क्या था, जैसे एक मन्दिर। शांति और सौख्य का मंगल-दीप उसमें सतत जलता था। कालेज की उसकी पढ़ाई पूरी हो गयी, थोड़ा समय मिलता तो डाक्टरेट भी मिल जाती। विद्यार्थी तथा प्रोफेसर बन्धु उस पर जान देते थे—इतना वह लोकप्रिय था। इस आन्दोलन में भी पड़ा तो उसके साथियों का अकृत्रिम प्रेम और आदर ही उसे मिला। शोता जैसी युवती का स्नेह मिला, जो विजया के पीछे छाया की तरह निरन्तर खड़ी रहेगी और दीन-बन्धु जैसा बुजुर्ग सखा मिला, जो उसकी माँ को दम रहते तक ज़रा भी आंच नहीं लगने देगा। और फिर उसका यह विशाल, महान, प्यारा देश है, जिसकी भूमि में कृतज्ञता, अतिथि-वात्सल्य और स्नेह भरा पड़ा है। और सबसे बड़ा तो वह ईश्वर है

ज्वालामुखी

जिसको सब की लाज है, चिन्ता है। अपनी माँ और पत्नी को ममतामयी, सुन्दर दुनिया में छोड़ते हुए उसे दुःख नहीं होना चाहिए, चिन्ता नहीं होनी चाहिए। और सचमुच चिन्ता करना उसने छोड़ दिया था। सूरदास के शब्दों में उसने अत्यन्त समाधान और आत्म-संतोष की भावना से अपने प्रभु से कह डाला था “जैसे राखहु वैसे हि रहौ”। जो तुम दोगे वही मुझे प्रसाद के रूप में स्वीकार है। तुम विष दो तो, और अमृत दो तो, क्या देना या क्या न देना, यह सोचने का काम तुम्हारा है। मेरा तो काम जो तुम दोगे उसे आनन्द से, प्रसन्न-चित्त से स्वीकार कर लेने का है। इसलिए तुम्हारी आज्ञा मुझे हर तरह शिरोधार्य है।



वाइसराय के पास सारे देश से हज़ारों तार गये कि अभय-कुमार की फाँसी रद्द की जाय। असेम्बली के सदस्यों के तथा भिन्न-भिन्न संस्थाओं के डेप्युटेशन भी मिले। पर वाइसराय ने यही इशारा किया कि इस मामले में उनके हाथ बँधे हुए हैं, सारी नीति लन्दन से निर्धारित हो रही है। और लन्दन साम्राज्यवाद के खिलाफ़ विद्रोह करनेवालों के साथ कोई दया-मुरब्बत दिखाने के लिए तैयार नहीं है।

पर अन्त तक लोगों को आशा बनी रही कि आखिरी क्षण के पहले ही कुछ-न-कुछ होगा और अभय की फाँसी रुक जायगी। चौधरी मैजिस्ट्रेट की पत्नी ने घर में शतचण्डी का पाठ बैठाया। दीनबन्धु तथा उसकी पत्नी लच्छमी ने भी व्रत-उपवास रखे। घर-घर में रुद्राभिषेक शुरू हुआ, जप-पाठ चालू किये गये, यज्ञ-हवन किये गये तथा ईश्वर की शक्ति का आवाहन

किया गया कि वह इस निर्मल कामल अन्तःकरण के युवक के प्राणों की रक्षा करे। स्त्रियों ने वरों में वट-वृक्ष की पूजा की मानताएँ बोलीं और सावित्री की तरह विजया के सौभाग्य को अखण्ड बनाये रखने के लिए वरदान माँगे। जिसका जिसमें विश्वास था, उसने वह सब किशार्तिक किसी भी भक्त का भगवान् प्रार्थना सुन ले और अभयकुमार की रक्षा कर ले। एक देश-भक्त युवक के प्राणों के लिए समाज की इतनी आस्था, इतना तादात्म्य, इतनी चिंता सचमुच अद्भुत थी। इससे यही बात स्पष्ट थी कि जिन तत्वों के लिए उस युवक का बलिदान हो रहा था, वे तत्व भारत के कोटि-कोटि जन-मन के रोम-रोम में भरे थे। विजया तथा माँ को सहानुभूति और स्नेहभावना का यह विराट् स्वरूप देखकर अपार शांति मिली। उन्होंने जान लिया कि उनका दुःख उनका अपना ही नहीं है। उसमें समाज के असंख्य नर-नारी सहभागी हैं। और इसी ज्ञान के कारण उनका दुःख भी हल्का हुआ।

पर ये सब व्रत-उपवास जो हो रहे हैं, पूजा-अर्चना हो रही है, इसका कुछ लाभ होगा? क्या भगवान्, जो सबके तारणहार हैं, इतने लोगों की आर्त प्रार्थना और मनुहार सुनकर सहायता के लिए दौड़ पड़ेंगे? अभय की माँ आशा-निराशा के समुद्र में गोते लगाती हुई यह प्रश्न पूछा करती थी—“क्या होगा भगवान्! क्या होगा?”

“अभी कुछ नहीं होगा माँ!”—किसी ने पीछे से कहा। देखा तो सामने एक भव्याकृति साधु खड़े हैं जिनकी शुभ्र डाढ़ी और जटाएँ देखकर माँ को पहले तो भय लगा, बाद में अद्भुत

जाग उठी। मथ्यरात्रि उलट चुकी थी और माँ अस्वस्थता से अपने बिस्तर पर करवटें ले रही थीं। तभी अकस्मात् ये साधू सामने आ गये।”

“आप का कहाँ से पधारना हुआ, महाराज?”—माँ ने हड़बड़ाकर पूछा। “और आपने जो कहा कि अभी कुछ नहीं होगा सो उसका क्या अर्थ है?”

“हम तो महादेव के जंगल से आये हैं माँ! शंकरजी के दर्शन करके अभयकुमार जब लौट रहा था तो वह मेरी कुटिया में रात भर ठहरा था। मुझे पता चला कि उसे फाँसी की सजा हो गयी है। इसीलिए मैं तुमसे मिलने चला आया माँ। तीस बरस में यह पहली बार है जो मैंने अपनी कुटिया छोड़ी। पर प्रसंग ही आ गया तो आना ही पड़ा।”—बाबाजी बोले।

“मेरे बड़े अहोभाग्य कि आपने मुझ अनाथिनी पर इतनी दया की। आप तो अंतर्दामी हैं बाबा, सब कुछ जानते हैं। आप ही बताइए, कुछ अमंगल तो नहीं होगा?”—माँ ने पूछा।

“क्या मंगल है और क्या अमंगल है, वह हम अपनी-अपनी दृष्टि से देखते हैं, माई। जो हमारी दृष्टि से आज अमंगल दिखायी देता है, कल चलकर वही मंगल हो जाता है, क्योंकि प्रभु की दृष्टि में वही मंगल है। और आज जिसे हम मंगल कहते हैं, वही कल अमंगल भी हो सकता है। मंगल और अमंगल का निर्णय तो वही कर सकता है जो ज्ञानी है। पर मनुष्य अभी ज्ञान से कितनी दूर है?”

“सो तो ठीक कहते हैं महाराज! पर यह पुत्र-मोह तो छूटता नहीं। उसीसे तो सब दुख है।”

“इस मोह को छोड़ दो माँ ! अभय अब केवल तुम्हारा पुत्र नहीं रहा है, वह अब भारत माँ का पुत्र, जनता का पुत्र हो गया है । उसकी चिंता तो अब भगवान को है ! तुम क्यों अब उससे उद्धिग्न होती हो ? जो होनहार है उसे कोई मेट नहीं सकता । आज अभय को मरना ही होगा—उसे कोई टाल नहीं सकता । पर यह भी उतना ही अटल सत्य है माँ, कि अभय अमर हो गया । वह स्वयं अमर हो गया, और तुम्हें, जो तुम उसकी जन्म-दात्री माँ हो, उसे भी अंतर कर गया । तुम यह गाँठ-बाँध लेना माँ, अभय का बलिदान व्यर्थ नहीं जायगा । रात्रि का यह अन्तिम प्रहर है, इसलिए अन्धकार अत्यन्त गहरा है, कुछ सूझ नहीं पड़ता । लगती है यह काल-रात्रि, पर विश्वास रखो कि प्राची में स्वतन्त्रता के सूर्य की किरणें बाहर आने के लिए छुटपटा रही हैं, तड़प रही हैं । उनकी इस भयङ्कर प्रसव-वेदना और तड़पन का क्या मूल्य नहीं है माँ ? भाँसी की रानी को तो प्रायः एक शताब्दि तक ठहरना पड़ा, पर अभय को नहीं ठहरना होगा । वह जा रहा है स्वातन्त्र्य देवी को लाने के लिए, वैतालिक की तरह अलख जगाने । उसे जाने दो माँ, प्रसन्न चित्त से जाने दो । कुछ भी हो जाय, पर इसमें अमंगल कहीं नहीं है—इसे पत्थर की लकीर समझो ।”

“सचमुच बाबाजी ?”—माँ ने उत्साह से कहा ।

हाँ, सचमुच ! जो हो रहा है, वह भगवान की पूर्व-योजना के अनुसार हो रहा है । अभय को कोई मारनेवाला नहीं है और अभय मरनेवाला नहीं है । सब के सब निमित्त होकर भगवान की लीला कर रहे हैं । भगवान ने अभय को अपनी लीला के

लिए चुना, इसी सौभाग्य के लिए मैं तुम्हें बधाई देने आया हूँ। तुम इतनी हतभागी मत बनो माँ, कि उसकी प्रखर उज्ज्वलता पर अपने मोह की कलुषता का ग्रहण लगा दो।”

“मैं समझ गयी गुरु देव !” माँ हाथ जोड़कर बोली। “मैं सब कुछ समझ गयी। अब आपको मुझ से कभी कोई शिकायत नहीं होगी।”

“तुम्हारा कल्याण हो माँ ! तुम तो साक्षात् भगवती का अवतार हो। मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ—”

और ऐसा कहकर बाबाजी ने अपना डण्डा उठाया और खड़ाऊँ चटकाकर चलने को उद्यत हुए।

“महाराज, कुछ खा-पीकर तो जाओ ?” माँ ने बड़ी आजिझी के साथ कहा।

“नहीं माँ, इसकी कोई आवश्यकता नहीं। इसकी चिन्ता न करो। मेरा समय हो गया”—और वे आगे की ओर बढ़ते ही चले गये, पीछे मुड़कर एक बार भी नहीं देखा। माँ ने कुछ देर के लिए तो उनकी खड़ाऊँ की चट-चट सुनी पर शीघ्र ही वह शांत हो गयी और साधु महाराज अंधकार में ही अंतर्धान हो गये।

जिस दिशा में वे गये थे, माँ ने उस दिशा में ज़मीन पर माथा टेककर नमस्कार किया।

उठकर देखा तो घड़ी में रात्रि के साढ़े तीन बजे थे।

तब से माँ की नींद उचटी सो उचटी हो रही। विजया का भी यही हाल था। माँ ठाकुरजी के पास जप करने बैठ गयीं और विजया अपने बिस्तर पर ही लेटी रही—अन्धकार में एक-टक

ज्वालामुखी

देखती रही। एक अभूतपूर्व भारीपन, असीम बाधरता उसके हृदय में छा गयी।

सुबह साढ़े छः बजे अकस्मात् लोहे की कीलों के जूते बजाते हुए जेल के दो वार्डर—जमादार—आये—और बोले—

“आज तड़के ही अभयकुमार को फाँसी लग गयी। उसके रिश्तेदार चाहें तो उसका शरीर उन्हें दिया जा सकता है।”

माँ ने यह सुना और वहीं पत्थर की मूर्ति—सी जड़वत् बैठी रहीं। उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी सो बहती ही रही।

विजया फ़ौरन उठी और बड़े विवेक और आत्मसंयम के साथ बोली—“हाँ, हमें शरीर चाहिए। हम आठ बजे तक लेने आते हैं।”

अभय को फाँसी लगने का समाचार सारे शहर में धधकती हुई आग की तरह फैल गया । जिन्होंने जिस स्थिति में वह खबर सुनी, हाथ राम करके और न हाथ का काम छोड़ा और जेल के फाटक पर पागलों की तरह दौड़ पड़े । उनमें स्त्रियाँ थीं, पुरुष थे, युवक थे, बूढ़े थे और स्कूल के बच्चे भी थे । घंटे भर के भीतर ही सेंट्रल जेल के फाटक के विशाल प्रांगण में तिल रखने का जगह नहीं रही । उनके चेहरे पर संताप और रंज दोनों भावनाएँ स्पष्ट अंकित थीं । उनमें से कई तो अभी सोकर उठे थे, पर वे हाथ-मुँह धोने के लिए नहीं रुके । स्त्रियों ने बाल नहीं सँवारे, जो जैसा था वैसा का वैसा दौड़ पड़ा । इस विराट जनमेदिनी की प्रचुम्बता देखकर अधिकारी-गण घबड़ा गये । पता नहीं इसका क्या नतीजा हो ?

मृत शरीर रिश्तेदारों को सौंपा जाय, यह हुक्म कैसे दिया

गया, इसीका लोगों को आश्चर्य हुआ। क्योंकि सरकार का जो कड़ा और क्रूर रुख था उसे देखते हुए वह कोई ऐसी रियायत दिखायेगी, ऐसी उम्मीद नहीं थी। फाँसी देने की तिथि और समय निश्चित होने के बाद तो सुबह-शाम जेल से अभयकुमार के बारे में रिपोर्टें जाया करती थी और सेक्रेटरीएट और गवर्नमेंट हाऊस में उनकी छान-बीन होती। कुछ भारतीय अफसरों की दिल से मंशा थी कि मृत के शव के पीछे जो संस्कार और भावना छिपी है, उसे देखते हुए शव अन्त्येष्टि क्रिया के लिए रिश्तेदारों को सौंपा जाना ही उचित है। आखिर जो मुद्दे की बात थी वह तो सरकार ने कर ही ली—यानी फाँसी तो दे ही दी। फिर इतनी सी रियायत दिखाने में क्या हर्ज है ? अंग्रेज अधिकारियों में इसके बारे में ज़रा मतभेद था। एक दल कहता था कि शव दे दिया जाना चाहिए—भले ही उसका जुलूस निकले। उससे जनता में दहशत की भावना फैलेगी—लोग अपनी आँखों देखेंगे कि सरकार से विद्रोह करने का क्या नतीजा होता है। पर दूसरे दल का यह मत था कि नहीं, जेल में ही दाह-कर्म कर डालना चाहिए और तभी उसके रिश्तेदारों को खबर देनी चाहिए। जुलूस-प्रदर्शन आदि से असंतोष बढ़ेगा और अमन-चैन को खतरा होगा।

ऐसे वातावरण में जब अभयकुमार को फाँसी दिये जाने की रिपोर्ट सरकार के पास पहुँची तो यही फैसला किया गया कि शव रिश्तेदारों को दे दिया जाय। रिपोर्ट में लिखा था कि जब प्रातःकाल तीन बजे उठ कर उसे बताया गया कि पाँच बजे उसे फाँसी दी जानेवाली है तब वह बिल्कुल शांत था, अविचल

अनन्त गोपाल शेवडे

था, गम्भीर था । उसने फौरन उठकर दातुन की, हाथ-मुँह धोया, स्नान-शौचादि से निवृत्त होकर गीता का पाठ प्रारम्भ किया—

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।

विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥ २ : १७ ॥

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।

अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत, ॥ २ : १८ ॥

य एन वेत्ति हन्तारं यश्चैन मन्यते हतम् ।

उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥ २ : १९ ॥

न जायते म्रियते वा कदाचि-

न्नार्यं भूत्वा भविता वा न भूयः ।

अज्ञो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो

न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ २ : २० ॥

चेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।

कथं स पुरुषः पार्थ कं वातयति हन्ति कम् ॥ २ : २१ ॥

और फिर.....

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥ २ : २२ ॥

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।

नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥ २ : २४ ॥

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।

तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥ २ : २५ ॥

जब तक वह गीता का पाठ करता रहा, सन्तरी अविचल भाव से हाथ जोड़कर सुनते रहे । उनकी आँखों से आँसू बह

गीता के बाद उसने प्रार्थना की और दो चार भजन गाये ।
‘रघुपति राघव राजाराम’ की धुन लगायी । इतने में पीने पौंच
बज गये । जेल के सुपरिटेण्डेंट ने पूछा—

“आपकी अन्तिम इच्छा क्या है ?”

“अन्तिम इच्छा ? वह और क्या हो सकती है, सिवा इसके
कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद का अन्त हो और मेरा देश स्वतन्त्र
हो !”

“वह तो मेरे हाथ की बात नहीं है । पर आपकी कोई
व्यक्तिगत इच्छा हो तो उसे मैं पूरी करने की कोशिश करूँगा ।”

“व्यक्तिगत इच्छा ?.....वह तो कुछ भी नहीं है ।”

“अपने मृत शरीर के बारे में कुछ कहना है ?”

“हाँ, इच्छा तो यही है कि वह मेरे रिस्तेदारों को दे दिया
जाय । वे जीते जी मुझे नहीं पा सके—मरने के बाद तो कम-से-
कम एक बार देख लें ।”

“अच्छी बात है—यही होगा । चलिए समय हो गया है ।”
सुपरिटेण्डेंट ने कहा ।

अभय फ़ौरन उठ खड़ा हुआ । उसके हाथ पीछे से बाँध दिये
गये । पैर भी । सिर पर काली टोपी पहना दी गयी । उसकी
आँखों के सामने अँधेरा छा गया । वह अँधेरा—जिसके बाहर
अब वह कभी न निकल सकेगा ।

पर उसके अन्तर मन में, हृदय में, एक कभी न मिटने वाला
अमर्त्य प्रकाश था जो उसकी आत्मा को उद्भासित और
उत्तलित किये हुए था । वह मन-ही-मन इस प्रार्थना-मंत्र का
उच्चारण कर रहा था—

अनन्त गोपाल शेवडे

ॐ असतो मा सद्गमय ! तमसो मा ज्योतिर्गमय !! मृत्यो-
र्मन्त्रितं गमय !!!

अर्थात् मुझे असत् से सत्य की ओर ले चल, अंधकार से प्रकाश की ओर ले चल, मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चल !

इसके बाद का काम चटपट हुआ। उसे फाँसी के तख्ते पर उस जगह खड़ा किया गया जहाँ खड़िया मिट्टी से उसके लिए एक गोलाकार स्थान निश्चित किया गया था। फौरन फाँसी का फंदा उसके गले में लगा—उसे कुछ ठंडा-ठंडा सा लगा। वह पुकार उठा—“स्वतन्त्र भारत अमर हो !”

और एक ही क्षण में एक झटका लगा, एक धड़का हुआ, उसे लगा कि किसी ने उसके गले पर गर्म लोहे की लाल-लाल धधकती हुई छड़ रख दी है और फिर एकदम मूर्छावस्था और शून्य ! विराट शून्य !!

उसकी अन्तिम इच्छा का मान रखने के लिए ही शव रिश्तेदारों को सौंपा गया।

पर जब यह फ़ैसला किया गया था तब आई० जी० पुलिस, जो एक सख्त अंग्रेज़ अफसर था, दौरे पर था। उसे जब फाँसी और जुलूस की खबर मिली तो वह फ़ौरन राजधानी को लौटा और गवर्नमेंट हाउस में जाकर उसने इस फ़ैसले का सख्त विरोध किया। उसकी राय थी कि शव के जुलूस को निकलने देना विद्रोह की भावना को भड़काना है।

पर अब तक शव का जुलूस जेल का फाटक छोड़कर शहर के प्रमुख रास्ते पर आ गया था। शव पर एक विशाल-काय तिरंगा झण्डा ओढ़ाया गया था। वह फूलों से लदा था।

उसकी बड़ी हुई डाढ़ी और गौरवर्ण मुख के कारण वह एक ध्यानस्थ योगी जैसा लगता था। चेहरे पर परम समाधान और शांति के भाव अंकित थे। ऐसा लगता था जैसे वह समाधि की अवस्था में लीन है। चेहरे पर वेदना या दुःख की एक शिकन नहीं। उसका यह भव्य और दिव्य स्वरूप देखकर लोगों का हृदय एक अजीब तेज से भर जाता था, पर अथाह वेदना के कारण साथ ही छाती फट-सी जाती थी। और अकस्मात् आँखों से पानी बहने लगता था—ओफ़ !

अर्थों के निकट ही सफ़ेद साड़ी पहने, नंगे पाँव, विजया चल रही थी, जिसके भाल का कुमकुम पोंछ डाला गया था। पर उसके आँसू नहीं आ रहे थे। वह सन्न होकर चलती जा रही थी। उसके पीछे कन्धे पर हाथ रखकर शांता चली जा रही थी। दीनबन्धु सबसे आगे काली हांडी में आग लिये चला जा रहा था—एक हाथ से हांडी सम्हाले हुए था, दूसरे से आँसू पोंछता जाता था। दीनता, असहायता और करुणा की साक्षात् मूर्ति ! और जुलूस के साथ लगभग चालीस-पचास हजार स्त्री-पुरुष। कई स्त्रियाँ अपने बच्चों को गोद में लिये रोती-बिलखती जा रही थीं, उनके गोद के बच्चे भी क्रंदन कर रहे थे। जुलूस में चौधरी मैजिस्ट्रेट की पत्नी तथा जेल के अधिकांश वार्डरों और कर्मचारियों की पत्नियाँ भी शामिल थीं। स्त्री और पुरुष सभी नंगे पाँव थे। पुरुषों के सिर भी उधड़े थे। ऐसा शानदार जुलूस, ऐसी शाही बिदाई, शहर के इतिहास में अद्वितीय थी।

जुलूस ने श्मशान के निकट का रास्ता नहीं लिया। शहर

की आम सड़कों पर घुमाकर फिर श्मशान जाने का कायनाम जुलूस के नेताओं ने बनाया था। यह देखकर आई० जी० पुलिस का माथा ठनका। उसकी मोटर यहाँ-वहाँ दौड़ने लगी। डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट तथा जिले के अन्य अफसरों ने जुलूस के नेताओं से कहा कि वे निकट के रास्ते से श्मशान घाट चले जायें, शहर में जुलूस को न घुमाये। नेताओं ने कहा, शहर के लोग शहीद अभयकुमार के अन्तिम दर्शन करना चाहते हैं, हम इसी-लिए जुलूस प्रमुख सड़क से ले जा रहे हैं। इसमें धंटे-दो-धंटे की देर को छोड़कर और कुछ नहीं होगा—शांति भंग तो हरिज नहीं होगी।

जिले के अधिकारियों ने फौरन उच्चाधिकारियों को रिपोर्ट दी, सलाह-मशविरा हुआ और जुलूस पर दफा १४४ के मुताबिक रोक लगा की गयी कि वह अमुक-अमुक रास्ते को छोड़कर अन्य रास्तों से न जाय।

जनता पहले से संतप्त थी ही। अब और भी अधिक प्रचुब्ध हो गयी। उसने कानून तोड़कर अपने पूर्व नियोजित मार्ग से ही जाना शुरू किया। पुलिस की मोटरें दौड़ने लगी। वर्दीधारी जवान लाठियाँ और बन्दूकें लिये लारियों से आ धमके। देखते-देखते परिस्थिति संगीन हो गया। जुलूस वाले आगे ठेलते बढ़ते जाते थे। पुलिस ने पहले तो लाठियों से कार्डन बनाकर जुलूस रोकने की कोशिश की, पर वह असफल हो गयी। फिर पुलिस ने आसमान में बक-शॉट्स फायर किये जिसके कारण जनता में आतंक छा गया और भीड़ तितर-बितर होने लगी। इस धका-पेल में अर्थी के आस-पास स्वयंसेवकों का जत्था उसकी

रक्षा करने के लिए, सट कर दूट पड़ा। पुलिस में और स्वयं-सेवकों में हाथा-पाई होने लगी। पुलिस के जवान लाठियों से रोकना चाहते थे और स्वयंसेवक आगे की तरफ ठेलते जाते थे। बीच बीच में जनता में दहशत बैठाने के लिए पुलिस आसमान में फ़ायर करती जाती थी। इस सब हाथा-पाई में विजया और शांता जो अर्थी के बांस मजबूती से पकड़े हुए थी और किसी भी दशा में उन्हें छोड़ना नहीं चाहती थीं चारों तरफ से घिर गयीं और कुचली जाने लगीं। शांता अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी विजया का बचाव कर रही थी, उसका बाल भी बाँका न हो, इस कोशिश में भी। पर पुलिस के गुद्दे जाने-अनजाने विजया की पीठ पर भी पड़े और उसके पैर जूतों की टापों से खुँद गये। विजया अपने आपको न सम्हाल सकी। चट से शान्ता का हाथ थाम कर बोली—

“सम्हालना बहन, मुझे ग़श आ रहा है।”

शांता ने फ़ौरन एक स्वयंसेवक को इशारा किया और दोनों ने विजया को सम्हाला—वह गर्दन झुकाकर एकदम बेहोश हो गयी।

किसी ने पुकारा—“अरे देखते क्या हो? विजया रानी बेहोश हो गयी। भीड़ छुँटो। हवा आने दो। जल्दी पानी लाओ।”

कोई पानी लाने चला गया, कोई डाक्टर को बुलाने गया। पास की दुकान से एक आदमी गीला तौलिया लेकर दौड़ पड़ा जो विजया के सिर पर रख दिया गया। आस-पास के लोग पंखा झलने लगे। जुलूस वहीं थम गया।

पुलिस के आफसर तथा मैजिस्ट्रेट इस घटना से चौंके। कहीं इस स्त्री का यहीं हार्ट फेल हो गया तो स्थिति भयंकर हो जायगी। वे फिर अपने उच्चाधिकारियों के पास भागे-भागे गये और जुलूम का मार्ग नियन्त्रित करने वाला आर्डर वापस ले लिया। पुलिस भी हटा ली गयी।

विजया को बेहोशी की हालत में ही पास के एक नीम के झाड़ की छाया में ले जाया गया। वहीं एक आदमी ने सफ़ेद चादर ज़मीन पर बिछा दी जिस पर उसे लिटा दिया गया।

यह उसका सातवाँ महीना था। दुःख, चिन्ता और शारीरिक श्रम के कारण उसका रक्त-स्राव शुरू हो गया था।

इतने में घटना-स्थल का निरीक्षण करने आई० जी० पुलिस अपनी मोटर में आ धमके। उन्होंने विजया की हालत देखकर अपनी मोटर पर उसे अस्पताल में दाखिल करने की बात कही। विजया ने यह सुनकर अपनी आँखें खोलीं और आई० जी० पुलिस की ओर एक निमिष भर देखकर सिर हिलाकर नाहीं कर दी।

आई० जी० एक लूण वहीं हतबुद्धि सा खड़ा रहा और फिर सिर खुजला कर वहाँ से चलता बना।

इतने में एक प्राइवेट डाक्टर की मोटर आयी और उसमें विजया को बैठा कर उसे स्त्रियो के अस्पताल में दाखिल करा दिया गया। साथ में शांता थी ही।

शांता ने दीनबन्धु से कहा—“तुम अर्थी आगे ले जाओ और श्मशान-घाट पर क्रिया-कर्म की व्यवस्था करो। मैं विजया के साथ ही रहूँगी। उसकी इस नाजुक प्रसूतावस्था में उसे हर

तरह सभ्हालना जरूरी है ।”

चूँकि अब जुलूस पर कोई रोक-टोक नहीं थी, वह बराबर अपने मार्ग पर बढ़ता चला और डेढ़ घंटे के भीतर श्मशान पहुँच गया ।

इधर लेडी डाक्टर ने विजया को फ़ौरन इन्जेक्शन दिया और सब तरह की दवा-दारू शुरू की । नर्सों भी आ गयीं और शहर की दो-एक प्रख्यात लेडी डाक्टरों को भी खबर लगी तो वे भी मदद करने दौड़ पड़ीं ।

इधर हर पन्द्रह-बीस मिनट के अंतर से डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट और पुलिस की ओर से विजया के स्वास्थ्य की पूछ-ताछ होती रहती । जब बेहोशी न हटी और इन्जेक्शन का भी परिणाम ठीक नहीं निकला तो मोटर भेजकर माँ को भी अस्पताल बुलवा लिया गया । अभय की मृत्यु के समाचार ने तो उन्हें इतना विचलित नहीं किया, क्योंकि उनका मन उसके लिए तैयार हो चुका था । पर बेटी की बेहोशी से वे एकदम घबड़ा गयीं और रुआँसी होकर बोलीं—

“क्या हो गया है मेरी बिटिया को ?”

“मानसिक और शारीरिक आघात के कारण साव शुरू हो गया है । हम उसे रोकने की भरसक कोशिश कर रहे हैं—” लेडी डाक्टर ने कहा ।

माँ को तुरन्त याद आया—सातवाँ महीना है । स्वास्थ्य की स्थिति नाजुक है । जाने भगवान नैया कैसे पार लगायेंगे ?”

माँ विजया का सिर अपनी गोद में लेकर बैठ गयीं । इलाज चलते रहे, पर कुछ लाभ नजर आता नहीं दिखा । एक लेडी

डाक्टर ने अन्त में कहा कि 'हेमरेज' हो गया है इसीलिए रक्त को बहना रुकता नहीं है ।

शांता ने कहा, "क्या आयुर्वेदिक औषधि से कुछ लाभ होगा ? होमियोपैथी से आराम होगा ? मैं अभी मोटर में जाकर वैद्य और डाक्टर लाती हूँ ।"

लेडी डाक्टर ने कहा—“कोशिश कर देखिए । रुग्णा को आराम हो जाय तो हमें प्रसन्नता ही होगी ।”

शांता लेडी डाक्टर की मोटर लेकर ही एक भिषग्वन को ले आयी और होमियोपैथी के लिए रामकृष्ण आश्रम के स्वामी जी को भी ले आयी । उन्होंने भी अपने-अपने प्रयोग किये, पर विजया की आँखें नहीं खुलीं । गत तीन-चार महीनों में उसे जो भोगना पड़ा और जिसे वह अन्दर ही अन्दर चुनचाप बर्दाश्त कर रही थी, वही भीतर ही भीतर उसका दम घोट रहा था । आज इन उरोजना के क्षणों में अकस्मात् उसका विस्फोट हो गया । और जब विस्फोट हुआ तो ऐसा कि साक्षात् धनवन्तरि भी आ जाते तो शायद वे न सम्हाल पाते । क्योंकि रुग्णा की जीने की इच्छा ही समाप्त हो गयी थी । आज सुबह ब्राह्म-मुहूर्त की बेला में उसके जीवन-साथी की प्राण-ज्योति बुझ गयी थी । उसके साथ ही उसके जीवन का प्रकाश भी क्षीण होने लगा था । दो हृदयों में इतना तादात्म्य, इतना परस्पर भाव था कि सच-मुच ऐसा लगता था कि उनके शरीर दो हैं, पर आत्मा एक ही है । दोनों हृदय जैसे एक ही प्राणवायु से स्पंदन करते हों । इतनी एकात्मता, इतना अद्वैतत्व कभी ही मिलता है ।

तीन घंटों तक इलाज और डाक्टर-वैद्यों की दौड़-धूप के

बावजूद विजया ने अपनी माँ—हाँ, अभय की माँ तो उस की माँ थी ही—की गोद में ही प्राणत्याग दिया। माँ का कर्ण ब्रन्दन सुना नहीं जाता था। हे प्रभु ! तेरे मन में क्या है ? मैं यह सब कैसे बर्दाश्त करूँगी ? मुझे क्यों नहीं इन दोनों के साथ ही अपने पास बुला लेता। मैंने ऐसा कौन सा पाप किया जो मुझे इन आँवों यह सब देखना पड़ रहा है ?”

शांता ने माँ का हाथ पकड़ कर पलंग पर से उठा दिया और विजया के शरीर पर झुम्र खदर की चादर ओढ़ा दी। माँ को लेडी डाक्टर की मोटर में बैठाकर अपनी सहेली के साथ भिजवा दिया और स्वयंसेवक के हाथ तुरन्त दीनबन्धु को श्मशान घाट पर खबर पहुँचा दी कि दोनों की एक ही चिता रचायी जाय।

दीनबन्धु ने जब यह सुना तो हाय करके नीचे बैठ गया। दस मिनट बाद दो स्वयंसेवकों ने उसके मुँह पर पानी छिड़क कर हाथ पकड़, उसे उठाया।

स्त्रियाँ बोलीं—“बड़ी पुण्यवती हैं विजया रानी ! सचमुच सती सावित्री का अवतार है। हमारे बड़े भाग्य जो उसके दर्शन हो गये।”

सारे शहर के लोग दर्शन करने आये। इर्द-गिर्द देहातों के लोग भी दौड़े दौड़े आये। और जब यह खबर आयी कि लोग आते ही जा रहे हैं तो फिर दाह-संस्कार थोड़ी देर के लिए रोक दिया गया !

दिवस और रात्रि के सन्धिकाल में ब्राह्मणों के मन्त्रोच्चार के साथ दीनबन्धु ने अग्नि दी।

अनन्त गोपाल शेवड़े

एक बड़ी चौड़ी चिता बनायी गयी थी जिस पर शुभ्र वस्त्रावृत अभय लेटा हुआ था—ध्यानस्थ, समाधिस्थ, शांति और समाधान की प्रतिमूर्ति !

पास ही हल्दी के रंग की पीली साड़ी पहने, भाल पर कुमकुम रोली का तिलक लगाये, गले में मणि-मंगलसूत्र और फूल मालाएँ पहने लेटी थी—विजया !

उस भव्य दृश्य को देखकर सबकी आँखें बरबस गीली हो जाती थीं और मस्तक श्रद्धा से झुक जाते थे ।

दीनबन्धु ने अग्नि दी तब आकाश में शहीद अभयकुमार, तथा सती विजया रानी के जय की द्दुभि बज उठी ।

देखते-देखते लकड़ियाँ जल उठी और उनमें से विकराल ज्वालाएँ निकलने लगी । जो लोग इकट्ठे थे, उनमें से प्रत्येक ने एक-एक लकड़ी चिता में डालकर उसे भक्ति भाव से नमस्कार किया ।

एक-एक कर लोग अपने घरों को लौटने लगे ।

पर दीनबन्धु और शांता तथा एक स्वयंसेवक बजरंग वहीं बैठे रहे ।

चिता धू-धूकर जल रही थी । उसकी लपलपाती हुई ज्वालाएँ आसमान से मिलने के लिए होड़ बाँध रही थीं । शांता ने सोचा, क्या ये ज्वालाएँ ही भारतीय स्वातंत्र्य की विजय-पताका न बन सकेंगी ? भविष्य के अन्तराल में क्या छिपा है यह तो अन्तर्यामी को छोड़कर और कोई नहीं जानता ।

ज्वालाएँ विकराल होने लगीं, उनकी आँच से बचने के लिए दीनबन्धु और शांता ज़रा दूर हो गये और पास ही एक

नीम के पेड़ के नीचे बैठ गये। देखा कि वहाँ एक अन्धा भिखारी हाथ में एक-तारा लिये बैठा है।

शांता की आहट पाते ही वह बोला—“कौन है ?”

“हम लोग हैं, क्रिया-कर्म करने आये हैं।”

“किसका—जिसे आज फाँसी लगी, उसका ?”

“हाँ।”

“उसकी स्त्री भी तो उसके साथ सती हो गयी ?

“हाँ बाबा, सती हूँ समझो। अपने पति की फाँसी के चंद घंटों के बाद उसने भी प्राण त्याग दिये।”

“धन्य है, धन्य है ! सचमुच बड़े भागवान् हैं दोनों आत्मा ! यह भारत देश ही पुण्य भूमि है। जहाँ ऐसे प्रतापी लोग पैदा होते हैं। वाह ! कैसी तेरी लीला है भगवान् !”—और ऐसा कहकर वह भिखारी मौज में आकर अपना एकतारा बजाने लगा और गाने लगा—

“रहना नहीं देश बिराना है।”

वह इस तरह मगन होकर गा रहा था जैसे उस जगह उसे छोड़कर और कोई नहीं है, बिल्कुल मस्त, बेफिक्र, बेलाग ! और उसने कहा—

“यह संसार भाड़ और भाँखर

आग लगे बरि जाना है।”

तो शांता अपने आपको नहीं रोक सकी। पीछे चिता जल रही थी, उसी की तरफ़ देखकर फफक-फफक कर रोने लगी।

भिखारी ने फ़ौरन गाना बन्द कर दिया और बोला—

“अरे, माई रोती है ?”

अनन्त गोपाल शैवडे

“हाँ, बाबा—क्या करूँ, बर्दाश्त नहीं होता ।”

“वाह ! यह भी कोई रोने की बात है ! इन दोनों जीवों को जो गति मिली है, उसके लिए तो बड़े-बड़े तपस्वी तरसते हैं माई ! और ध्यान से सुन ले, जो आज रोते हैं, वे कल हँसेंगे और जो आज हँसते हैं, वे कल रोयेगे । यह तो करम की रेखा है माई, करम की रेखा । इसे कोई नहीं मेट सकता । फिर तू क्यों रोती है ? ना माई, ना, यह समय रोने का नहीं है, खुशियाँ मनाने का है—”

और फिर वह गाने लगा—

“मन मस्त हुआ तब क्यों बोले ?

हीरा पायो गाँठ, गठियायो,

वारबार बाको क्यों खोले ?”

और फिर थोड़ी देर बाद—

“हंसा पाये मान सरोवर,

ताल तलैया क्यों डोले ?

कहे कबीर सुनो भाई साधो ।

साहिब मिल गये तिल ओले ॥

मन मस्त हुआ तब क्यों बोले ?”

शांता और उसके साथी बाबा का भजन सुनते रहे । उससे उन्हें बड़ी शांति मिली ।

इधर चिता जलकर टंडी होती जा रही थी ।

शांता उठकर उसके पास गयी और जली हुई राख को अपने माथे पर लगा कर उसने चिता के सामने साष्टांग दण्डवत् किया और कहा—

ज्वालामुखी

“भारत की स्वतन्त्रता के अनन्य उपासक ! तुम्हारी जय हो ! भगवान करे तुम्हारा स्वप्न जल्दी से जल्दी साकार हो !

दीनबन्धु और बजरंग ने भी शांता का अनुकरण किया ।

उस रात को पुलिस के डी० आई० जी० टायगर साहब ने निरुत्साह के समय अपनी पत्नी से कहा—“ऐसा लगता है कि अब इंडिया को ज्यादा दिन ‘बाण्डेज’ (गुलामी) में रखना ‘डिफिकल्ट’ (मुश्किल) होगा ।”

अभयकुमार तथा विजया के अनुपम त्याग से शासन के अचल हिल उठे । जनता को तो लगा कि उसके दिल पर ऐसा बुरा घाव लग गया है जो कभी भर नहीं सकेगा ।

स्थानीय समाचार पत्रों में दूसरे दिन अभयकुमार तथा विजया की दुखद मृत्यु, जुलूम, पुलिस की हाथा-पायी, दाह-संस्कार आदि के समाचार काफ़ी विस्तार से छपे ।

आखिरी पृष्ठ पर यह सनसनीदार समाचार भी छपा कि सौधरी मैजिस्ट्रेट ने अपनी नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया है ।

माँ के लिए जीवन में कोई रस नहीं रहा। बोली—“अब मैं काशी जाऊँगी।”

शांता ने बहुतेरा समझाया कि वे यहीं रुक जायँ, वह उनकी पूरी-पूरी सेवा करेगी तो वे बोलों—

“ना बेटी ! अब तू मुझे मत रोक ! ठाकुर जी ने मेरे सारे बन्धन काट दिये हैं। उनकी यही इच्छा दीखती है कि अब मैं संसार छोड़ दूँ। वही काशी में मुझे शांति मिलेगी। तू मुझे अब जाने दे।”

माँ को जो भोगना पड़ा उसे देखते हुए शांता की हिम्मत नहीं हुई कि वह उनके इच्छित मार्ग से उन्हें विमुख करे।

माँ घर-गृहस्थी की चीज-बरत शांता को सौंपकर अपनी पूजा-पाठ की सामग्री लेकर काशी के लिए रवाना हो गयीं।

काशी के दशाश्वमेध घाट पर एक बुढ़िया गीता-रामायण का पाठ करते हुए तथा बीच-बीच में चर्खा चलाते हुए कई बार दिखी। ऐसा लगता था कि भजन-पूजन और गंगा स्नान को छोड़कर इस वृद्धा को और किसी बात में दिलचस्पी नहीं है।

वह किसी से नहीं बोलती, कहीं नहीं जाती। बस एक मंदिर की टूटी-फूटी मढ़िया में बैठी रहती—गीता-रामायण पढ़ती, भजन-पूजन करती, चरखा चलाती।

चरखे का सूत बेच लेती। कोई आकर चढ़ावा या सीधा-सामग्री दे जाता, उसी से उसकी गुज़र-बसर हो जाती। कभी एकाध दिन फ़्लाका भी पड़ जाता, पर वह मन-ही-मन कहती कि यहाँ उसे कोई कष्ट नहीं है—बड़ी शांति है।

दिन पर दिन बीत चले, महीने गुज़र गये, कुछ बरस भी बीत गये। पर उस बुढ़िया का यही क्रम चलता रहा। उसमें कोई

अनन्त गोपाल शैवड़े

व्यवधान नहीं, विराम नहीं, परिवर्तन नहीं। जैसे वह सर्वथा अन्तर्मुखी हो गयी हो, बाहरी दुनिया से उसे कोई सरोकार नहीं।

अकस्मात् एक दिन किसी ने उससे कहा कि अंग्रेज भारत छोड़कर जा रहे हैं और देश स्वतन्त्र हो रहा है। १५ अगस्त १९४७ को अपना झंडा देश पर फहराने लगेगा।

उसके भुर्रियाँ पड़े हुए सूखे-सिकुड़े हुए चेहरे पर एक हल्की-सी मुस्कराहट खेल गयी और आँखों में आँसू आ गये। आँसू दुःख के नहीं, आनन्द के थे। उसने मन-हो-मन भगवान् को कृतज्ञतापूर्वक नमस्कार किया।

१५ अगस्त १९४७।

उस दिन वह बुढ़िया ब्राह्म-मुहूर्त में ही जाग उठी। स्नान-ध्यान करके शीघ्र ही नैयार हो गयी। गीता-रामायण आदि का पाठ करने के बाद वे पुस्तकें उसने बड़ी सावधानी से बाँध कर रख दी। कुछ देर के लिए चरखा चलाया, फिर वह भी बन्द करके रख दिया।

इसके बाद वह परम शांत-चित्त से उठी और गंगा के तट की ओर चली। भगवान् अंशुमाली उदय होने की नैयारी कर रहे थे। वह साड़ी कसकर गंगा के जल में उतर गयी। उगते हुए सूर्यनारायण को उसने अर्घ्य दिया और कहा—

“स्वतन्त्र भारत के प्रथम रवि देव, तुम्हारा स्वागत है। शताब्दियों के बाद आज ही तो तुम अपना कलंक छोड़कर निकल रहे हो। तुम्हारे दर्शनो के लिए ही तो मैं इतने दिन रुकी

ज्वालामुखी

थी । तुम्हें मेरा शत-शत प्रणाम !”

अर्घ्य देते समय ही उसने प्रभात फेरियों और जुलूस के नारे सुने— “आजाद हिन्दुस्तान जिन्दाबाद ! स्वतन्त्र भारत अमर हो ।”

उसने मुड़कर नज़र उठाकर देखा, दूर कहीं एक ऊँचे स्तम्भ पर राष्ट्रीय झंडा लहरा रहा है ।

उसका हृदय गदगद हो गया । आँखों में आँसू उमड़ पड़े । उसने उस तिरंगे झंडे को अत्यन्त भक्ति-भाव के साथ नमस्कार किया । उसका चेहरा एक अपूर्व पावन दीप्ति से, परम समाधान की ओभा से जगमगा उठा ।

और फिर वह गंगा के जल की तरफ़ मुड़ी और बढ़ते हुए गहरे पानी में उसने अपने आपको यह कहकर छोड़ दिया—

“मों गंगे ! अब तुम्हीं मुझे शरण में लो ।”

वह नैरना नहीं जानती थी, देखते-देखते उसे जल-समाधि मिल गयी ।

लोगों का ध्यान गया । वे दौड़े, चिल्लाये— “अरे एक औरत डूब गयी, औरत डूब गयी ।”

पर कोई उसे बचा नहीं सका ।

पास ही मन्दिर में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपलक्ष्य में पूजा-पाठ हो रहा था । ब्राह्मण लोग कह रहे थे—

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्मानौ ब्रह्मणा हुतम् ।

ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्म कर्म समाधिना ॥

अनन्त गोपाल शेवडे

दूसरे दिन स्थानीय दैनिक पत्रों के कोने में एक समाचार छपा—

“दशाश्वमेध घाट के सामने कल प्रातःकाल सूर्योदय के समय एक भिखारिन ब्राह्मणी ने गंगा में कूदकर आत्म-हत्या कर ली।”